ब्रज और ब्रज-यात्रा

सम्पादक
गोविन्ददास
राम नारायण अग्रवाल

१९५९

प्रकाशक
भारतीय विश्व प्रकाशन
फव्वारा — दिल्ली

भूमिका

भारत की धर्म-प्राण सस्कृति मे व्रजभूमि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ के साहित्य, संस्कृति, भाषा और भक्ति-दर्शन ने सपूर्ण देश को प्रभावित किया है। यही कारण है कि व्रज के प्रति प्रत्येक भावुक भक्त-हृदय मे श्रद्धा-भाव तथा एक सहज आकर्षण सदा विद्यमान रहता है और इस भूमि से निकट का परिचय प्राप्त करने की ललक विद्यमान रहती है।

प्रतिवर्ष व्रज-यात्रा के लिए देश के कोने-कोने से पर्यटक इसीलिए व्रज-क्षेत्र की ओर खिचे चले आते हैं और यहाँ के गाँव-गाँव मे भ्रमण करके भगवान् श्री कृष्ण के चरण-चिन्हो से अकित पावन रज का सस्पर्श प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। परन्तु जो व्यक्ति व्रज और भक्ति-क्षेत्र में उसकी देन के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी चाहते हैं, अब तक उनको संतुष्ट करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं हुआ था। इस की पूर्ति के लिये ही यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है।

हमारा विश्वास है कि यह ग्रन्थ एक ओर जहाँ व्रज-क्षेत्र मे आस्था रखने वाले भक्त-हृदयो को भगवान् श्री कृष्ण के लीला-क्षेत्र का परिचय करायेगा, वहाँ व्रज और व्रज-सस्कृति पर शोध करने वाले विद्वानों के लिये एक सदर्भ-ग्रन्थ के रूप मे भी उपयोगी सिद्ध होगा।

वैदिक युग से लेकर वर्तमान समय तक के व्रज का परिचय इस ग्रन्थ मे उपलब्ध है। समस्त सस्कृत वाङ्मय तथा हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य मे उपलब्ध व्रज सम्बन्धी सामग्री का मथन करके विद्वानों और शोधको ने पर्याप्त श्रम पूर्वक इस ग्रन्थ के लिये लेख तैयार करने की कृपा की है। यही नहीं श्री नाहटा जी ने तो बीकानेरी भाषा के जिस यात्रा ग्रन्थ को अपने लेख मे उद्धृत किया है, वह जहाँ उस युग की श्रीनाथ जी की सेवा-शृंगार-प्रणाली का परिचय प्रस्तुत करता है वहाँ उस समय के सस्तेपन तथा व्रज के कुछ देव-विग्रहो और मन्दिरों के सम्बन्ध मे भी बडी महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है। इसमे कई ऐसे देवालयों का भी उल्लेख है जो आज विद्यमान नहीं हैं। वे देवालय औरंगजेब के समय मे ही नष्ट हुए या बाद मे, यह एक अनुसधान का विषय है। श्री नाथ जी की तत्कालीन सेवा-विधि की यह जानकारी पुष्टि-सम्प्रदाय के लिये महत्त्वपूर्ण है। हमे इस ग्रन्थ को साहित्य जगत के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए इसीलिये हार्दिक प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ द्वारा कुछ नवीन सामग्री नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत की जा सकी है। व्रजयात्रा की परम्परा का इतिहास इस ग्रन्थ द्वारा ही पहली बार प्रकाश मे आ रहा है।

साहित्य-क्षेत्र और भक्ति-क्षेत्र के जिन प्रसिद्ध विद्वानो और शोधकों का सहयोग हमे इस ग्रन्थ के लेखन कार्य मे प्राप्त हुआ है उसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। साथ ही हम श्री राय कृष्णदास जी तथा भारतीय कला भवन, बनारस

के भी बड़े आभारी हैं, जिनके सौजन्य से हमे 'युगल छवि' का रगीन चित्र प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ है।

सभी लेखक महानुभावों के प्रति आभार प्रगट करने के अनन्तर यहाँ इस ग्रंथ की सम्पादन शैली के सम्बन्ध मे भी हम दो शब्द कहना उचित समझते हैं। यों तो व्रज के यात्रा-स्थलों का परिचय कराने के लिए धार्मिक दृष्टि से लिखी गई कई छोटी-छोटी पुस्तकें मथुरा वृन्दावन के बाजारों मे मिल जाती हैं, परन्तु सास्कृतिक दृष्टिकोण से प्रामाणिक आधारों पर वैज्ञानिक रूप से व्रज-क्षेत्र का यह परिचय-ग्रथ पहली बार ही प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रथ मे हमने आरम्भ से अन्त तक यह प्रयत्न किया है कि भक्ति-पक्ष के (जिसका कि व्रज से घनिष्ट सम्बन्ध है) न्यायोचित प्रतिपादन के लिये उसे अवैज्ञानिक व्याख्याओं से बचाया जाय और तटस्थ भाव से ही तथ्यों को उपस्थित किया जाय।

इस ग्रथ के लिये प्राप्त समस्त सामग्री का उपयोग भी हम नहीं कर पाये इसका हमें खेद है, क्योंकि हम इस ग्रथ का आकार इतना बडा भी नहीं करना चाहते थे जिससे वह सर्व सुलभ न रह कर केवल पुस्तकालयों की शोभा ही बन जाय। साथ ही वह उल्लेख भी ग्रथ मे से निकाल देने पडे हैं जो विभिन्न लेखों मे समान थे। फिर भी लेख के क्रम मे एक सूत्रता बनाये रखने के कारण यह सर्वत्र संभव नहीं हो सका है। हमने विवादास्पद प्रसंगों को भी बचाने की चेष्टा की है और इस कारण से भी कुछ सामग्री का उपयोग नहीं हो सका है। ऐसी दशा मे जिन महानुभावों के लेख हमे लौटाने पडे हैं, हम उन सबसे क्षमा प्रार्थी हैं।

इस ग्रथ के सम्पादन मे सबसे प्रमुख समस्या दृष्टिकोण सम्बन्धी विभिन्न-ताओं के समन्वय की थी, क्योंकि हमे जहाँ धार्मिक मान्यताओं के आधार पर अपने विश्वासों का प्रतिपादन करने वाले विद्वानों के लेख प्राप्त हुए वहाँ विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखने वाले विद्वानों ने भी हमारा पूरा सहयोग किया। अतः हमारी यह चेष्टा रही कि लेखकों की मान्यताओं को प्रभावित न करते हुए भी ग्रथ की एकरूपता की रक्षा की जाय। इसमे हमें कहाँ तक सफलता मिली है यह नहीं कहा जा सकता। यो भी प्रत्येक प्रयास मे कुछ न कुछ कमी तो रह ही जाया करती है।

परन्तु फिर भी हमे इस ग्रंथ को प्रकाशित देखकर स्वयं आत्म-सतोष है, क्योकि यह ग्रथ व्रज और व्रज-यात्रा पर अपने आप मे एक मौलिक रचना है जो प्रतिवर्ष व्रज-यात्रा करने वाले श्रद्धालुओं के लिए 'मार्ग-दर्शक' का काम करेगा। यही नहीं व्रज को देखने के उत्सुक व्यक्ति इस ग्रथ की सहायता से अल्प समय में ही विना किसी सहायक के एकाकी भी व्रज-यात्रा कर सकते हैं और वे व्रज के वाह्य रूप के साथ-साथ उसके इतिहास, संस्कृति और महत्ता को भी हृदयगम कर सकते हैं।

इसलिये हमे आशा है कि इस ग्रन्थ का व्रज-भक्त-वैष्णव और हिन्दी-जगत दोनों ही स्वागत करेंगे।

विनीत

बसत पचमी
सवत् २०१५

गोविन्ददास
राम नारायण अग्रवाल

सूची

प्रथम खण्ड : व्रजभूमि और व्रज-भक्ति—१-८२

पृष्ठ

द्वितीय खण्ड : व्रज-यात्रा—८३-१८०

प्रथम खंड

ब्रजभूमि और ब्रज-भक्ति

प्रथम खंड

ब्रजभूमि और ब्रज-भक्ति

: १ :

व्रजभूमि और उसका नामकरण

डॉ० सत्येन्द्र, विश्वविद्यालय, आगरा

व्रजभूमि के नाम—जहाँ तक ऐतिहासिक प्रमाणो पर निर्भर करने की बात है, वेदो से पूर्व 'व्रज' या 'व्रज' शब्द को पाने के कोई साधन उपलब्ध नही । 'व्रज' शब्द वैदिक काल मे था, इसमे सन्देह नही, किन्तु उस समय यह क्षेत्रवाची नही था ।

वैदिक काल और बौद्ध काल के बीच इसका नाम 'ब्रह्मर्षि-ब्रह्मावर्त' रहा ।[1] इसका और भी छोटा भाग शूरसेन प्रदेश था, यह भी उक्त श्लोक से विदित होता है । बौद्ध काल मे यह प्रदेश एक विशाल भू-भाग के रूप मे 'मज्झिम प्रदेश' या मध्य देश कहलाता था । इस विशाल मज्झिम देश मे ६ महा-जनपद थे । इसी के अन्तर्गत मत्स्य और शूरसेन जनपद, कुरु तथा पचाल, इन चार महा-जनपदो से बना भू-भाग 'ब्रह्मर्षि देश' कहलाता था । जैसा डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने बताया है मनु के इस ब्रह्मर्षि देश का क्षेत्र वही है जो आज भी प्राय व्रजभाषा का क्षेत्र है। इसमे 'शूरसेन'[2] नाम का जनपद कुछ-कुछ 'व्रज' की सीमाओ से साम्य रखता है ।

पौराणिक काल मे इसी क्षेत्र का नाम 'व्रज-मण्डल' पडा । सम्भवत मत्स्य-पुराण मे ही व्रज का कुछ विस्तृत ब्यौरा भूगोल की दृष्टि से मिलता है । पौराणिक काल से इसका प्रचलन हुआ तो, पर प्रबलता इसमे १५-१६वी शताब्दी के वैष्णव-आन्दोलनो के द्वारा ही आयी । इस काल तक जनपदो और प्रदेशो के प्राचीन मान हट चुके थे, अथवा शिथिल हो गये थे, अत. धर्म के मेरुदण्ड पर निर्भर 'व्रज' नाम शेष समस्त भौगोलिक नामो को परास्त कर जम गया ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र के नाम क्रमश ये रहे हैं :—

१. मध्य देश ।

२. ब्रह्मर्षि ।

३. शूरसेन ।

४. मथुरा-मण्डल ।

५. व्रज ।

---

१. कुरुक्षेत्र च मत्स्याश्च, पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै, ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥ मनु० २।१९।

२ एरियन नामक यूनानी लेखक की 'इंडिका' में यमुना नदी का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि वह सौरसेनोइ (शूरसेन) प्रदेश में बहती है, जिसमें दो बड़े नगर (१) मेथोरा (Methora) और (२) क्लीसोबरा (Kleisobara) हैं ।—म० भा० ५।१, पृष्ठ १५ ।

यह 'मध्य-देश' क्यो कहलाया ? मनु ने बताया है कि यह उत्तर मे हिमालय और दक्षिण मे विन्ध्याचल पर्वत के बीच मे था, प्रयाग के पश्चिम मे तथा सरस्वती जिस प्रदेश मे बालू मे अदृश्य हो जाती है उसके पूर्व में है। यह 'मध्य' का देश था अत 'मध्य देश' कहलाया।

ब्रह्मर्षि देश क्यो कहलाया ? मनु ने इसकी व्याख्या मे बताया है कि इस भू-भाग मे जन्म लेने वाले अगुआ ब्राह्मणो का चरित्र अन्य मनुष्य के लिए आदर्श है। ब्राह्मणो के इस आदर्श चारित्रिकता के सम्मान मे यह ब्रह्मर्षि देश कहलाया।

'शूरसेन' भू-भाग 'शूरसेन' नामक राजा के कारण पड़ा, ऐसी किंवदती है।

ब्रज नाम क्यो पड़ा ? इस सम्बन्ध मे एक समाधान तो सर हेनरी ऐम० ईलियट ने दिया है। उन्होने यह किंवदती उद्धृत की है कि "ब्रज मथुरा के चारो ओर चौरासी कोस है। जब महादेव श्रीकृष्ण की गायें चुराकर ले गये तो लीलामय भगवान् ने नयी गायें बना ली और वे ठीक इसी सीमा मे चरती फिरी। तभी "व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति ब्रज"—यह ब्रज कहलाने लगा"। यह किंवदती 'ब्रज' प्रदेश के अर्थ को वैदिक 'व्रज' के अर्थ से मिलाने की चेष्टा करती प्रतीत होती है। वैदिक साहित्य मे "व्रज" का अर्थ गोष्ठ, अथवा गौ-समूह आदि के सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यह सामान्य शब्द पौराणिक काल मे[1] कृष्ण के गो-पालन और गो-चारण से सम्बद्ध होकर विशिष्ट प्रदेशार्थक हो गया। भाषा-विज्ञान ऐसे अनेको दृष्टान्त दे सकता है, जिनमे प्रकट होगा कि एक सामान्य अर्थ द्योतक शब्द सकुचित होकर किसी विशिष्ट इकाई का ही द्योतक होकर रह गया।[2]

'ब्रज' नाम के समाधान के लिए एक और सम्भावना की ओर सकेत मिलता है।

यह सकेत जहाँ तक मै समझता हूँ डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी जी ने ब्रज-साहित्य-मण्डल के शिकोहाबाद अधिवेशन के सभापति पद से दिये गये विद्वत्तापूर्ण भाषण में दिया था।[3] 'विरजा' का क्षेत्र ही सम्भवतः 'विरजा' है। पुराणो ने विरजा को मूलत राधा की सखी माना है। कृष्ण के अपने लोक मे कृष्ण और राधा नित्य-प्रति

१ पौराणिक काल में 'ब्रज' क्षेत्रवाची हो चला था, इसके प्रसग मिलते हैं। भागवत के दशम् स्कध के प्रथम अध्याय के आरम्भ में परीक्षित का प्रश्न "कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् ब्रज गत" (१०-१-८) "ब्रजे वसन्किम करो मधुपुर्या केशव ?" (१०-१-९) का उल्लेख है। मत्स्य पुराण में "ब्रज-मण्डल-भूगोल" का उल्लेख है।

२ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है—"ब्रज का सस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' है। यह शब्द सस्कृत धातु व्रज 'जाना' से बना है। ब्रज का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद सहिता में मिलता है। परन्तु वह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थो में प्रयुक्त हुआ है।"

३ मथुरा नगरी के निकट वेरज नाम का एक प्राचीन स्थान था। वहां के कुछ ब्राह्मणों ने बुद्ध भगवान् को आमन्त्रित किया था। बुद्धत्व के बारहवें वर्ष वे वहां पधारे और उन्होंने पति-पत्नी के कर्त्तव्यों, धर्म और विनय के अगों पर प्रवचन देकर लोगों को कृतार्थ किया। सम्भव है कि वायु पुराण भी इसी स्थान का सकेत निम्न वाक्य में करता हो। "विरजस्य द्विजा श्रेष्ठा वैराजा इति विश्रुता"। यह भी सम्भव है कि यह वेरज, विरज कालान्तर में ब्रज के नाम से प्रख्यात हो गया हो और इसी के नाम पर ब्रज-मण्डल का भी नामकरण हुआ हो।

—डॉ० रा० प्र० त्रिपाठी का भाषण। ब्र० भा०, वर्ष २, अक ५, ६, ७।

विहार करते थे। एक दिन राधा कुछ देर के लिए कहीं चली गयी, कृष्ण आये तो राधा की सखी के साथ ही विहार करने लगे। इसी बीच राधा आ गयीं। जैसे ही राधा के आने की आहट कृष्ण को मिली, वे अन्तर्ध्यान हो गये। भय से विरजा सरिता के रूप में परिणित होकर गोलोक में विचरण करने लगी। वही विरजा यमुना है, उन्हीं का क्षेत्र 'विरज' अथवा 'व्रज' है।

व्रज की प्रमुख नगरी मथुरा बहुत पुरातन है। वैदिक युग में भी इसके अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इसे 'मधुरा' भी कहा गया है, यह मधुपुरी भी कहलाती रही है।[1] यहाँ मधु नामक राजा का राज्य था, जिसके पुत्र लवणासुर को शत्रुघ्न ने मारा था। इस मथुरा के ओर-पास का क्षेत्र मथुरा-मण्डल कहलाता था। अधिकांश पुराणों में मथुरा-मण्डल का भौगोलिक वर्णन दिया हुआ है, और उसके वन उपवन-अधिवन आदि का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। वनोपवनों वाले इस मथुरा-मण्डल की सीमा प्रायः आधुनिक व्रज की सीमाओं से मिलती-जुलती है।

मथुरा-मण्डल शब्द का प्रयोग 'व्रज' के आधुनिक प्रयोग से कहीं पुराना है। मेगास्थनीज के 'शूरसेन-प्रदेश' के उल्लेख से अशोक-पूर्व में "व्रज-जनपद" के नाम का पता चल जाता है। उस काल में मथुरा शूरसेन-प्रदेश की राजधानी थी। उसके उपरांत जो उल्लेख प्राप्त होते हैं उनसे यह प्रदेश मथुरा राजधानी के नाम पर मथुरा-मण्डल कहलाने लगा, यह प्रतीत होता है। यह नाम पुराण काल में विशेष विख्यात हुआ, तथा पुराणों में 'माथुर-मण्डल' अथवा 'मथुरा-मण्डल' प्रायः वही मण्डल प्रतीत होता है, जिसे आज व्रज-मण्डल कहा जाता है। ह्यूआन्-चुआङ् भारत में लगभग ६३५ ई० में आया था, उसने मथुरा राज्य का जो वर्णन दिया है, उससे विदित होता है कि इस राज्य का विस्तार ५००० ली (लगभग ८३३ मील) तथा उसकी राजधानी (मथुरा नगर) का विस्तार २० ली (लगभग ३॥ मील) था। कनिंघम के अनुसार तत्कालीन मथुरा-राज्य में वर्तमान "वैराट" और 'अनरजी खेड़ा' के बीच का सारा प्रदेश ही नहीं अपितु आगरा के दक्षिण में 'नरवर' और शिवपुरी तक का तथा पूर्व में 'काली सिंध' नदी तक का भू-भाग रहा होगा। इस प्रकार इस राज्य में मथुरा आगरा जिलों के अतिरिक्त भरतपुर, करौली और धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य का उत्तर आधा भाग शामिल रहा होगा। पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जिझौती से तथा दक्षिण में 'मालवा' की सीमा से मिलती रही होगी।[2]

पुराण काल में मथुरा-मण्डल का महत्त्व उसी कारण से था जिस कारण से आज व्रज का है। वह कृष्ण की जन्मस्थली थी और क्रीडा-भूमि थी। पुराण काल में इसके विविध वन उपवन अधिवन विख्यात थे, इन वनों की परिक्रमा अथवा यात्रा पुराण काल में ही फलप्रद मानी गयी थी। वाराह पुराण में ही इसकी सीमा २० योजन अथवा ८४ कोस निर्धारित हो चली थी। मत्स्य पुराण में इसी कृष्ण-लीला भूमि को ही 'व्रज-मण्डल' कहा गया है। किन्तु पुराण काल में 'व्रज' कहलाने

१. [illegible] में मधुपुरी को 'मधुरा' भी कहा गया है।

२. कनिंघम जिओग्राफी, पृ० ४२६-२८। यह उद्धरण पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८३०, से श्री कृष्णदत्त वाजपेयी जी के निबंध से लिया गया है।

हुए भी विशेष प्रचलन 'मथुरा-मण्डल' का ही रहा । तब वैष्णव धर्म के १५वी-१६वी शताब्दी के पुनरोदय मे 'व्रज' शब्द का पुन प्रचलन हुआ और तब से अब तक यद्यपि व्रज क्षेत्र, व्रज-मण्डल या व्रज-जनपद का कोई राजनीतिक प्रदेश अस्तित्व मे नही रहा फिर भी धार्मिक दृष्टि से और भाषा तथा सस्कृति की दृष्टि से इसने एक सार्वजनिक निश्चित स्वरूप और नाम प्राप्त कर लिया । इस काल से व्रज-मण्डल तो धार्मिक परिभाषा से वँध कर 'व्रज चौरासी कोस' मे ही घिर गया, किन्तु व्रज-प्रदेश व्रजभाषा तथा व्रज-सस्कृति के पर्याय से बहुत विस्तृत हो गया ।

व्रजभूमि— इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'व्रज' शब्द वैदिक है । वेदो मे यह जिस अर्थ मे आता था, उसी अर्थ मे यह पुराण काल मे आया । केवल एक अन्तर हो गया, वह यह कि वेदो मे यह मात्र गोष्ठ वाची था, पुराण काल मे इस गोष्ठ की भौगोलिक स्थिरता हो गयी, और यह भू-भाग हो गया । वैदिक 'व्रज' का 'चरत कृष्ण' से सम्बन्ध था, और अशुमती से भी । 'चरत' और 'व्रज' भी अर्थ मे धात्वार्थ लेने से पर्यायवाची हैं । अशुमती, अशुमान का स्त्रीलिंग है । अशुमान सूर्य है, अशुमती उसी नाते यमुना ठहरती है । इन समस्त वैदिक वर्गों मे जो किंचित् अस्थिरता और अस्पष्टता थी, वह पौराणिक काल मे समाप्त हो गयी । पौराणिक कालीन 'व्रज' नयी शक्ति के साथ पुन वैष्णव पुनरुत्थान मे उभरा और तब से आज तक 'व्रज' कहलाता रहा । वेद-पुराण से वैष्णव-पुनरुत्थान तक, यह स्पष्ट विदित होता है कि इस 'व्रज' का सम्बन्ध राजनीतिक भू-भागो से कभी नही रहा । यह कृष्ण और गायो के सम्बन्ध से मूलत सास्कृतिक और गौणत आर्थिक अभिप्राय से युक्त रहा है ।

राजनीतिक क्षेत्र ने "व्रज" शब्द को नही अपनाया । मध्य-देश के प्रयोग को भी उतना राजनीतिक नही माना जा सकता, 'ब्रह्मर्षि' नाम भी सास्कृतिक है । राजनीतिक क्षेत्र मे इस प्रदेश का पहला नाम शूरसेन-प्रदेश रहा, फिर उसकी राजधानी के नाम से मथुरा-मण्डल कहलाया । मथुरा-मण्डल का मूल तो राजनीतिक ही विदित होता है, क्योकि यह 'मथुरा' नाम के नगर के आधार पर पडा, और 'मथुरा' नगरी को राजधानी होने के कारण ही यह महत्त्व मिला, यद्यपि इस मथुरा के माहात्म्य का पोषण धार्मिक और सास्कृतिक प्रवृत्तियो ने राजनीतिक प्रवृत्तियो से कही अधिक किया । अत मथुरा और व्रज पर्याय हो गये और मथुरापुरी भारत की प्रधान पवित्र पुरियो में गिनी जाने लगी । इस दृष्टि से व्रज का इतिहास प्राय वही है जो मथुरा का है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से सदिग्ध सकेतो के आधार पर ही सही यह कहा जा सकता है कि व्रज मे कृष्ण या कृष्ण-जाति का निवास था । ये अशुमती अथवा यमुना नदी के क्षेत्र मे गायो को लेकर घूमते-फिरते थे । इनका दो वार इन्द्र मे सघर्ष हुआ, दूसरी वार कृष्ण ने इन्द्र को हरा दिया ।

महाकाव्य काल मे मथुरा के पास मधुवन मे लवण का आतक प्रवल था । शत्रुघ्न ने उसको मारकर यहाँ शान्ति स्थापित की, तथा इस जनपद को सुख-समृद्धि से युक्त किया । इसी काल मे वाद मे सम्भवत वैदिक काल की कृष्ण-शाखा के

बनवा दें तो वह उन्हें कष्ट नही पहुँचायेगा। ब्राह्मणो ने बडी प्रसन्नतापूर्वक धन-सग्रह करके वह विहार बनवा दिया । भगवान् बुद्ध के बाद महाकात्यायन मथुरा आये और गु दावन विहार मे ठहरे, और मथुरा के राजा अवन्तिपुत्र ने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। यह भी कहा जाता है कि उपगुप्त नाम के बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध आचार्य मथुरा मे ही हुए थे। दिव्यावदान के प्रमाण से तो स्वयं भगवान् बुद्ध ने आनन्द को भविष्यवाणी करते हुए बताया था कि मेरे सौ वर्ष बाद मथुरा मे एक गधी के घर में उपगुप्त का जन्म होगा। लक्षण रहित होने पर भी वह बुद्ध जैसे कार्य सम्पन्न करेगा।

चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्यूआन-चुआड् के उल्लेखो से मथुरा मे २० सघारामो का पता चलता है। इनमे फाह्यान के समय मे ३,००० बौद्ध भिक्षु तथा ह्यूआन-चुआड् के समय मे २,००० भिक्षु रहते थे। अत मथुरा-मण्डल का महत्त्व जैन और बौद्ध धर्मों के लिए भी कम नही था।

इस प्रकार जैन और बौद्ध ग्रथो मे भी मथुरा और मथुरा-मण्डल का ही उल्लेख विशेष हुआ है। 'व्रज' शब्द का उल्लेख इनके ग्रथो मे प्रदेश के अर्थ मे किसी को मिली हो, ऐसा सकेत नही मिलता।

वैष्णवीय पुनरुत्थान—बौद्ध धर्म के शिथिल हो जाने पर हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान की प्रक्रिया में मथुरा ने पुन अपना वैष्णवत्व उद्धारित किया, इसी के फलस्वरूप पुन 'व्रज' शब्द प्रयोग में अग्रसर हुआ, और १५वी-१६वी शती तक यह पूरी तरह प्रचलित हो गया। इस काल मे मथुरा अपना राजनीतिक अस्तित्व खो चुका था, क्योकि वह अब राज्य या राजधानी नहीं था।

ब्रज मे बौद्धो के लोप के उपरान्त सम्भवतः शैवो का प्रभाव बढ़ा। गुप्तकालीन शैव मूर्तियाँ कुछ ऐसा ही सकेत करती हैं। ब्रज की लोक-सस्कृति मे शिव-मन्दिरो और शिव-पूजा का एक नियमित विधान मिलता है। कभी यह विधान सघ-सस्कृति का अग होगा ऐसे अनुमान के सकेत मिलते है। लकुलीश सम्प्रदाय शैवो की ऐसा ही सघ-सस्कृति का प्रतिनिधि था, उसका अस्तित्व मथुरा मे रहा है। शैवो के उपरान्त शाक्तो का प्राबल्य अवश्य हुआ, क्योकि वार्त्ताओ से स्पष्ट विदित होता है कि वैष्णव सम्प्रदाय को यथार्थत. शाक्तो से ही शक्ति छीननी पडी थी।

तब से आज तक ब्रज वैष्णव सस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। आज ब्रज मे इसी वैष्णव सस्कृति की कितनी ही परम्परायें साथ-साथ चलती मिलती हैं। इन सभी परम्पराओ का मूलाधार कृष्ण है। इन कृष्ण-सम्प्रदायो को हम इस क्रम में प्रस्तुत कर सकते है—

१. निंबार्क,
२. गौडीय,
३ राधावल्लभी,
४ हरिदासी,
५. वल्लभ-सम्प्रदाय, और
६ शुक।

इन सभी सम्प्रदायो मे सूक्ष्म दार्शनिक भूमिका मे तो महदन्तर मिलता है, पर सामान्य रूप मे सभी कृष्ण और राधा की टेक पर है। किसी मे कृष्ण प्रधान है, तो किसी मे राधा प्रधान है, किसी मे दोनो का समान महत्त्व है, तो किसी मे दोनो से युक्त किन्तु उनका एक अद्वैत रूप ही। ब्रज की महिमा के लिए यह कहा जा सकता है कि द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत सभी दार्शनिक-वाद राधा-कृष्ण के नाम रूप मे यहाँ आकर समा गये है। इन्होने ही ब्रज की "कृष्ण-सस्कृति" को पुष्ट और महत् किया है, और उसमे उन तत्त्वो की सम्भावना प्रस्तुत कर दी है जिनसे यह सस्कृति भारत-प्रिय हो सकी है। ब्रज के राधा-कृष्ण के तत्त्व ने दक्षिण, धुर दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सभी ओर की महान् दार्शनिक और धर्मतत्त्वान्वेषी प्रतिभाओ को इस ब्रज की ओर आकर्षित किया, और उन्हे ब्रज की रज मे लोटने को विवश किया है।

ब्रज सस्कृति—इस कृष्ण या राधा-कृष्ण-सस्कृति का मूल तत्त्व तो अमर्यादित प्रेम है। प्रतीत होता है कि वैदिक कालीन 'कृष्ण इन्द्र' के विरोध की भूमि यहाँ मूल धर्म-मानस मे विद्यमान रही है, अत वही अमर्यादित प्रेम को इस रूप मे पोषित करते हुए जीवन के परम-लाभ को प्रदान करती रही है। इन्द्र को परास्त कर यहाँ कृष्ण उठे है, वैसे ही वेद की और उसकी मर्यादा को छोडकर यहाँ कृष्ण-प्रेम उभरा है। यह कृष्ण प्रेम सर्व-समर्पण चाहता है, इस सर्व-समर्पण से प्राप्तव्य है कृष्ण-रस जिसे तात्त्विक भूमि पर एक रास-रस कहा जा सकता है, एक युगल-रस, तो एक रति-रस कहा जा सकता है। इस दिव्य रस मे डूबना या इसका आस्वाद ही, भक्त का मन्तव्य होता है। कृष्ण के ससर्ग-सुख को प्राप्त करने के लिए कितने ही उपाय हैं, पर ब्रज-रज भी एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। भगवान् कृष्ण की चरण-रज यहाँ है, क्योकि कृष्ण किसी भी युग मे हुए हो, उनके चरण की रज तो रज से मिलकर प्रत्येक रज को पावन करती हुई आज तक यही विद्यमान है। एक ओर प्रेम समस्त मर्यादाओ से ऊपर उठा कर महत् की ओर अग्रसर करता है तो दूसरी ओर 'रज' समस्त मर्यादाओ से नीचे गिरा कर रजमय, चरणो को रजमय करके महत् के सम्पर्क की सम्भावना सिद्ध करती है। रज भगवान् की ही नही, भगवान् को परकर, उसके भक्तो और भक्तो के भक्तो की, तथा उसके क्षेत्र के किसी भी निवासी की पद-रज, पावन करने वाली है। प्रेम-रज के माहात्म्य ने धर्म के तत्त्व को महार्घ-भूमि से उतार कर लोक-भूमि पर सुलभ कर दिया।

इस सस्कृति का एक मूलाधार तो यह हुआ। यह कृष्ण और राधा के कारण पल्लवित हुआ, कृष्ण और गोपियो के कारण पल्लवित हुआ। किन्तु 'ब्रज' जिस कृष्ण के कारण ब्रज हुआ वह तो मूलत 'गो ब्रज' था, गोकुल और गोवर्द्धन उसके दो ध्रुव हैं। कृष्ण गोपाल भी है। अत ब्रज-सस्कृति मे गो और गव्यादि का भी बहुत महत्त्व है। यह सस्कृति दही, दूध और मक्खन की सस्कृति थी।

कृष्ण की यह ब्रजभूमि वस्तुत 'वन-भूमि' थी। इसमे घूम-घूम कर कृष्ण ने गौएँ चराई थी। इस बहाने से ब्रज के कृष्ण ने वनो का भी सास्कृतिक महत्त्व स्थापित किया, इसी प्रेरणा से भक्तो ने यहाँ तक कहा कि 'कोटिक हू कलधौत के

धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं'

इस वन-भूमि के पर्वत को उन्होने श्री गिरराज ही नही बना दिया, उसे स्वयं भगवान्, अपने रूप मे प्रकट कर प्रतिष्ठित कर दिया। इसी प्रकार नदी भी उनकी प्रिया होकर पूज्य हो गयी। इस ब्रज-सस्कृति का मूल, लोक-भूमि के प्रत्येक तत्त्व की सम्मान-भावना से ओत-प्रोत है। लोक-भूमि के वन, पर्वत, नदी और इनके निवासी नायक और नायिका उन्ही मे अलौकिकत्व और देवत्व है, उसी की मान्यता होनी चाहिये।

ब्रज की सस्कृति का यह आध्यात्मिक पक्ष है, इसके निर्माण मे भारत की युग-युगीन परम्पराओ और भारत भर की अप्रतिम मेघाओ का योग रहा है। भारत की लोक-परम्परा के मूल को हम ऊपर देख चुके हैं किन्तु इस वेदोपरि सस्कृति की व्याख्या और ग्राहकता वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता और पुराणो के मच पर खड़ी की गयी है और इसकी पुष्टि रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य जैसी वैष्णव दिव्यात्माओ ने की। इस प्रकार यह ब्रज की 'कृष्ण-सस्कृति' भारत की परम्परा से प्राप्त वैदिक-लौकिक परम्पराओ का भारत भर की प्रबल दार्शनिकता के मथन से प्राप्त अमृत-नवनीत है। वस्तुत यही भारत की मेधावी सस्कृति है, जिसमे भारत के ही नही, विश्व के जन-जन का कल्याण निहित है।

इसे सघ-सस्कृति कहा जा सकता है। यह अध्यात्मार्थी सस्कृति है। पर इसके साथ कल्याणार्थी सस्कृति का भी एक अलग पहलू है। इसे मात्र लोक-सस्कृति भी कह सकते हैं। इसमे दो स्तर हैं। एक मे शिव, वाराह, गणेश, सूर्य, सरस्वती आदि देवी-देवताओ की पूजा होती है। दूसरे स्तर पर पथवारी, शीतला, देवी माता, भैरो, भुमियाँ, नाग देवता, जाहरपीर, जखैया, मैकासुर, वृक्षो, भूतो-प्रेतो, हवाओ आदि की पूजा अथवा अनुष्ठान होते हैं।

ब्रज के इतिहास के सकेतो से विदित होता है कि यहाँ कभी असुर प्रबल रहे, तो कभी नाग, फिर यक्ष। रामायण काल मे असुर प्रावल्य की सूचना है, कृष्ण के समय मे नाग-आतक था, तो भगवान् बुद्ध के समय यक्ष-यक्षणियो का। यक्ष-यक्षणियो से बुद्ध काल मे यक्ष-जाति की ओर सकेत न होकर यक्ष और कुबेर पूजको तथा सुरापायियो से हो सकता है। जखैया की पूजा ब्रज मे आज भी प्रचलित है। कुबेर की आसवपायी अनेक मूर्तियाँ मथुरा मे प्राप्त हुई है। मथुरा मे कलार अथवा कलवारो की प्रधानता कभी रही होगी। लोकवार्त्ता मे उनके खेडो के खेडो के नाश होने का प्रवाद प्रचलित मिलता है।[1] ये कलार तथा कलवार मद या आसव का व्यवसाय करने वाले थे। इन्हे यक्ष-सस्कृति का प्रतिनिधि माना जा सकता है। भगवान् बुद्ध के समय मे इन यक्षो से मथुरा के ब्राह्मण बहुत परेशान थे। लोकवार्त्ता मे भी कलारो और ब्राह्मणो के इस झगडे की ध्वनि झकृत मिलती है। इस प्रकार बुद्ध के समय तक यहाँ कितनी ही जातीय सस्कृतियो का सगम हो चुका होगा। फिर भारत

---

१ लोक में कई ध्वस्त टीलों के सम्बन्ध में यह कहावत है कि यह कलारों का गाँव था। कलारों ने एक ब्राह्मण-कन्या का अपमान किया तो उसके शाप से इस गाँव में आग और पत्थर बरसने लगे, गाँव ध्वस्त हो गया।

मौर्यों, कुषाणो और गुप्तो के साम्राज्य मे भी रहा। ऐतिहासिक काल मे अनेको प्रवृत्तियाँ यहाँ आयी-गयी पर कृष्ण और ब्राह्मणो का प्राधान्य यहाँ रहा। पुराण काल से यहाँ केशव की प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। महमूद गजनवी यहाँ के निर्माण-शिल्प को देखकर दाँतो-तले उँगली दवा गया था।

व्रज की सस्कृति के मूल के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट विदित होगा कि इसके द्वारा कला की स्थापना और विकास मे सहायता मिली। कृष्ण और राधा इस कला के आदर्श वने और उनकी साकार सौन्दर्य, कल्पना ने स्थापत्य और मूर्त्ति-कला को पख लगा दिये। कृष्ण की इस अमर्यादा भक्ति के साथ ही भजन-कीर्तन के लिए सगीत और नृत्य भी जन्मा। ध्यान-धारणा मे नख-शिख सौन्दर्य के लिए मूर्त्ति ही नही, चित्र भी उभरे। आध्यात्मिक और धार्मिक उत्कर्ष के साथ आर्थिक समृद्धि भी वढी, जिससे प्रत्येक कला ने उच्चातिउच्च आदर्श को प्रस्तुत करने की चेष्टा की। फलतः व्रज-सस्कृति जीवन व्यापी समग्र कला-उत्कर्ष की प्रेरणा वन गयी। कृष्ण और कला आज अभिन्न हो गये। इसीलिए व्रज स्थापत्य, मूर्त्ति, चित्र और सगीत सभी कलाओ का केन्द्र वन गया। इसका भूमि-वैभव अध्यात्म के गौरव के साथ विविध वनोपवनो के अवशेषो को यात्रा द्वारा देखा जा सकता है, उनके साथ कृष्ण की लीलाओ का ही नहीं तद्विषयक कला का भी दर्शन यत्किंचित् हो सकता है। इस कलात्मकता के कारण यह भाषा भी कलात्मक मधुरता से युक्त हो गयी, और साहित्य के इष्ट के अनुरूप ही उसने अपनी सत्ता-महत्ता सिद्धि की।

भागवत्‌कार का मथुरा-वर्णन

भगवान् श्रीकृष्ण जव कस के आमत्रण पर मथुरा पधारे तो उन्होने पहली वार जिस मथुरा को देखा भागवत्‌कार के अनुसार उसकी शोभा और वैभव निम्न प्रकार था

"ददर्श तां स्फाटिक तुङ्गगोपुर द्वारां वृहद्धेम कपाटतोरणाम्।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदा मुग्यानरम्यो पवनोपशोभिताम्॥
सौवर्ण श्रृंगारक हर्म्यनिष्कुटै श्रेणी सभामिर्भवनैरुप स्कृताम्।
वैदूर्यवज्रामल नील विद्रुमैर्मुक्ताहरिम्द्विर्वल भीषुवेदिषु॥
जुष्टेषु जालामुखरध्रकुट्टिमेष्वाविष्ट पारावतवर्हिनादिताम्।
ससिक्तरथ्यापममार्गचत्वरां प्रकीर्ण माल्यां कुरलातडुलाम्॥"

—भागवत ४०, ४१, २०-२२

: २ :

ब्रजधाम का वैदिक महत्त्व

महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

भारतवर्ष के मुख्य तीर्थ-स्थानो मे ब्रजधाम का विशेष महत्त्व है। आनन्द-कन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बाल लीला-भूमि होने का गौरव प्राप्त करने से, यह स्थान सर्वोच्च माना जाता है। हमारे यहाँ के तीर्थ-स्थानो के महत्त्व में अनेक कारणो का समावेश रहता है, भगवदवतार, देव, ऋषि आदि के चरित्रो से सम्बन्ध रखना, सत्त्वगुण-प्रधान भू-भाग होना, एव शास्त्र-चर्चा और यज्ञादिको का पवित्र स्थल होना, जहाँ तीर्थों के तीर्थत्त्व व उनके विशेष गौरव का कारण है, वहाँ ब्रह्माण्ड की सृष्टि-प्रक्रिया का एक प्रकृति के रूप मे प्रदर्शन करना भी गौरव का विशेष महत्त्वपूर्ण कारण है। यह अन्तिम कारण ब्रजधाम मे पूर्ण रूप से घटित होकर इसके महत्त्व को वैज्ञानिक सिद्ध कर रहा है, इसी पर इस छोटे से निबन्ध मे सक्षेप से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

हमारे इस ब्रह्माण्ड मे सात लोक ऊपर और अतल, वितल आदि सात पृथ्वी के स्तर, यो चौदह भुवन प्रसिद्ध हैं। इन सात लोको का स्मरण द्विजाती मात्र नित्य अपने सन्ध्योपासन मे व्याहृति रूप से करते है—

'भू भुव, स्व, मह, जन, तप, सत्यम्।'

'भू' नाम से हमारी अधिष्ठित यह पृथ्वी कही जाती है, और 'स्व' नाम से सूर्यमण्डल इन दोनो के मध्य का अन्तरिक्ष—(आकाश, अवकाश भाग) 'भुव' नाम से कहा गया है। यह एक त्रिलोकी हुई। इसके पृथ्वी सूर्य इन दोनो मण्डलो का 'रोदसी' इस द्विवचनान्त शब्द से श्रुति मे व्यवहार किया गया है। इसमे सूर्य प्रधान है, और अपने उपग्रहो सहित भूमि उसके वश मे उसकी अनुगामिनी है। किन्तु यह सूर्य-मण्डल भी किसी दूसरे प्रधान मण्डल के वश मे रहता हुआ, उसका अनुगामी है। उस प्रधान मण्डल का व्याहृतियो मे 'जन' नाम से स्मरण किया गया है—और इन दोनो मण्डलो के मध्यवर्ती अन्तरिक्ष को 'मह' नाम से। पुराणो मे प्रलय के वर्णन मे लिखा गया है कि, सूर्य मण्डल के विशीर्ण हो जाने पर जब हमारी त्रिलोकी का अवान्तर प्रलय वा नैमित्तिक प्रलय होता है, तब सूर्यमण्डल स्थित देवता, ऋषि आदि महर्लोक, जनलोक मे जाकर निर्भय हो जाते है। यह हमारी त्रिलोकी से उच्च श्रेणी की दूसरी त्रिलोकी हुई। उस त्रिलोकी के दोनो मण्डलो का श्रुति मे 'क्रन्दसी' इस द्विवचनान्त शब्द से निर्देश है, और उस प्रधान मण्डल को 'परमेष्ठि मण्डल' नाम से कहा गया है। जिसका कि अनुगामी हमारा सूर्य है। इस परमेष्ठि-

मण्डल से भी आगे और एक मण्डल है जिसे व्याहृतियो मे 'सत्यम्' नाम से सर्वोच्च स्थान दिया है। पुराणो मे भी इसका 'सत्यलोक' नाम से ही व्यवहार है। इन दोनो मण्डलो के मध्य का अन्तरिक्ष 'तप' नाम से व्याहृतियो मे स्मृत है। यह तीसरी त्रिलोकी हुई। इनके मण्डलो का श्रुति मे 'सयती' इस द्विवचनान्त शब्द से व्यवहार है, और उस प्रधान मण्डल को 'स्वयम्भू' मण्डल नाम से प्रसिद्ध किया गया है, क्योकि वह सबसे प्रथम स्वय जात है, उसका उत्पादक कोई दूसरा नही। यह हुआ सप्तलोकात्मक एक ब्रह्माण्ड। इसमे चार मण्डल और तीन अन्तरिक्ष है, किन्तु हमारी पृथ्वी और सूर्य के मध्य मे जो अन्तरिक्ष है, उसमे प्रधान रूप से 'चन्द्र-मण्डल' का प्रचार है। उससे हमारी पृथ्वी का घनिष्ठ सम्बन्ध है, ऋतु वनस्पति आदि के उत्पादन मे वह चन्द्र-मण्डल प्रधान भाग लेता है। इस कारण उसे भी मण्डलो की श्रेणी मे ही ले लिया जाता है। यद्यपि ऊपर के दोनो अन्तरिक्षो मे वृहस्पति, वरुण आदि वहुत वडे-वडे मण्डल हैं, जो हमारे सूर्य से भी बहुत वडे है, किन्तु हमारी पृथ्वी मे उनका साक्षात् घनिष्ठ सम्बन्ध नही होता, सूर्य चन्द्र आदि के द्वार से होता है। अत उन्हें मण्डलो की श्रेणी मे नही गिना जाता। इस ब्रह्माण्ड मे पूर्वोक्त पाँच ही प्रधान मण्डल है, जिन्हे इस ब्रह्माण्ड की 'वल्शा' या शाखा कहा जाता है।

मनुस्मृति के आरम्भ मे सृष्टि-क्रम का दिग्दर्शन कराते हुए, सक्षेप मे कहा गया है कि आज यह अति विस्तृत दिखाई देने वाला जगत् उत्पत्ति से पूर्व घोर तम निमग्न था। न इसका प्रत्यक्ष हो सकता था, न अनुमान। कोई धर्म प्रस्फुट न होने के कारण कोई शब्द भी इसे नहीं वता सकता था, मानो सव कुछ प्रसुप्त दशा मे था।

"तत स्वयम्भूर्भगवान्, अव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजा, प्रादुरासीत्तमोनुदः॥"

उस अन्धकार को दूर करने के लिए सवसे पूर्व स्वयम्भू का प्रादुर्भाव हुआ। इनका और कोई उत्पादक नही। ये सवसे पूर्व प्रादुर्भूत हुए इस कारण स्वयम्भू कहलाये। यह भगवान् का ही एक रूप था। इनने आगे स्पष्ट विस्तार की इच्छा से सव से पूर्व अपने शरीर से 'अप' तत्त्व की सृष्टि की। उसी 'अप्' तत्त्व मे जो वीज निधान किया वह ब्रह्माण्ड वना। यह वेदोक्त सृष्टि-क्रम का अनुवाद है, और पुराणो मे भी इसी प्रकार का सृष्टि-क्रम वहुधा देखा जाता है। इससे तात्पर्य यह निकलता है कि स्वयम्भू-मण्डल मे सृष्टि का आरम्भ नही होता। आगे ज्ञान और इच्छा रूप तप के द्वारा जन-लोक से सृष्टि चलती है। जिसे भगवान् मनु ने 'अप' तत्त्व कहा है, उसकी तीन अवस्था श्रुतियो मे वर्णित है—सोम, वायु और जल। अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था मे वह सोम कहलाता है, किंचित् स्थूलता होने पर वायुरूपता उसमे आ जाती है, और अधिक स्थूल होने पर जल हो जाता है। अस्तु, प्रथम अवस्था रूप जो 'सोमतत्त्व' वतलाया गया, वह सर्वत्र व्यापक है, और प्राणि मात्र का जीवनप्रद वही 'सोमतत्त्व' है ऐसा श्रुति का सिद्धान्त है। अव्यय पुरुष भगवान् की कला रूप मन, प्राण और वाक् इसी 'सोमतत्त्व' मे प्रतिविम्वित होते है, और यही सोमरस 'गो' नाम से भी कहा जाता

है, क्योकि 'गो' नाम किरणो का है,और प्रकाश के सम्बन्ध से यही 'गो-तत्त्व' प्रज्ज्वलित होकर किरण रूप बनता है। एक वेदमन्त्र मे सोम की स्तुति इस प्रकार की गयी है—

"त्वमिमा ओषधी' सोमसर्वाः त्वमपो जनयस्त्वङ्गा।
त्वमातनोरुर्वन्तरिक्ष त्व ज्योतिषावितमोववर्थ. ॥"

अर्थात् हे सोम! तुमने ही सब ओषधियो को उत्पन्न किया है। तुम ही जल तत्त्व के उत्पादक हो, और तुम ही गौओ को उत्पन्न करते हो। तुम इस विशाल अन्तरिक्ष को विस्तृत करते हो, अर्थात् सब अन्तरिक्ष मे व्याप्त रह कर, उसे विस्तृत रूप देते हो, और तुम ही दीप्ति द्वारा अन्धकार को दूर करते हो।

इस गोतत्त्व नामक सोमतत्त्व का प्रथम प्रादुर्भाव इस जन-लोक नाम के परमेष्ठी-मण्डल मे हुआ है। इसलिए इस जन-लोक को 'गो-लोक' कहकर पुराणो मे प्रसिद्ध किया है। यही व्रजधाम है, क्योकि जहाँ गौ रहे, गौ बैठे उस क्षेत्र का नाम 'व्रज' होता है। एक वेदमन्त्र मे यजमान को इसी लोक मे पहुँचाने की आशा प्रकट की गयी है। यह मन्त्र निरुक्त मे भी उद्धृत है—

"तावा वास्तू न्यूश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरि शृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परम पदमवभातिभूरि ॥"

ऋत्विक कहते हैं कि यजमान और यजमान-पत्नी! हम तुम्हारे जाने के लिए उस लोक की कामना करते हैं, जहाँ बडे-बडे सीगो वाली और निरन्तर गमनशील गौएँ विराजमान हैं। इसी लोक मे सबके द्वारा स्तुति किये गये और सबकी कामनाओ की वर्षा करने वाले भगवान् का परम पद प्रकाशित होता है।

हमारे एक मान्य पण्डितजी कहा करते थे कि यहाँ का 'वृषण' पद 'वृष्णे" का ही परोक्ष रूप है, और वृष्णि पद भगवान् कृष्ण का वाचक सुप्रसिद्ध है। इसलिए स्पष्ट है कि यह मन्त्र व्रजधाम के शिरोमणि-भूत श्री वृन्दावन का हा वर्णन कर रहा है। अस्तु, वृष्णे कहिये व वृष्ण कहिये मन्त्र मे 'गो-लोक' का वर्णन है, इसमे कोई ननु नच नही हो सकता। सबके आराध्य भगवान् विष्णु की चार रूपो मे उपासना श्रुति पुराणादि मे वर्णित है, और उनके चार धाम माने गये है—

१. वैकुण्ठनाथ विष्णु,
२. क्षीर-समुद्रशायी,
३. श्वेत द्वीपाधिपति शुक्लवर्ण, और
४ श्रीकृष्ण रूप, 'गोलोक' धाम के अधिपति।

कहना नही होगा कि चारो एक ही रूप हैं किन्तु उपासको की रुचि के अनुसार चार स्थानो मे चार रूपो मे दर्शन देते हैं। इन स्थानो का भी तत्त्व विचार करने से इनकी एकरूपता ही सिद्ध होती है। वैकुण्ठ को महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने अक्षरतत्त्व कहा है, जो अव्यय पुरुष का धाम है, और सर्वव्यापक है। क्षीर-समुद्र भी 'अप्' तत्त्व का आधारभूत सर्वव्यापक है, एव तम को दूर कर प्रकाशित होने के कारण इस ब्रह्माण्ड को ही, श्वेत द्वीप, कहते है, और पूर्वोक्त प्रकार से 'गोलोक' भी

सर्वत्र व्यापक है। भगवान् के रूप और उनकी शक्तियाँ भी मूल तत्त्व रूप से एक ही है, किन्तु पूर्व कहा जा चुका है कि, भक्तो की रुचि के अनुसार वे भिन्न-भिन्न रूपो मे दर्शन देते है। गोलोक मे राधारूपाह्लादिनी शक्ति से युक्त आनन्दमय भगवान् कृष्ण का द्विभुज रूप सदा विराजमान रहता है। वे जब भक्तो पर अनुग्रह कर भूलोक मे अवतीर्ण हुए, और 'सोमतत्त्व' से अपना सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए सोमवंश मे ही जब आपने अवतार धारण किया तो उनका प्रिय धाम 'गोलोक' भी भूमण्डल मे अवतीर्ण हुआ, और वहाँ की वे सर्वोत्पादक गौ भी मूर्त्ति धारण कर गौ रूप से यहाँ आयी। यही व्रजधाम है। किरण रूप गौओ के वक्र होने से वैज्ञानिक भाषा मे 'शृंग' पद का व्यवहार होता है, और यहाँ वे 'शृंग' भी मूर्त्तिमान रूप मे वक्र दिखाई देते है। यह धाम भगवान् कृष्ण का अत्यन्त प्रिय है, और इससे वे किसी काल मे भी वियुक्त नही होते। इस धाम की महिमा पुराणो के समान श्रुतियो मे भी वर्णित है, और विचार करने पर उसका वैज्ञानिक तत्त्व भी स्फुट् हो जाता है। भगवत्कृपा से ही इस व्रजधाम का निवास प्राप्त होता है, जिसकी पूर्वोक्त वेदमन्त्र में भी अभिलाषा की गयी है।

सुन्दर कुँवरिजी का एक पद

सुन्दरि कुँवरिजी कृष्णगढ नरेश महाराज राज सिंह जी की पुत्री थी। आपकी माता का नाम बाँकावतिजी था जो स्वय एक भक्तकवयित्री थी। सुन्दर कुँवरि ने भक्ति रस की सरस रचना व्रज-भाषा मे की है। 'व्रज रसासव' का नशा इन पर कितना गहरा चढा, यह इन्ही के निम्न पद से ज्ञात होता है। आप लिखती है—

मद व्रज-विपिन रसासव भावै।
जुगल रूप भरि नैन-पियाले, छिन-छिन छाक चढ़ावै।
निभृत नवल निकुंज विनोदनु, स्वाद विविधि रुचि पावै॥
लगन विभव, वैकुंठ अभावन, मतवारिन ठुकरावै।
तीन लोक की रचना जेती, कछु न नजर मे आवै॥
जमुना-पुलिन, नलिन-रज-रजित, मत्त पछरि मुसिक्यावै।
नवल नेह मतवारी कों गहि, राधा आनि उठावै॥

: ३ :

ब्रजभूमि का सीमा-विस्तार

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी

[अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्त्व-विभाग, सागर-विश्वविद्यालय]

हमारे देश मे ब्रजभूमि को एक विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है। ब्रज का इतिहास, यहाँ की धार्मिक एव सामाजिक परम्पराएँ तथा यहाँ की भाषा और साहित्य का अनोखापन ब्रजभूमि को नूतन रूप प्रदान करते है। आज भी ब्रज मे पदार्पण करने वाला सहृदय व्यक्ति अपने को किसी नये लोक मे प्रविष्ट अनुभव करता है, जहाँ ब्रजेश भगवान् कृष्ण की नित्य नवीन छवि का उसे अनुभव होता है। कुछ काल के लिए ही सही, सासारिक विभीषिकाएँ उस व्यक्ति के लिए अगोचर-सी लगती है। ब्रज-वसुन्धरा मे आज भी वह सौन्दर्य दिखाई पडता है जो हृदय को वरबस आकृष्ट कर मानव को आत्म-विभोर बना देता है।

यह ब्रजभूमि आज जिस रूप मे विद्यमान है उसका कुछ परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ब्रज का महत्त्व तीन रूपो मे विशेष है—

(१) भगवान् श्री कृष्ण की जन्म-भूमि व लीला-स्थली के रूप मे,

(२) प्राचीन भारतीय शूरसेन जनपद की ऐतिहासिक महत्ता की दृष्टि से, और

(३) ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र की दृष्टि से।

यदि हम उक्त तीन दृष्टियो से ब्रज क्षेत्र की सीमाओं पर विचार करें तो ब्रज के तीन रूप हमारे सामने आते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण का लीला-क्षेत्र 'ब्रज-मण्डल'—यह क्षेत्र ही वह ब्रज है जिसका विस्तार ८४ कोस कहा गया है। इसका विस्तृत परिचय आगामी अध्यायो मे दिया जा रहा है। यही ब्रजयात्रा का भी क्षेत्र है।

शूरसेन जनपद—प्राचीन काल मे वर्तमान मथुरा नगर तथा उसके आस-पास का कुछ भाग 'शूरसेन' जनपद नाम से प्रसिद्ध था। इस जनपद की राजधानी मथुरा थी, जिसे 'मधुरा' भी कहते थे।

शूरसेन जनपद की सीमाएँ समय-समय पर बदलती रही। कालान्तर मे मथुरा नाम से ही यह जनपद विख्यात हुआ। ईसवी सातवी शती मे जब चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ आया तब उसने लिखा कि मथुरा राज्य का विस्तार ५,००० ली (लगभग ८३३ मील) था। उसके वर्णन से पता चलता है कि सातवी शती मे मथुरा राज्य के अन्तर्गत वर्तमान मथुरा-आगरा जिलो के अतिरिक्त आधुनिक भरतपुर तथा धौलपुर के भूभाग और उपरले मध्य-प्रदेश का उत्तरी भाग रहा होगा। दक्षिण-पूर्व मे मथुरा राज्य की सीमा जेजाकभुक्ति (जिझौती) की पश्चिमी सीमा से तथा

दक्षिण-पश्चिम मे मालव राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती रही होगी। सातवी शती के बाद से मथुरा राज्य की सीमाएँ घटती गई। इसका प्रधान कारण समीप के कान्यकुब्ज (कन्नौज) राज्य की उन्नति थी, जिसमे मथुरा तथा अन्य पड़ोसी राज्यो के बडे भू-भाग सम्मिलित हो गये।

प्राचीन शूरसेन या मथुरा जनपद का प्रारम्भ मे जितना विस्तार था उसमे ह्वेनसांग के समय तक क्या हेर-फेर होते गये, इसके सम्बन्ध मे हम निश्चित रूप से नही कह सकते, क्योकि हमे प्राचीन साहित्य आदि मे ऐसे प्रमाण नही मिलते जिनके आधार पर विभिन्न कालो मे इस जनपद की लम्बाई-चौडाई का ठीक पता चल सके। प्राचीन साहित्यिक उल्लेखो से जो कुछ पता चलता है वह यह है कि शूरसेन या मथुरा प्रदेश के उत्तर मे कुरुदेश (आधुनिक दिल्ली और उसके आस-पास का प्रदेश) था, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर थी। दक्षिण मे चेदि राज्य (आधुनिक बुन्देलखड तथा उसके समीप का कुछ भाग) था, जिसकी राजधानी का नाम सूक्तिमतीनगर था। पूर्व मे पचाल राज्य (आधुनिक रुहेलखड) था, जो दो भागो मे बँटा हुआ था—उत्तर पचाल तथा दक्षिण पचाल। उत्तर वाले राज्य की राजधानी अहिच्छत्रा (बरेली जिले मे वर्तमान रामनगर) और दक्षिण वाले की कापिल्य (आधुनिक कापिल जिला फर्रुखाबाद) थी। शूरसेन के पश्चिम वाला जनपद मत्स्य (आधुनिक अलवर जिला तथा जयपुर का पूर्वी भाग) कहलाता था। इसकी राजधानी विराटनगर (आधुनिक बैराट, जयपुर मे) थी।

व्रजभाषा-भाषी क्षेत्र—आधुनिक व्रज के सम्बन्ध में मण्डलाकृति या गोल आकार का होने की बात कही जाती है, परन्तु न तो व्रजभाषा-भाषी प्रदेश की सीमाओ की दृष्टि से वर्तमान व्रज का आकार ठीक गोल है और न प्रचलित चौरासी कोस वाली वन-यात्रा की दृष्टि से। यह वन-यात्रा आजकल जिस रूप मे चलती है उसमे अब पहले से कोई बडा परिवर्तन हुआ नही प्रतीत होता। यह कहा जा सकता है कि पिछले काल मे (सम्भवत चौदहवी से सोलहवी शती के बीच) कभी व्रज का आकार-गोल रहा हो और तभी उसे 'व्रज-मण्डल' की सज्ञा दी गई हो। मण्डल से गोल का अर्थ न लेकर प्रदेश का भी अभिप्राय लिया जा सकता है। श्री नारायण भट्ट द्वारा १५६० ई० के लगभग रचित 'व्रज-भक्ति विलास' नामक ग्रथ के एक श्लोक के आधार पर तत्कालीन व्रज की सीमा जिसका उल्लेख आगे हुआ है इस प्रकार मानी जाती है—पूर्व मे हास्यवन (अलीगढ जिले का बरहद गाँव), पश्चिम मे उपहार वन (गुडगाँव जिले मे सोन नदी के किनारे तक), दक्षिण मे जह्नु वन (बटेश्वर गाँव, जिला आगरा) तथा उत्तर के भुवनवन (भूषणवन, शेरगट परगना)। इस श्लोक का अभिप्राय अनुलिखित दोहे मे मिलता-जुलता है।

> "इत बरहद उत सोनहद, उत सूरसेन को गाम।
> व्रज चौरासी कोस मे, मथुरा-मण्डल धाम॥"

वर्तमान काल मे व्रजभाषा का विस्तार उपर्युक्त सीमाओ को लाँघ कर बहुत कुछ आगे बढ गया है। ग्रियर्सन-कृत लिंग्विस्टिक सर्वे तथा इस सम्बन्ध मे अन्य

अन्वेषणो के आधार पर वर्तमान ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र का विस्तार निम्नलिखित माना जा सकता है[1]—

मथुरा जिला, राजस्थान का भरतपुर जिला तथा करौली का उत्तरी अश, जो भरतपुर एव धौलपुर की सीमाओ से मिला-जुला है, धौलपुर जिला। मध्य प्रदेश के मुरैना और भिड जिले एव ग्वालियर का लगभग २६° अक्षाश से ऊपर का भाग, आगरा जिला कुल, इटावा जिले का अधिकाश, मैनपुरी जिला, एटा जिला (पूर्व के कुछ अशो को छोडकर जो फर्रुखाबाद जिले की सीमा से मिले-जुले है), अलीगढ जिला (उत्तर-पूर्व मे गगा नदी की सीमा तक), बुलन्दशहर जिले का दक्षिणी लगभग आधा भाग (पूर्व मे अनूपशहर की सीध से लेकर), गुडगाँव जिले का दक्षिणी अश (पलवल की सीध से) तथा अलवर जिले का पूर्वी भाग जो गुडगाँव जिले की दक्षिणी तथा भरतपुर की पश्चिमी सीमा से मिला-जुला है।

वृहत्तर ब्रज प्रदेश की उपर्युक्त सीमाएँ मानी जा सकती है। इन सीमाओ मे यद्यपि कुछ परिवर्तन की सम्भावना को अस्वीकार नही किया जा सकता पर इतना निर्विवाद है कि वर्तमान समय मे ब्रजभाषा या उसकी विविध बोलियाँ इस भू-भाग मे बोली जाती हैं।

---

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० ग्रियर्सन के मत से सहमत नहीं। उनके मतानुसार ब्रजभाषी क्षेत्र में निम्नलिखित प्रदेश सम्मिलित हैं—उत्तर प्रदेश के अलीगढ, मथुरा, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के जिले, पजाब के गुड़गाँव जिले की पूर्वी पट्टी, राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्य भारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग। ग्रियर्सन साहब का यह मत भी डा० धीरेन्द्र जी को मान्य नहीं कि कन्नौजी स्वतन्त्र बोली है, इसलिए उत्तर प्रदेश के पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रजभाषी क्षेत्र में सम्मिलित कर लिये गये हैं।

इस सम्बन्ध में स्वर्गीय लाला लल्लूलाल जी का मत भी यहाँ उल्लेखनीय है। अपने ग्रथ "जनरल प्रिन्सिपल्स ऑफ दी इन्फ्लैक्शन एण्ड कन्जूगेशन इन दी ब्रजभाषा" मे उन्होंने ब्रजभाषा के क्षेत्र का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रजभाषा वह भाषा है जो ब्रज, जिला ग्वालियर, भरतपुर, भदावर, अन्तर्वेद तथा बुन्देलखण्ड में बोली जाती है।"

— सम्पादक

: ४ :

भक्ति का उदय[1]

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

सम्पादक 'समालोचक', आगरा

भक्ति-भावना मूलत "महत्त्व-स्वीकृति" की भावना है। जीवन मे किसी क्षेत्र मे जब आदिम मनुष्य किसी असाधारणता के दर्शन करता होगा, तो एक विचित्र प्रकार का स्पन्दन उसके हृदय मे उत्पन्न होता होगा, प्रकृति की विराटता, असामान्य शक्ति एवम् उसके भयकर कृत्य भी आदि-मानव के मन मे एक विशेष प्रकार का तनाव उत्पन्न करते होगें। इस तनाव या क्षोभ का एक रूप हम 'ऋग्वेद' मे देखते हैं। यहाँ प्रकृति-शक्तियो का सूक्ष्म (Abstract) रूप मानवीय भावना का विषय दिखाई पड़ता है। यह मानवीय भावना वैदिक मत्रो के रूप मे प्रकट हुई है। इन मत्रो को 'यज्ञ-क्रिया' के साथ जोड़ा गया। यज्ञ का अर्थ है अग्नि मे भोजन-सामग्री, समिधा, घृत आदि की भेंट, "स्वाहा" शब्द का उच्चारण तथा वैदिक मत्रो का पाठ, जिसमे प्राकृतिक शक्तियो या देवताओ के प्रति मानवीय भावना की प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। परन्तु वेद-मत्रो मे मानवीय भावना का जो रूप दिखाई पड़ता है, उसमे शत्रु के नाश, पशु-वृद्धि, दीर्घ जीवन व सतान-सम्पदा-वृद्धि आदि की प्रार्थनाएँ ही अधिक हैं।

अनार्यों का धर्म—उधर आर्यों के यज्ञो से पृथक् इस देश की दूसरी आदिम जातियों की धार्मिक भावना दूसरे प्रकार की थी। तत्कालीन सामान्य जनता अर्थात अनार्य—नाग, निषाद, किन्नर, गधर्व, कोल, भील, द्रविड, पुलिंद, शवर आदि कबीलो मे मानवीय भावना एक दूसरे रूप मे प्रकट होती हुई दिखाई देती है। ये जातियाँ या कबीले अपने भौतिक जीवन की सफलता के लिए वैदिक देवताओ से भिन्न स्थानीय देवी-देवताओ को पूजती थी, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा कुछ प्राकृतिक शक्तियों की "पूजा" इनमे प्रचलित थी, ये लोग पशु-बलि करते थे, नर-बलि भी इसमे सम्मिलित थी, तथा जीवन के लिए आवश्यक द्रव्यो की भी भेंट दी जाती थी। सामूहिक नृत्यो व सामूहिक मदिरा आदि के पान का भी आयोजन होता था—ऐसे उत्सवो मे पितर-पूजा, वीर-पूजा, फसल पक जाने पर देव-पूजा तथा विवाह आदि अवसरो पर की गई पूजाएँ प्रचलित थी। ऐसी पूजाओ का विस्तृत वर्णन श्री फ्रेजर ने प्रसिद्ध ग्रथ 'Golden Bough' मे किया है। अनार्यो द्वारा यह पूजा उनके भौतिक सघर्ष के "सहायक-तत्त्व" के रूप मे ही दिखाई पड़ती है। हमे आदिम

---

[1] लेख सम्पादकों द्वारा यथास्थान सुधारा जाकर स्थानाभाव के कारण सक्षिप्त रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। — सम्पादक

कबीलो मे "धर्म और जादू" मिश्रित रूप मे दिखाई पडते है और इन सबका उद्देश्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करके भौतिक जीवन को सुविधामय और सुखी बनाना है।

स्थानीय देवी-देवताओ—जिनमे पशु-पक्षी, वृक्ष आदि के "टोटेम" अधिक पूजित होते थे— का प्रभाव प्रारम्भ मे आर्य-यज्ञ प्रणाली पर नही पडा। आर्य लोग, जैसा कहा गया है सूक्ष्म शक्तियो के उपासक थे। बाद मे जब आर्य और अनार्यों का सम्पर्क बढा तो उनमे सास्कृतिक समन्वय आरम्भ हुआ। पहले तो आर्यों ने कुछ अनार्य कवीलो के देवताओ को स्वीकार कर लिया। "रुद्र" को उन्होने ऋग्वेद मे ही स्वीकार कर लिया था, यजुर्वेद मे विस्तृत "रुद्रध्यायी" मिलती है। अथर्ववेद मे अनार्य कबीलो मे चलने वाले "जादूमिश्रित धर्म" को आर्यों ने यथावत् स्वीकार कर लिया है, परन्तु बहुत से आर्य-विद्वान उमे 'वेद' ही नही मानते थे। उसे 'वेद-तत्त्व' माना गया तब उसमे ऋग्वेद के बहुत से मत्र भर दिए गए।

परन्तु धर्म या उपासना के ये दो रूप—आर्य-यज्ञ-प्रणाली व अनार्य उपासना-पद्धति—उपनिषद् युग तक समानान्तर रूप से विकसित होती रही। विजित अनार्य कबीलो के, जिनकी भौतिक स्थिति विपन्न और दुरावह थी, भक्ति-स्तोत्रो मे "दैन्य" अधिक मिलता है और यह "दैन्य" आगे चलकर "आर्य-स्तोत्रो" मे भी दिखाई पडा, क्योकि आर्यों की महात्त्वाकाक्षा सर्वदा सब समय पूरी होती थी, ऐसा नही कहा जा सकता।

धार्मिक समन्वय—इस प्रकार धीरे-धीरे आर्य-अनार्यों मे पारस्परिक समन्वय तथा सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित होने के कारण उनमे सास्कृतिक एक-रूपता की भावना धीरे-धीरे विकसित हुई और वे एक दूसरे के निकट आते चले गये। आर्यों का विजयोन्माद जैसे-जैसे कम होता गया, अर्थात् आर्यों मे कुछ शासक हो गए और अधिक अश, अनार्यों के साथ कृषि-वाणिज्य मे लगता गया, वैसे ही जो "दैन्य" अनार्य लोगो के धार्मिक स्तोत्रो मे दिखाई पडता है, वह "आर्य-स्तोत्रो" मे भी आने लगा। उपनिषद्-युग मे जब आर्य दृष्टा "एक ब्रह्म" "एक आत्मा" के द्वारा सारे समाज मे एकता स्थापित कर रहा था, तभी श्वेता-श्वतर उपनिषद् द्वारा इस "दैन्य भाव" की प्रथम अभिव्यक्ति आर्य साहित्य मे भी दिखाई पडी। इसका अर्थ यह नही कि इसके पूर्व "दैन्य भाव" की अभिव्यक्ति मिलती ही नही। वह मिलती है, तथापि उपनिषद् युग के बाद इस भक्ति भाव के भीतर यह "दैन्य-भाव"—अपना विशेप महत्त्व रखता है।

भक्ति का उदय—"भागवत धर्म" या "पाँचरात्र धर्म" मे एक ओर और दूसरी ओर शैव शक्ति सम्प्रदायो मे यह "दैन्य" व्यक्त होता ही रहा और बराबर बढता गया। अत श्वेताश्वतर उपनिषद् से ही हम भक्ति-भावना का विकास मानते हैं, उस भक्ति-भावना का जिसमे सब कुछ देवता की "कृपा या अनुग्रह या पुष्टि" पर ही हमारा उद्धार अवलम्बित होता है, हमारा प्रयत्न महत्त्वहीन हो जाता है। इस प्रकार यहाँ तक आते-आते मानवीय प्रयत्न की जगह 'दैवी-कृपा' का सिद्धान्त ही सर्वोपरि हो गया। गीता मे भगवान् श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि "सभी धर्मों (प्रयत्नो) को छोडकर मुझ पर निर्भर रहो, मै तुम्हारा उद्धार कर दूँगा।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् बौद्ध-युग के आस-पास की कृति है, और गीता का वर्तमान रूप भी बौद्ध-युग की लम्बी अवधि मे शनै शनै विकसित हुआ है। भागवत धर्म व शैव धर्म भी—इसी युग मे विकसित हुए हैं। इन सब सम्प्रदायो का आधार भक्ति-भाव या 'दैवी कृपा' का सिद्धान्त है। शैव इसे 'शक्तिपात' व वैष्णव इसे ही 'अनुग्रह या कृपा' कहते है।

दैवी कृपा का यह सिद्धान्त इस युग मे इतना लोकप्रिय क्यो हुआ, इसके कारणो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि देश मे इस समय केन्द्रीय सत्ता की स्थापना हो चुकी थी। कई विशाल राज्यो का सगठन हो चुका था, तथा जन-जीवन मे पीड़न और विषमता तथा त्रास था। अपने ही लोग अत्याचार करते थे, उनकी कृपा पर शेष जनता का जीवन सुरक्षित था। अत कृपा के ऊपर भौतिक जीवन ही अवलम्बित था तो आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी "दैवी अनुग्रह" का सिद्धान्त यज्ञ-यागो से अधिक प्रचलित हुआ क्योकि 'यज्ञ-याग' तो सम्पत्तिशाली लोग या राजा ही कर सकते थे। इसलिए गीता के अर्जुन को जो भक्ति-भाव का उपदेश है वह प्रतीक मात्र है। वहाँ अर्जुन एक सामान्य मनुष्य के रूप मे सम्बोधित हुए है, ११ अक्षोहिणी कौरव सेना के नाशक अर्जुन नही।

विष्णु पूजा का विकास—हमने कहा है कि अनार्य कबीलो मे 'टोटेम उपासना' प्रचलित थी, यानी वाराह, कच्छप, वानर, मत्स्य, सर्प, पीपल आदि को देवता माना जाता था। इन अनार्य देवताओ को भी पुराणो मे मान्यता प्रदान करके एक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया। आप विष्णु के दशावतारो को देखे, इनमे प्रारम्भिक अवतारो मे 'टोटेम' भी स्वीकृत हुए हैं—मत्स्य, वाराह, हयग्रीव (अश्व) कच्छप, नृसिह (सिंह) आदि। आगे 'विष्णु देवता' के लिए "शेषनाग" व "गरुड" को "शैय्या" व "वाहन" के रूप मे स्वीकार किया गया है। नाग-पूजा नागो मे व गरुड-पूजा—सुपर्णो मे प्रचलित थी। वैष्णवो ने दोनो अनार्य कबीलो के देवताओ (टोटेमो) को 'विष्णु' के साथ सम्बद्ध कर दिया। रुद्रशिव और कालीदेवी के साथ तो स्पष्ट ही अनार्य देवी-देवताओ का समूह एकत्र कर दिया गया है—इस तथ्य को वैष्णव भी स्वीकार करते हैं।

स्वय विष्णु की एक प्राचीन मूर्ति मे तीन सिर मिले हैं, एक ओर शेर है, दूसरी ओर वाराह है, तीसरी ओर मनुष्य का शीश है।[1] ऐसी मूर्तियो से यह तथ्य स्पष्ट है कि विष्णु का जो सुन्दर रूप मिलता है वह भी क्रमश विकसित हुआ है, प्रथम इतना सुन्दर रूप नही था। 'रुद्र' का सुन्दर "शिव" रूप भी धीरे-धीरे विकसित है, "ध्यानी शिव" पर स्पष्ट ही "ध्यानी बुद्धो" (अवलोकितेश्वर, अमिताभ, अक्षोभ आदि पचध्यानी बुद्धो) का प्रभाव दिखाई पडता है।

इस प्रकार बौद्ध-युग मे वैदिक 'यज्ञ-याग' के समानान्तर— भागवत शैव-शाक्त सम्प्रदायो का विकास हुआ है। इन सम्प्रदायो मे एक देवता है—उस देवता का 'मन्त्र' है, ध्यान है, उसका वेष अस्त्र-शस्त्र व वाहन है। पूजा-उपासना के लिए देवता की

1 Ganesh—Allice—Getty—Oxford—1936 (See introduction by A Froucher, Pp 1—19)

'मूर्ति' है। उस 'मूर्ति' पर अनेक द्रव्य अर्पित किए जाते है। देवता के 'महात्म्य-कथन' के लिए अनेक कथाएँ कही जाती है। उसके स्वागत मे नृत्य, उत्सवादि का आयोजन किया जाता है। भक्त देवता के वेपादि का अनुकरण करते हैं—उपासना-पद्धति मे योग, ज्ञान व भक्ति—तीनो तत्त्व मिले रहते है। पाँचरात्र या भागवत धर्म की सहिताओ को देखिए—इन सहिताओ मे शैव-दर्शन व वैष्णव-दर्शन मिले-जुले रूप मे प्राप्त होता है। "अहिर्बुध्न्य"— जो ११ रुद्रो मे से एक "रुद्र" है, भागवत धर्म का उपदेश इन सहिताओ मे देते है। उपनिषदो के "मायावी बुद्ध" की जगह यहाँ "ब्रह्म या विष्णु या शिव" की "शक्तियाँ" सृष्टि करती हैं, फिर चाहे वह लक्ष्मी हो, उमा या काली हो या कोई अन्य नामधारिणी हो। ये "शक्तियाँ" या "देव-पत्नियाँ" देवता के साथ "चन्द्रचन्द्रिकावत्" एक मानी गई हैं। देवता की इच्छा से 'शक्ति' सृष्टि करती है। 'पाँचरात्र मत' मे भगवान् ही आराध्य है (शक्ति सहित)। बिना भगवान् के अनुग्रह के 'जीवात्मा' भगवान् को नही पा सकता। भगवान् की "शरणागति" ही एक मात्र उपाय है। एक मात्र शरणागति को उपाय मानने के कारण इसे "एकायन सम्प्रदाय" भी कहते थे। इस मत का दूसरा नाम "सात्वत" या भागवत सम्प्रदाय भी है। यद्यपि 'पाँचरात्रसत्र' का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण मे (१३-६-१) मे मिलता है, तथापि इस मत का विकास महाभारत काल अर्थात् 'बौद्ध-युग' मे ही हुआ है, क्योकि "वर्तमान रूप मे प्राप्त" महाभारत के नारायणीय उपाख्यान व गीता से ही इस मत के आदि रूप पर प्रकाश पडता है, और वर्तमान रूप मे प्राप्त महाभारत का समय ४०० ई० पूर्व से ४०० ई० तक है। इस मत के अनुसार हिंसा-प्रधान यज्ञ पाप है। पशु के स्थान पर यव-घृतादि की आहुति ही स्वीकृत है। पाँचरात्र मत मे कृष्ण ही देवता है—सकर्पण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि कृष्ण के "परिवार" के साथ उनकी उपासना की जाती है। इन परिवार-सदस्यो के आध्यात्मिक अर्थ किए गए है—सकर्पण ही "जवि" है, प्रद्युम्न—"मन" है, अनिरुद्ध "अहकार" है। शकराचार्य इस मत को शारीरिक भास्य (२।२।४२-४५) मे "अवैदिक मत" कहते है। डॉ० एस० एन० दास गुप्त ने अपने दर्शन के इतिहास मे बताया है कि पाँचरात्रो को वैदिक ब्राह्मण अपने साथ बिठाकर भोजन नही करने देते थे अर्थात् पाँचरात्र भक्त, ब्राह्मण होने पर भी "पक्ति वाह्य" थे, जबकि महाभारत मे पाँचरात्रो को "पक्ति पावन" कहा गया है।

पाँचरात्र मत—पाँचरात्र मत मे भगवान् के गुणो व शक्ति की उपासना की जाती है। भगवान् शक्तिमान् है और लक्ष्मी उनकी शक्ति है। दोनो मे "अविनाभाव" माना जाता है। यह शक्ति "क्रिया शक्ति" व "भूत शक्ति" के रूप मे पूजित है।

पाँचरात्र मत मे "मूर्ति पूजा" भी स्वीकृत है। योग व ज्ञान-मार्ग को भी स्वीकार किया गया है, परन्तु भक्ति को मुख्य माना गया है। शरणागति ६ प्रकार की मानी गई है—(१) आनुकूल्यस्य सकल्प—भगवान् के अनुकूल रहना, (२) प्रतिकूलस्य सकल्प—भगवान् के प्रतिकूल न रहने की प्रतिज्ञा, (३) रक्षिष्यतीति विश्वास—भगवान् रक्षा करेंगे, इसमे विश्वास, (४) गोप्तृत्ववरण—भगवान् को रक्षक मानना,

(५) आत्मनिक्षेप —आत्म-समर्पण , और (६) कार्पण्य—नितान्त दीनता ।[1]

शरणागति, भगवान् का अनुग्रह या कृपा, शक्तियो मे विश्वास, योग, ज्ञान व भक्ति का समन्वय, मन्दिर—मूर्त्ति-पूजा—ये तत्त्व शैव-वैष्णव-उपासना मे सामान्य है। शाक्तो मे केवल एक यह विशेषता पाई जाती है कि वे शक्ति को शक्तिमान् से अधिक महत्त्व देते है तथा पचमकार सेवी है। अन्य कोई अन्तर नही दिखाई पड़ता। फिर शाक्तो व शैवो मे दक्षिण-पथी शैव-शाक्त है—उनमे मन्दिर-मूर्त्ति-पूजा, ज्ञान-योग-भक्ति का समन्वय तथा भगवान् या देवी की कृपा मे विश्वास आदि तत्त्व सामान्य है।

वैष्णव धर्म तक आते-आते उपेन्द्र विष्णु भी इन्द्रादि देवताओ मे सर्वोपरि हो गये, और मूर्त्ति-पूजा का इस काल मे व्यापक प्रचार हुआ। इस काल तक आते-आते आदित्य विष्णु, कृष्ण व राम के रूपो मे, तथा 'रुद्र शिव' ही—भारतीय धर्म-साधना पर छा जाते है—यज्ञ 'होम' के रूप मे ही रह जाता है। बौद्ध प्रचार के कारण हिंसा की जगह अहिंसा प्रधान हो जाती है। इस प्रकार धार्मिक साधना का जो रूप पुराणो मे मिलता है, उसमे शिव विष्णु व देवी ही हिन्दू धर्म का आधार हो जाते है। प्राचीन यज्ञ-याग, ऋषि मुनि, "अतीत गौरव" के रूप मे बार-बार स्मरण किए जाते हैं परन्तु "इतिहास" बन जाते है, धर्म साधना पर वैष्णव-शैव व शक्ति सम्प्रदायो का प्रभाव बढ जाता है।

भागवतो द्वारा विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश तथा सूर्य—इन पाँच देवताओ की पूजा का प्रचार ४०० ई० पूर्व के बाद विशेष रूप से हुआ है। पुराणो मे जहाँ अनेक अनार्य देवी-देवताओ की स्वीकृति है, वहाँ इन पाँच देवताओ का महत्त्व सर्वोपरि है। स्मार्त्त ब्राह्मणो ने इस 'पचायतन पूजा' का प्रचार सबसे अधिक किया है, इसके समानान्तर शैवो ने शिव के अनेक रूप 'लकुलीश शिव', 'लिंगेश्वर' आदि का तथा शाक्तो ने अनेक देवियो की पूजा का प्रचार किया।

वैष्णवो मे महाभारत के वासुदेव या सात्वत सम्प्रदाय ने कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर, उनकी पूजा का प्रचार किया। कृष्ण के सम्बन्ध मे अनेक मत है। कुछ कृष्ण को छांदोग्य उपनिषद् के ऋषि 'घोर आंगिरस' का शिष्य मानते है और "देवकी-पुत्र कृष्ण" से उन्हे भिन्न मानते है। कुछ गोपियो के 'गोपाल कृष्ण' को महाभारत के कृष्ण से भिन्न मानते है, क्योकि महाभारत मे कृष्ण की शृगारिक लीलाओ का वर्णन नही मिलता, 'हरिवश पुराण' को परवर्ती माना जाता है।

पतजलि कृष्ण व कस के युद्ध सम्बन्धी एक नाटक (Painted Show) का उल्लेख करता है। पाणिनि को भी महाभारत के कृष्ण वासुदेव के सम्बन्ध मे कुछ

---

१ अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७—२८ एवम् ५२—१५-२५।

२ मूर्ति-पूजा का प्रचार कब हुआ इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस लेख के लेखक का मत है कि भक्ति-क्षेत्र में मूर्ति-पूजा अनार्यों से आई। पाश्चात्य विद्वान् डा० फर्कुहर और डा० कारपेंटर (Indian Antiquary) ने भी मूर्ति-पूजा को शूद्रों व द्रविड़ों से ली गई कहा है, परन्तु डॉ० पी० वी० काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना करते हुए यह लिखा है कि वैदिक युग में मूर्त्ति पूजा का प्रचार था। —सम्पादक

तथ्य ज्ञात थे। बेमनगर के स्तम्भ से पता चलता है कि 'हेलीडोरस' नामक ग्रीक वैष्णव था। गुप्त-युग मे "वाराह" का उल्लेख मिलता है।

'विष्णु-सम्प्रदाय' के सम्बन्ध मे इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि ईसा पूर्व की शताब्दियो मे ही, बौद्ध धर्म के समानान्तर, इस मत का प्रचार हो चुका था, और पुराण इस धर्म के प्रचार द्वारा विदेशियो को भी 'ब्राह्मण धर्म' मे दीक्षित कर रहे थे।

दशावतार—पुराणो" में विष्णु के 'दशावतार' के सम्बन्ध मे भिन्नता मिलती है, इससे भी विकास का पता चलता है। शान्ति पर्व मे दशावतारो मे 'बुद्ध' की जगह 'हस' का उल्लेख है। मत्स्य पुराण मे 'बुद्ध' को अवतार माना गया है, यद्यपि दशावतारो की सूची अन्यो से कुछ भिन्न है। "वृद्धहारीत" स्मृति मे 'बुद्ध' की जगह 'हयग्रीव' का उल्लेख है। साफ कहा गया है कि बुद्ध की पूजा मत करो। रामायण (वाल्मीकि-अयोध्याकाड—१०६-३४) मे कहा गया है कि बुद्ध "नास्तिक" व "चोर" थे। भागवत पुराण मे अवतारो की तीन सूचियाँ हैं, एक सूची मे २२ अवतार है, जिसमे बुद्ध, व्यास, कल्कि, वलराम भी शामिल है, अन्य मे कपिल, दत्तात्रेय स्वीकृत हैं। 'ब्रह्मपुराण' मे "बुद्ध-पूजा" पर विशेष बल दिया गया है। इसमे कहा गया है कि शाक्य मुनि के अनुगामी बौद्धो को दान देना चाहिए।[1] 'कृत्यरत्नाकर' मे कहा गया है कि वाराह पुराण के अनुसार "बुद्ध द्वादशी" को व्रत रखना चाहिए।

इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि ४०० ई० पूर्व से लेकर गुप्तकाल तक, जिसमे अधिकतर पुराण लिखे गए 'वैष्णव धर्म' का प्रचार हुआ। इस काल मे बौद्ध-धर्म के प्रति आर्य कटुता भी कम हुई। इससे इसी अवधि मे प्रचलित महायान धर्म से 'प्रभाव-ग्रहण' मे सुविधा हुई। यह स्थिति उत्तरी भारत की थी, यद्यपि कुछ लोग मानते है कि अधिकतर पुराण दक्षिण मे लिखे गए।

वैष्णव धर्म और महायान सम्प्रदाय—दक्षिण भक्ति के उदय का केन्द्र था। रामानुजाचार्य दक्षिण से ही उत्तर मे आये थे। आचार्य वल्लभ की जन्मभूमि भी आध्र दक्षिण मे ही है, जहाँ अशोक के राज्य-काल मे ही बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका था। अशोक के वाद २२५ ई० पूर्व से २२५ ई० तक आध्र पर सातवाहन राजाओ का शासन रहा। इस युग मे अश्वघोष, नागार्जुन, असग, वसुवधु, आर्यदेव आदि महायानियो के प्रयत्न से बोधिसत्वो की मूर्त्ति-पूजा का प्रचार हुआ। सुखावती सम्प्रदाय ने बुद्ध के नाम-जप, मूर्त्ति-पूजा आदि द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति सम्भव वताई। अनेक देवी-देवताओ की पूजा—वैष्णव शैव-देवी-देवताओ की पूजा की ही तरह चल पडी। इस महायान पूजा-पद्धति का प्रभाव सातवाहन शासन के वाद के ब्राह्मण धर्म पर वहुत अधिक पडा है।

दक्षिण देश की सभी प्रारम्भिक सस्कृति बौद्ध-प्ररणा से एक विशेष रूप को प्राप्त हुई, जिससे सातवाहन वश के वाद की ब्राह्मण-सस्कृति विकसित

---

१. काणे—जिल्द वही, पृष्ठ ७२१।

हुई। अतएव "भक्ति-सम्प्रदाय" जो वैदिक यज्ञयाग, जैन वैराग्यवाद तथा बौद्धो की चारित्र्यक कठोरता (Moralism) से दूर था, वह महायान धर्म के रूप मे बौद्ध मत मे भी उदित हुआ और वैष्णव मत मे भी। इन्होने एक दूसरे को प्रभावित भी किया।[1]

जिस तरह पौराणिक देवी-देवताओ के विचित्र वेष, वाहन आदि है, उसी तरह बौद्ध देवी-देवताओ के भी मिलते है। आन्ध्र मे मारीची देवी के ३ मुख है, ६ भुजाएँ है, वह धनुष-बाण धारण करती है। उसके पैरो मे दो ध्यानी बुद्ध आसीन हैं। यह देवी "अमिताभ" नामक ध्यानी बुद्ध की "शक्ति" है। 'तारा' 'अवलोकितेश्वर' की शक्ति है। इसकी आन्ध्र मे आज भी पूजा होती है। बौद्ध देवता रक्त-पिपासु हैं, भयकर है, (काली व रुद्र जैसे) उनमे चारित्र्यक दृढता नही है। विस्तृत पूजा व आचार द्वारा इन देवी देवताओ को प्रसन्न किया जाता है। महायान मे ईश्वर को इतना दयापूर्ण बनाया गया कि गलती से भी 'बुद्ध' का नाम ले लेने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। साधना के इस सरलीकरण का जब प्रचार हुआ तो उसमे दोष भी आगए और बौद्ध मठ व मदिर भ्रष्टाचार के अड्डे बन गए। और भी ऐसे अनेक ऐतिहासिक कारण उपस्थित हो गये जिससे उसका पतन अवश्यम्भावी हो गया और उसके स्थान पर वैष्णव धर्म, जो महायान बौद्ध धर्म की अच्छाइयो को भी सम्मिलित करके खडा हुआ था, लोकप्रियता मे शैव धर्म से भी आगे बढ गया, यद्यपि वैष्णव और शैव दोनो ही धर्मों के विकास की आधार-भूमि एक ही थी।

शाक्त प्रभाव—ईसवी छठी शताब्दी के पश्चात् सम्पूर्ण भारत मे 'शाक्त प्रभाव' बढता गया। प्रत्येक देव के साथ एक-एक 'शक्ति' की कल्पना यद्यपि हम देख चुके हैं कि वह पुरानी है, तथापि पौराणिक युग मे इसका विशेष प्रचार हुआ। महायान-धर्म के उत्तरवर्ती रूप—वज्रयान व सहजयान मे 'शक्ति-साधना' शुरू हुई। यह मान लिया गया कि जिस "राग" से बन्धन होता है, उसी 'राग' से 'मुक्ति' होनी चाहिए। गौतम बुद्ध का वह रूप आदर्श माना गया, जब वह कपिलवस्तु के राज-भवन मे गोपा व अन्य सुन्दरियो के साथ 'विहार' करते थे, नृत्य, उत्सव मे भाग लेते थे। उधर 'शाक्तो' ने 'लता-साधना' पर बल दिया—योनि-पूजा प्रस्तुत की, पचमकार का प्रभाव बढा। शैवागमो ने पौराणिक युग मे ही, छठी शताब्दी के बाद से "शक्ति-साधना" को ही स्वीकार किया, जिसका सैद्धान्तिक रूप काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा-वादियो ने प्रस्तुत किया। स्वय शकराचार्य को दक्षिण-पथी शाक्त' बताया जाता है। "वैष्णव" इस शाक्त साधना से अलग रहे तथापि प्रकारान्तर से उन पर भी प्रभाव पडा। ईसा की ७, ८, ९, १०, ११,—इन पाँच शताब्दियो मे भारतीय धर्म-साधना को "शाक्त-साधना" कहा जा सकता है। दक्षिण मे इसका विशेष प्रचार हुआ।

---

1 "All the earlier culture of the Deccan, came to a definite shape under Buddhist stimulus out of which emerged the new Brahmanical culture of the Post-Satvahan period"

—*Buddhist Remains in Andhra K R Subramaniam, Madras, 1932.*

भक्ति का प्रचार—यह स्मरणीय है शैव व वैष्णव आड़वारो ने तमिल देश मे 'भाव-प्रधान-भक्ति' का प्रचार इन्ही शताब्दियो मे किया था, इसमे भाव-प्रधान था, क्रिया नही। क्रिया मे 'मूर्त्ति-पूजा' स्वीकृत थी, परन्तु 'शाक्ताचार' वर्जित था। आड़-वारो की परम्परा को यमुनाचार्य व रामानुज ने शास्त्रीय आधार दिया और शकरा-चार्य के 'सथासवाद' का खण्डन किया। उधर वगाल मे जयदेव, व मिथिला मे विद्या-पति ने "सहजिया बौद्धो" के अनुकरण पर—कृष्ण व उनकी शक्ति 'राधा' के प्रेम व विलास का वर्णन किया और इधर रामानुज ने 'राम-सम्प्रदाय' का उत्तर भारत मे प्रचार किया। निम्बार्क, चैतन्य व वल्लभ ने वैष्णव-भक्ति का दिगन्तव्यापी शखनाद किया परन्तु, सस्कृति का केन्द्र इस वार न दक्षिण बना न काशी। अबकी वार वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार ब्रजभूमि से हुआ और श्रीमद्भागवत इस प्रचार का मुख्य माध्यम बना।

गोस्वामी हरिराय जी के दोहे—

ब्रज-महिमा

(१)

श्री ब्रज, ब्रजरज, ब्रजवधू, ब्रज के जन समुदाय।
ब्रज-कानन, ब्रज-गिरन को, वदों सदा सत-भाय ॥

(२)

ब्रजवासी वल्लभ सदा, मेरे जीवन-प्रान ।
तिनको निमिष न विसरिहो, नन्दराय की आन ॥

(३)

ब्रज तजि अनत न जाइहो, मेरे तो यह टेक ।
भूतल भार उतारिहों, धरि हो रूप अनेक ॥

(४)

ब्रज, वृन्दावन, गिर, नदी, पसु-पछी सव अग ।
इनसों कहा दुरावनो, ये सव मेरो अग ॥

: ५ :

व्रजक्षेत्र और श्री कृष्ण-भक्ति

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', विश्वविद्यालय, अलीगढ

जैसा कि पूर्व अध्याय मे कहा गया है १६वी शताब्दी मे भक्ति के प्रसार का मुख्य केन्द्र व्रजभूमि थी, जहाँ से सगुण कृष्ण-भक्ति की धारा सर्वत्र प्रवाहित हुई। अत, हम इस सम्बन्ध मे आगे चर्चा करने से पहले व्रजभूमि का वर्णन करना उचित समझते हैं।

व्रज शब्द के अर्थ का विकास—वैदिक साहित्य मे लेकर आज तक 'व्रज' शब्द अपने अर्थ का विकास करता हुआ भी अपने आत्म-गत रूप को अक्षुण्ण रूप मे सुरक्षित किये हुए है। मस्कृत भाषा की 'व्रज्' धातु (=जाना) से 'व्रज'[1] शब्द का निर्माण हुआ है। इसे ही परिनिष्ठित हिन्दी अथवा व्रजभाषा मे 'व्रज' रूप मे लिखते हैं।

ऋग्वेद सहिता मे 'व्रज' शब्द का प्रयोग 'पशुओ का वाडा', 'पशुओ के चरने का स्थान' अथवा 'पशुओ के समूह' के अर्थ मे हुआ है। मधुच्छन्दा ऋषि इन्द्र देवता की स्तुति अनुष्टुप् छन्द मे करते हुए कहते है—"हे इन्द्र! तेरा दिया हुआ यश सर्वत्र फैलता है और सहज मे प्राप्त भी होता है। तू हमारे लिए गौओ का वाडा खोल दे।"[2]

त्रित ऋषि त्रिष्टुप् छन्द मे अग्नि देव की प्रार्थना करते हुए कहते है—"हे तरुण! शीत से पीडित मानव तेरी सेवा मे उसी प्रकार आते हैं जिस प्रकार कि गायें उष्ण गोशाला मे आती हैं।"[3]

अमरकोश का रचना-काल ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग माना जाता है। अमरकोशकार ने भी 'व्रज' शब्द को गोष्ठ, मार्ग और समूह का पर्यायवाची ही माना है।[4]

हरिवश पुराण मे 'व्रज' शब्द का प्रयोग उस स्थान अर्थात् गाँव के अर्थ मे हुआ है जो मथुरा के निकट था और नन्द का गोष्ठ कहलाता था। आजकल वह 'गोकुल' नाम से विख्यात है। जिम समय उस गोष्ठ के निवासी उसे खाली करके वृन्दावन चले गये थे, तब वह स्थान मन को क्षुब्ध बनाने वाला हो गया था। उस

---

१ "व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रज।"

२. "गवामप व्रज वृधि कृणुष्व राधो अद्रिव।"—ऋ० १।१०।७

३ "य त्वा जनासो अभि सचरन्ति गाव उष्णमिव व्रज यविष्ठ।" —ऋ० १०।४।२

४ 'गोष्ठाध्वनिवहा व्रजा।" —अमर० ३।३।३०

सुनसान गाँव पर उस समय कौए मँडराने लगे थे।[1]

श्रीमद् भागवतकार का 'व्रज'—श्रीमद्भागवत के रचना-काल तक आते-आते 'व्रज' शब्द का विकास-वृत्त अपने व्यास को कुछ बढाता हुआ दृष्टिगत होता है। तब उसकी परिधि केवल 'गोष्ठ' अर्थ को हा नही छूती, अपितु गोकुल गाँव की क्षेत्रगत परिसीमाओ को भी स्पर्श करती है। श्रीवर भागवतकार ने 'व्रज' शब्द का प्रयोग नन्द बाबा के निवास-ग्राम 'गोकुल' के अर्थ मे तो किया ही है, किन्तु साथ ही साथ गोकुल के आस-पास तथा चारो ओर के खेतो सहित क्षेत्रफल के अर्थ मे भी किया हुआ मालूम पडता है। आजकल लेखपाल (पटवारी) के मानचित्र की पारिभाषिक शब्दावली मे 'गाँव' का जो अर्थ लिया जाता है, लगभग वैसा ही अर्थ भागवतकार के 'व्रज' शब्द का लिया जा सकता है।

यदि आज हिन्दी भाषा मे यह कहा जाय कि 'हमने गोकुल मे काफी बडे हिरन देखे है' तो इसका लक्षणा से यही अर्थ है कि वक्ता ने काफी बडे हिरनो को गोकुल के निकटवर्ती जगल या खेतो मे देखा है, क्योकि हिरन सामान्यत बस्ती मे नही रहते। अतएव वक्ता की दृष्टि से 'गोकुल' का अर्थ केवल बस्ती विशेप ही नही लिया जाएगा, अपितु उस बस्ती तथा उसकी सीमा मे समाविष्ट होने वाले जगल और खेतो को भी सम्मिलित किया जाएगा। ठीक इसी दृष्टिकोण से भागवत मे भी 'व्रज' शब्द का उल्लेख हुआ है। श्री कृष्ण के वेणु-वादन के प्रभाव को बतलाते हुए भागवतकार ने लिखा है कि जब श्रीकृष्ण वेणु-वादन करते है तब व्रज के झुण्ड के झुण्ड बैल, गायें, हरिण आदि उनके पास दौड आते है —

"वृन्दशो व्रज वृषामृग गावो।"—श्रीमद्भागवत, १०।३५।५

'घोष' अर्थात् अहीरो की छोटी बस्ती के अर्थ मे भी 'व्रज' शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत मे हुआ है जो सामान्यत एक गाँव से छोटी मानी गई है—

"शिशूश्चकार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु।"—श्रीमद्भागवत १०।६।२

उपर्युक्त श्लोकाश मे आये हुए पुर, ग्राम और व्रज शब्दो से यह भान होता है कि रचयिता की दृष्टि मे 'पुर' से छोटा 'ग्राम' और 'ग्राम' से छोटा 'व्रज' है। इसीलिए अवरोह-क्रम से तीनो शब्दो का प्रयोग किया गया है।

ऋग्वेद से लेकर श्रीमद्भागवत तक के साहित्य पर एक विहगम दृष्टि डालने पर हमे 'व्रज' शब्द के अर्थगत रूप मे एक निश्चित स्वरूप अवश्य मिलता है और परवर्ती साहित्यिक क्रम में उसी स्वरूप की छटा छिटकी हुई दृष्टिगोचर होती है। वैदिक साहित्य का 'व्रज' (गोष्ठ) जिस प्रकार गाय-बैलो से परिपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार पुराण साहित्य का 'व्रज' भी गोप, गाय आदि से अलकृत है, चाहे वह नन्द का गोकुल हो अथवा गोपियो का 'व्रज'—

---

१ "क्षणेन तद् व्रज स्थान मीरण समपद्यन।
द्रुम्यावयव निर्धूत कीर्णवायसमण्डलं॥"
—हरिवश पुराण माहात्म्य, अ० १०, श्लोक १६, पृ० २८३

"गच्छ देवि व्रज भद्रे ! गोप गोभिर लङ्कृतम् ।"—श्रीमद्भागवत १०।२।७

इसमे कोई सन्देह नही कि भागवतकार की दृष्टि मे मथुरा और व्रज बिलकुल पृथक्-पृथक् है—

"कस्मान् मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहात् व्रज गत ।"[1] श्रीमद्भागवत १०।१।९

× × ×

"व्रजे वसन् किमकरोन् मधुपुर्यां च केशव ।"[2] श्रीमद्भागवत १०।१।१०

× × ×

"रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूर व्रजमागतम् ।"[3] श्रीमद्भागवत १०।३९।१३

भागवतकार की दृष्टि मे 'गोकुल' और 'व्रज' शब्द एक ही गाँव अर्थात् नन्द के गाँव के अर्थ मे अपना स्वरूप प्रकट करते है —

"इति सञ्चिन्तयन् कृष्ण श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुल प्राप्त सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ।"[4] श्रीमद्भागवत १०।३८।२४

× × ×

"ददर्श कृष्ण राम च व्रजे गोदोहन गतौ ।"[5] श्रीमद्भागवत १०।३८।२८

श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के सातवें *अध्याय* के श्लोक २१ व २२ मे एक ही गाँव (नन्द-यशोदा का निवास-ग्राम) के लिए 'गोकुल' और 'गोष्ठ' शब्द का उल्लेख हुआ है। अतएव हम यह भी कह सकते है कि भागवतकार की दृष्टि मे 'गोष्ठ', 'गोकुल', 'व्रज' आदि शब्द एक ही स्थान अर्थात् एक मुख्य बस्ती के अर्थ-द्योतक है। गायो के कुल (=समूह) से परिपूर्ण होने के कारण ही नन्द का गाँव 'व्रज' सज्ञा का अधिकारी बना है —

"अनुगीयमानो न्यविशद व्रज गोकुलमण्डितम्" श्रीमद्भागवत १०।१८।१

व्रज का प्रादेशिक रूप—इस प्रकार 'जनपद' या देश के अर्थ मे 'व्रज' शब्द का प्रयोग हमे प्राचीन सस्कृत-साहित्य मे नही मिला। हिन्दी-साहित्य मे मथुरा के आस-पास के प्रदेश के लिए 'व्रज' शब्द का प्रयोग मिलता है। चौरासी वार्ता, सूरदास की वार्ता, प्रसग मे 'व्रज' शब्द प्रदेश के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है—

"सो एक श्री आचार्यजी महाप्रभू अडेल ते व्रज को पधारे ।"[6]

आचार्य वल्लभ आदि कृष्ण-भक्त आचार्यो एव अष्टछापी कवियो के प्रभाव से आगे चलकर हिन्दी-साहित्य मे 'व्रज' शब्द भाषा के अर्थ मे भी प्रयुक्त होने लगा।

१ भगवान् श्री कृष्ण पिता के घर से व्रज को क्यों गये ?

२ श्री कृष्ण ने व्रज में और मथुरा में रहते हुए क्या-क्या किया ?

३ गोपियों ने सुना कि बलराम और श्री कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए अक्रूर जी व्रज में आये हैं।

४ श्री शुकदेव जी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित ! श्वफल्कसुत अक्रूर मार्ग में इसी प्रकार विचार करते हुए रथ द्वारा गोकुल पहुँच गये और सूर्य अस्ताचल पर चले गये।

५ अक्रूरजी ने व्रज में पहुँच कर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयों को गाय दुहने के स्थान में विराजमान देखा।

६ देखिए डा० धीरेन्द्र वर्मा-कृत "व्रजभाषा-व्याकरण", प्रकाशक रामनारायण लाल इलाहाबाद, सन् १९५४, पृ० १०।

डा० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि भिखारीदास-कृत 'काव्यनिर्णय' (भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १८९९ ई०, अ० १, छन्द १४) मे कदाचित् 'ब्रजभाषा' शब्द पहले-पहल आया है।" इसलिए यह कहा जा सकता है कि विक्रम की १८वी शती के अन्तिम समय मे 'व्रज' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ मे अवश्य होने लगा होगा, क्योकि 'काव्य-निर्णय' का रचना-काल स० १८०३ वि० माना जाता है। कविवर भिखारीदास लिखते है—

"ब्रजभाषा हेतु ब्रजबास हीं न अनुमानो।"—काव्यनिर्णय अ० १, छ० १६

आज 'व्रज' शब्द का प्रचलित अर्थ न गोष्ठ है और न केवल गोकुल ग्राम, अपितु यह शब्द अब 'ब्रज-प्रदेश' और 'ब्रजभाषा' के अर्थो मे ही प्रयुक्त होता है।

सर विलियम जोन्स को इण्डिया आफिस मे लायब्रेरी से प्राप्त मिर्जा खाँ इब्न-फखरुद्दीन मुहम्मद रचित फारसी ग्रथ 'तुहफतुल हिन्द' (सन् १६७६ ई०) मे 'व्रज' को मथुरा नगर के केन्द्र के चारो ओर ४ कोस के घेरे मे माना गया है। उक्त ग्रथ के अंग्रेजी अनुवादक श्री एम० जियाउद्दीन ने अपने अंग्रेजी रूपान्तर मे प्राचीन प्रमाणो के आधार पर पाद टिप्पणियो मे व्रज-मण्डल का घेरा ३ फरसख अर्द्धव्यास का बताया है, जब कि १ फरसख की दूरी की नाप ३½ मील के बराबर मानी गई है।[१]

'मथुरा' मेमोयर मे ग्राउज महोदय ने नारायण भट्ट-कृत एक 'व्रज-भक्ति-विलास'[२] नामक सस्कृत ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए 'ब्रज' को प्रदेश के रूप मे सिद्ध किया है। ग्राउज महोदय के कथनानुसार 'व्रज-भक्ति विलास' मे 'ब्रज-मडल' का विस्तार इस प्रकार है—

"पूर्वं हास्यवन[३] नीय, पश्चिमस्योपहारिक।
दक्षिणे जह्नुसज्ञाक, भुवनाख्य तथोत्तरे॥"

इस श्लोक के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ग्राउज महोदय ने लिखा है कि पूर्व का हास्यवन अलीगढ जिले का बरहद वन है। पश्चिम का उपहार वन गुडगाँव जिले मे सोन नदी के किनारे पर बसा हुआ है। दक्षिण का जह्नु नाम का वन सूरसेन का गाँव है जो बटेश्वर के निकट है और उत्तर का भुवनवन शेरगढ के निकट है जो भूषणवन भी कहलाता है। इन्ही सीमा-स्थानो से सम्बन्धित 'व्रज-प्रदेश' के विस्तार के विषय मे यह एक दोहा बहुत प्रचलित है—

"इत बरहद* उत सोनहद*, उत सूरसेन को गाँव*।
व्रज चौरासी कोस मे, मथुरा मडल माँह॥"[४]

---

१ देखिए "ए ग्रामर आफ दि ब्रजभाखा।" विश्वभारती शोप कलकत्ता, सन् १९३५, पृष्ठ ३५।

२ यह ग्रथ मथुरा से बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वालों ने प्रकाशित कर दिया है।
—सम्पादक

३ अलीगढ़ जिले की तहसील सिकन्दराराऊ का 'हसायन' गाँव।

४ डा० दीनदयालु गुप्त 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', मा० स० प्रयाग स० २००४ वि०, पृ० २, ३।

*बरहद=अलीगढ जिले का एक गाँव। सोनहद=गुड़गाव की सोन नदी की हद, 'सूरसेन कौ गाँव'=यमुना के किनारे का बटेश्वर स्थान।

आज कृष्ण-भक्तो द्वारा जो चौरासी कोस की व्रज-यात्रा की जाती है उसमे व्रज क्षेत्र के १२ वन और २४ उपवन आते है। इन बारह वनो की रज मस्तक पर लगाते हुए जो यात्रा की जाती है, वह ८४ कोस के लगभग ही है—वर्तमान समय मे भी व्रज के १२ वन और २४ उपवन प्रसिद्ध है। पुराणो मे इन वनो व उपवनो के विस्तृत वर्णन हुए है, जिनकी चर्चा आगे के अध्यायो मे की जाएगी।

विशुद्ध व्रजभाषा की दृष्टि से व्रजभाषा का प्रमुख क्षेत्र मथुरा, आगरा, धौलपुर और अलीगढ जिला है। सामान्यतया व्रजभाषा उत्तर मे बुलन्दशहर और बदायूँ जिलो तक, दक्षिण मे करौली, धौलपुर और ग्वालियर तक, पूर्व मे फर्रुखाबाद तक और पश्चिम मे अलवर राज्य तक बोली जाती है। अष्टछाप के कवियो के प्रभाव के कारण व्रजभाषी क्षेत्र आज पूर्णतया कृष्ण-भक्ति का क्षेत्र है। व्रज-मण्डल का तो कण-कण कृष्ण का कीर्तन करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

सगुण ब्रह्मोपासना—सम्पूर्ण भारतवर्ष मे शिव, शक्ति, राम और कृष्ण की भक्ति ही प्रमुख रूप से प्रचलित है। सगुण ब्रह्मोपासना के अन्तर्गत पचोपासना मे भी ईश्वर को निम्नाकित पांच रूपो मे ही माना गया है—(१) शिव, (२) शक्ति (३) सूर्य, (४) गणेश, और (५) विष्णु। विष्णु की उपासना पर आधारित वैष्णव भक्ति ही राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति के रूप मे विभक्त होकर विकसित हुई।

ईश्वर मे आसक्ति या अनुरक्ति का नाम ही 'भक्ति' है। वैदिक काल से ही भारत मे धर्म के साधन क्षेत्र मे कर्म, ज्ञान तथा उपासना का प्राधान्य रहा है। निर्गुण ब्रह्मोपासक[1] भक्तो ने जिस 'जप' की लीला और महिमा गायी है, ब्रह्मा आदि उसी 'जप' का आश्रय लेते हैं—

"सर्ववेद सारभूता, गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥"

—देवी भागवत, ११।१६।१५

नवधा-भक्ति का 'नाम-स्मरण' एक प्रकार से 'जप' का पर्यायवाची ही तो है। निर्गुण ब्रह्मोपासको के 'ध्यान' और 'जप' एक प्रकार से सगुण भक्तो के 'कीर्तन' और 'स्मरण' ही है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के वर्णनो के आधार पर कहा जा सकता है कि विष्णु और शिव को भक्तिवाद का आराध्य देव माना जाता था।

वैदिक काल के उपरान्त रचे जाने वाले साहित्य मे दो ग्रथ परम प्रसिद्ध और प्रामाणिक है—एक, पाणिनि-कृत 'अष्टाध्यायी' और दूसरा बौद्ध ग्रथ 'दीघ निकाय'। 'दीर्घ निकाय' मे विष्णु और शिव का उल्लेख हुआ है। मैक्समूलर ने पाणिनि का समय ईसा से ३५० वर्ष पूर्व निश्चित किया है, किन्तु बहुत वाद-विवाद के उपरान्त डा० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रबल प्रमाणो के साथ पाणिनि का समय ई० पू० ५०० वर्ष और ई० पू० ४०० वर्ष के बीच मानते है। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे 'भक्ति' (४।३।९५),

---

१ 'पचदशी में 'निर्गुण ब्रह्मतत्त्वोपासना' की सम्भावना स्वीकार की गई है। वेदान्त की 'ब्रह्म जिज्ञासा' वस्तुत भक्ति ही है जिसे 'ब्रह्म विषयक अनुरक्ति' कहा गया है। आत्मरति वास्तव में अद्वैत भक्ति है जिसे बादरायण ने आत्मैकपरा भक्ति कहा है।

'भक्त' (४।४।६८), 'भक्ताख्य' (६।२।७१) आदि शब्दो का उल्लेख हुआ है। इतन ही नही पाणिनि ने 'वासुदेवार्जुनाभ्याम् वुन्' (अष्टा० ४।३।६८) सूत्र से यह सिद्ध किया है कि वसुदेव की भक्ति करने वाले 'वासुदेवक' कहलाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि ईसा से ४०० वर्ष पूर्व भारतवर्ष मे 'भक्तिवाद' का प्रादुर्भाव हो गया था। 'महाभारत' शान्तिपर्व मे नारायणी धर्म का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। वस्तुत अर्जुन और वासुदेव नाम नर-नारायण के ही नामान्तर है।[1]

ब्रज-भक्ति के आराध्यदेव 'कृष्ण' है। वे ही विष्णु हैं और ब्रह्म भी। अत 'कृष्ण-भक्ति' का दूसरा नाम विष्णु-भक्ति या वैष्णव-भक्ति भी है। एक प्रकार से वैष्णव-भक्ति की महिमा मूलत कृष्ण-भक्ति की ही महिमा है।

वैदिक साहित्य मे विष्णु और रुद्र देवताओ का वर्णन मिलता है। वैदिक काल के विष्णु की कल्पना ही वामनावतार की कल्पना की जननी है। पुराणो मे 'हरि' अर्थात् 'विष्णु' के लिए 'उरुक्रम' शब्द का प्रयोग हुआ है क्योकि हमारे वैदिक साहित्य मे ऋषियो ने विष्णु के लिए 'उरुक्रम' का प्रयोग किया था—

"श नो मित्र श वरुण। श नो भवतु अर्यमा।
श नो इन्द्रो बृहस्पति। श नो विष्णु उरुक्रम.॥"

ऋग्वेद मे 'रुद्र' मध्यम श्रेणी के देवता हैं जो विनाशकारी शक्तियो (विद्युत् आदि) के रूप मे प्रकट होते है। सिन्धु घाटी की सभ्यता मे एक पुरुष देवता की मूर्ति मिली है जो 'शिव' से मिलती है। जब सिन्धु घाटी के लोगो का वैदिक आर्यों के साथ सम्मिश्रण हुआ तब उस पुरुष देवता का वैदिक रुद्र के साथ आत्मसात् हो गया। वैदिक साहित्य मे 'अम्बिका' रुद्र की भगिनि है। किन्तु सिन्धु घाटी के पुरुष देवता के साथ एक देवी की उपासना भी प्रचलित थी। वैदिक रुद्र के साथ मिलकर वह देवी फिर रुद्र-पत्नी के रूप में पूजित हुई। फिर वैदिक काल के उपरान्त वह 'शक्ति' के रूप में आई। इसकी उपासना से ही भारतवर्ष में शक्ति अथवा तान्त्रिक मत का सूत्रपात हुआ।

वैदिक साहित्य मे जिस रुद्र को विनाशकारी देवता बताया गया है, उसे ही श्वेताश्वतर उपनिषद् मे 'शिव नाम दिया है और उसे कल्याणकारी कहा गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् से प्रकट होता है कि जिस समय उपनिषदो के दार्शनिक सिद्धान्तो का निर्माण हो रहा था, उसी समय भक्तिवाद की धारा भी प्रवाहित हुई थी। इस भक्तिवाद ने ही सिन्धु घाटी की धार्मिक परम्परा के प्रभाव से देवालयो मे पूजार्चन की प्रथा चलाई। शनै शनै उत्तरी और दक्षिणी भारत मे शिव की पूजा का प्रचार हुआ। शैवो और शिवालयो की सख्या आशातीत रूप मे वृद्धि को प्राप्त हुई। सस्कृत-साहित्य मे महाकवि बाण तक हमे शिव-मन्दिरो का ही वर्णन अधिक मिलता है। कालिदास ने अपने 'मेघदूत' मे उज्जयिनी के शिव-मन्दिर[2] का वर्णन किया ही है।

---

१ 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', लेखक—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १.० २०१२, पृ० ३५३।

२ "अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले।
स्थातव्य ते नयनविषय यावदत्येति भानु।"— पूर्वमेघ, श्लोक ३६

काश्मीर तो शिवोपासक पडितो और कवियो का प्रसिद्ध प्रान्त ही रहा है। शक्ति की भक्ति का प्रवाह वगाल मे आज तक भी वह रहा है, किन्तु इन शिव-शक्ति के भक्ति-क्षेत्रो मे अव कृष्ण-भक्ति किस रूप मे आसनारूढ पायी जाती है, इस पर भी हमे विचार-विवेचन करना है और वैष्णव-भक्ति के विकास पर भी एक विहगम दृष्टि डालनी है ।

श्री कृष्ण-भक्ति और व्रज-मण्डल—आज व्रज-क्षेत्र कृष्ण-भक्ति का तीर्थ स्थल और प्रमुख पीठ है। उत्तरी और दक्षिणी भारत के हजारो यात्री प्रति वर्ष व्रज-यात्रा करने, मन्दिरो मे भगवान् कृष्ण के दर्शन करने और रास-लीला देखने आते है। इस भक्ति-भाव से विभोर होकर और व्रज-भूमि की छटा देखकर वे जव अपनी जन्म-भूमि को वापिस जाते हैं तब उसका वर्णन वे अपने परिवारियो को सुनाते हैं ताकि व्रज-छटा और व्रज-पति की क्रीडा-स्थलियो की गुणावली से उनके जन्मजन्मान्तर के पाप भी कट जायें। इस प्रकार काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तक और नवद्वीप (नदिया) से द्वारका तक व्रज का वर्णन भारतवर्ष मे सुनने को मिलता है। उत्तरी-भारत मे यद्यपि सख्या तो शिव के मन्दिरो की ही अधिक पायी जाती है लेकिन व्रजेश्वर कृष्ण और व्रजेश्वरी राधा के मन्दिरो मे जो जीवन-शोभा और आकर्षण पाया जाता है वह शिव-मन्दिरो मे नही, क्योकि महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे दीक्षित हुए कृष्ण-भक्त कवियो ने भगवान् का जो अष्टयामिक जीवन चित्रित किया है, उसी प्रवाह के कारण राधा-कृष्ण के मन्दिरो मे मूर्त्ति-पूजा विषयक कोई न कोई कार्यक्रम चलता ही रहता है । जैसे—प्रभाती से श्री कृष्ण जी का उठना, शृगार करना, गोचारण, भोजन, शयन आदि । पुष्टि मार्ग के आचारानुसार श्री कृष्ण जी को भोग समर्पण की प्रथा है। उस भोग मे अनेक प्रकार के व्यजनो का रहना आवश्यक है। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति की सेवा-भाव की प्रणाली मे एक सरसता, मधुरता और तल्लीनता है।

निम्नाकित अठारह पुराणो पर एक दृष्टि डालने पर यह आभास मिलता है कि नाम भेद से विष्णु का वर्णन ही उनमे से अधिकाश मे पाया जाता है—(१) ब्रह्म-पुराण, (२) पद्म पुराण, (३) विष्णु पुराण, (४) शिव पुराण, (५) भागवत-पुराण, (६) नारदीय पुराण, (७) मार्कण्डेय पुराण, (८) अग्नि पुराण, (९) भविष्य पुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (११) लिग पुराण, (१२) वाराह पुराण, (१३) स्कन्द पुराण, (१४) वामन पुराण, (१५) कूर्म पुराण, (१६) मत्स्य पुराण, (१७) गरुड़ पुराण, और (१८) ब्रह्माण्ड पुराण । इन अठारह पुराणो मे से विष्णु-पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण मे विष्णु को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला है। वेद—ब्राह्मण ग्रन्थो के साधारण देवता 'विष्णु' पुराण-साहित्य तक आते-आते शनै. शनै अवतार के श्रेष्ठ पद पर आरूढ हो गये। ईसा के ४०० वर्ष पूर्व वैष्णव-धर्म का उद्‌भव हो गया था, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। इसी का परि-वर्द्धित रूप भागवत धर्म है। ईसा के कुछ वर्ष वाद आभीरो ने भागवत धर्म मे श्री कृष्ण की भावना सम्मिलित करदी। ईसा की आठवी शताब्दी मे यह धर्म शकराचार्य के अद्वैतवाद के सम्पर्क मे आया। 'भागवत धर्म' भक्ति-प्रधान था और अद्वैतवाद

ज्ञान-प्रधान अतएव शकराचार्य के मायावाद से इसे टक्कर लेनी पडी । इसी सघर्ष के फलस्वरूप भक्तिवाद की एक धारा ११वी शताब्दी मे रामानुजाचार्य के श्री सप्रदाय के रूप मे प्रादुर्भूत हुई । इससे पहले दक्षिणी भारत मे आडवारो मे भक्ति की धारा भागवत धर्म की दिव्य धरा पर ईसा की ७वी शती से ९वी शती तक प्रवाहित हो चुकी थी । तमिल गीतो के रूप मे यह साहित्य आज भी मिलता है । ईसा की १०वी शताब्दी मे श्री नाथ मुनि ने दक्षिण भारत मे भागवत धर्म का उत्थान किया । गुप्त-वश के राजाओ ने तो वैष्णव भक्ति तथा भागवत धर्म का बहुत प्रचार किया था । उनके समाप्त होते ही छठी शताब्दी मे वैष्णव-भक्ति की धारा उत्तरी भारत मे दब गई और उसके स्थान पर शैव और बौद्ध धर्मों की प्रबलता हो गई । आठवी शताब्दी मे शकराचार्य ने अपने ज्ञानवाद का शख फूँका और बौद्ध धर्म को भारत से निकाल बाहर किया । नीरस एव अकर्मण्य बने हुए अद्वैतवादियो को सरस भक्ति का पाठ पढाने के लिए चार आचार्य शकराचार्य के विरोध मे उठ खडे हुए । उनके नाम इस प्रकार थे— (१) रामानुज (२) मध्व (३) निम्बार्क (४) विष्णु स्वामी । इनके उपरान्त वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव धर्म की कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार किया । प्रारम्भ मे निम्बार्क ने विष्णु रूप मे कृष्ण की भावना को अधिक प्रचारित किया और उसके साथ राधा के रूप का भी योग कर दिया । १३वी शताब्दी में मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का और भी अधिक प्रचार किया । सोलहवी शती मे वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग के अन्तर्गत कृष्ण-राधा का प्रेमात्मक निरूपण किया और बंगाल मे चैतन्य महाप्रभु ने बालकृष्ण के मधुर रूप के साथ-साथ राधा का योग करके कृष्ण भक्ति-मार्ग मे प्रेम की धारा को अधिक प्रशस्त और वेगवती बनाया । दक्षिण भारत मे नामदेव और तुकाराम ने विष्णु मे 'विट्ठोवा' नाम की उद्भावना की । उक्त आचार्यो द्वारा विष्णु के रूप प्रमुखत चार नामो से विख्यात हुए— (१) राम, (२) कृष्ण, (३) जगन्नाथ, और (४) विट्ठोवा ।

इन उक्त चारो की भक्ति के केन्द्र भी भारत मे परम प्रसिद्ध हुए । अयोध्या, चित्रकूट और नासिक को राम की भक्ति का केन्द्र माना गया । मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, नाथद्वारा और द्वारका कृष्ण-भक्ति के केन्द्र बने । पुरी और बद्रीनाथ श्री जगन्नाथ जी की भक्ति के केन्द्र माने गये । शोलापुर और काचीवरम् विट्ठोवा-भक्ति के केन्द्र-स्थान प्रसिद्ध हुए । इसके अतिरिक्त वल्लभाचर्य और चैतन्य महाप्रभु के निवास तथा उपदेशो के प्रभाव से अडेल (इलाहाबाद के निकट का स्थान) और नवद्वीप (नदिया = बगाल का एक स्थान) के आस-पास का क्षेत्र भी कृष्ण-भक्ति का क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ । इतना ही नही, अष्टछाप के ब्रजभाषी कवियो (सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविन्द स्वामी) की कविताओ के प्रभाव से सारा उत्तरी भारत कृष्ण-भक्ति और 'ब्रज-भूमि-वैभव' का प्रेमी बन गया । हिन्दू तो क्या, मुसलमान तक भी ब्रज की रज मस्तक पर चढाकर परम पद को प्राप्त हुए । विक्रम की सोलहवी और सत्रहवी शती का सारा ब्रजभाषा-साहित्य ब्रज और ब्रजेश, भगवान् कृष्ण की गुणावलियो से भर गया और ब्रजभूमि बाद मे श्री कृष्ण-भक्ति के प्रधान केन्द्र के रूप मे विकसित

हुई। महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके पुत्र गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने गोकुल और गोवर्द्धन को तथा महाप्रभु चैतन्य देव द्वारा ब्रजवास और ब्रजोद्धार के लिए भेजे गये रूप-सनातन गोस्वामी प्रभृति विरक्त भक्तो ने विशेष रूप से वृन्दावन तथा राधाकुण्ड को केन्द्र बना कर कृष्ण-भक्ति का मधुर प्रसाद सम्पूर्ण देश को वितरित किया। उधर महाप्रभु हित हरिवंश, स्वामी हरिदास जी तथा भक्ति क्षेत्र मे नारदावतार कहे जाने वाले प्रसिद्ध और कर्मठ भक्त नारायण भट्ट जैसे अनेक भक्तो ने ब्रज भक्ति और श्री कृष्ण-भक्ति को बहुत अधिक बल दिया।

कवि जगतनंद कृत 'ब्रज-वस्तु-वर्णन' के कुछ अंश

ब्रज के प्रसिद्ध पर्वत

गोवर्द्धन, नँदगाँव मे, अरु बरसाना, काम।
चरण-पहाड़ी, पाँच ये, 'जगतनंद' अभिराम॥

ब्रज के प्रमुख कूप

ब्रज मे लख दस कूप हैं, सप्त-समुद्रहि जान।
नंद-कूप, अरु इन्द्र-कूप, चन्द्र-कूप करि मान।
एक कूप भाँडीर कौ, करण-वेध कौं कूप।
कृष्ण-कूप आनंदनिधि, वेनु-कप, सुखरूप॥
एक जु कुबजा कूप है, गोप-कूप लखि लेहु।
जगतनंद बरनन करत, ब्रज सों करौ सनेहु॥

ब्रज के रास-मंडल

वृन्दावन मे पाँच हैं, क्रीडत ब्रज के ईस।
ब्रज में मंडल रास के, 'जगतनंद' तैंतीस॥
द्वै मडल हैं कामवन, नन्दगाँव में एक।
दोइ करहला बीच हैं, दोइ दानगढ़ टेक॥
एक साँकरी खोर में, इक परवत में मान।
एक मानगढ़ देखिये, द्वै विलास-गढ़ जान॥
गहवर बन में एक है, अरु सकेत हो चारि।
एक पिसाये, जावबट दोइ लखो उर धारि॥
एक कोकिला विपिन में, तीन जु ऊँचे गाँउ।
सिला खिसलनी एक है, इक गिरि टीले नाउँ॥
एक सुनहरा बीच है, कदम-खण्डि मधि एक।
इहै पुरातन जानिये, नूतन भये अनेक॥

: ६ :

भक्ति-क्षेत्र और ब्रजभूमि

द्वारकादास परीख

सम्पादक, 'वल्लभीय सुधा', मथुरा ।

भक्ति और ब्रज का सम्बन्ध—भक्ति का ब्रज से अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है । अष्टछाप के कवियो ने तो यहाँ तक गाया है कि—

'भक्ति श्री गोकुल तें प्रकट भई'

श्री भागवत के माहात्म्य मे कहा है कि भक्ति को नवयौवनत्व वृन्दावन मे प्राप्त हुआ । इसलिए ब्रज-भक्ति-रस की सिद्ध-पीठस्थली है । यही कारण है कि भक्तो की भावना के अनुसार 'ब्रज' नित्य है और अनादि है । ठीक उसी प्रकार जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग अनादि हैं उसी प्रकार 'ब्रज' भी अनादि माना गया है । इस पर आगे विचार किया जायगा ।

भक्ति का स्वरूप[1] और उसका क्षेत्र—'नारदपचरात्र' आदि ग्रन्थो मे भक्ति को सर्वतोऽधिक सुदृढ स्नेह रूप से कहा है ।[2] वास्तव मे भक्ति का स्वरूप प्राणीमात्र के हृदय मे रही हुई रति की वह कोमल वृत्ति है जिससे वह प्राणी नवो रसो का प्रतिक्षण अनुभव करता रहता है । यह कोमल वृत्ति लोक सम्बन्ध वाली रहती है तब तक वह लौकिक सुख-दुखो का अनुभव जीव को कराती है । जब वही वृत्ति भगवद् सम्बन्धिनी हो जाती है तब वह अलौकिक आत्मानुभूति रूप आनन्द का अनुभव कराती है । यह आनन्द चिरस्थायी और दिव्य होता है । उसमे आत्मा और परमात्मा का सयोग—मिलने का योग होता है । इसलिए यह भक्ति 'योग' स्वरूप कही गयी है ।

वास्तव मे देखा जाय तो भक्ति का क्षेत्र अति विशाल है । उसमे काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सौहृदयता आदि अनेक भावो का अवलम्बन रहता है । किसी भी अवलम्बन को लेकर प्राणी हृदय की अपनी कोमल वृत्ति को ईश्वर से सम्बन्धित कर भक्ति-क्षेत्र मे आ सकता है । इस क्षेत्र मे न तो जातीयता है न वर्ण व आश्रम विशेष की आवश्यकता है । चाहे जीव नर हो, या नारी हो पशु-पक्षी हो या और भी कोई जाति हो वह उक्त अवलम्बनो में से किसी एक अवलम्वन द्वारा ईश्वर से अपना

---

१ भक्ति क्या है ? इसकी व्याख्या विविध भक्तों ने विभिन्न प्रकार से की है । इससे पहले अध्याय में डा० अम्बा प्रसाद 'सुमन' ने भी 'भक्ति' की व्याख्या की है और इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मतों की चर्चा की है । यहाँ श्री परीखजी ने पौराणिक दृष्टि-कोण से भक्ति के स्वरूप का वर्णन किया है । —सम्पादक

२ "माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह ...इति भक्ति"

भूला हुआ सम्बन्ध फिर जोडकर भक्ति-क्षेत्र मे आ सकता है। इसी प्रकार हूण, किरात, पुलिंद आदि जातियाँ एव ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र आदि वर्ण तथाच ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ एव सन्यस्त आदि आश्रम पालन करने वाले जीव भी भक्ति-क्षेत्र मे आ सकते हैं। इस दृष्टि से भक्ति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत सिद्ध होता है।[1]

इस प्रकार सक्षिप्तत भक्ति का स्वरूप और उसके क्षेत्र को जान लेने के पश्चात् अब हमे भक्ति क्षेत्र मे ब्रज का क्या स्वरूप माना गया है इस पर विचार करना उचित होगा। तभी हम भक्ति और ब्रज के सम्बन्ध की वास्तविकता को भी जान सकेंगे।

वैदिक साहित्य मे ब्रज का उल्लेख गायो के चरागाह के रूप मे हुआ है। ऋग्वेद मे हुए उल्लेख की चर्चा पहले हो चुकी है। पूर्व उल्लिखित विवरणो के अतिरिक्त भी ऋग्वेद मे मन्त्र २, सू० ३८ ; मन्त्र ८, मन्त्र ५, सू० ३५ ; मन्त्र ४, मन्त्र १०, सू० ४ इत्यादि मे भी 'ब्रज' शब्द का प्रयोग ढोरो के चरागाह या वाडे अथवा पशु-समूह के अर्थो मे हुआ है। स्थानाभाव से यहाँ उन मन्त्रो को नही दिया जा रहा है। अथर्व वेद मे ३.२ ५, ४ ३८ ७ तथा शाखायन आरण्यक में २, १६ मे भी 'ब्रज' का उल्लेख मिलता है।

'सहिताओ' मे भी इसी प्रकार के मन्त्र मिलते है। जैसे कि—

"ते ते धामान्युश्मसि गमध्यै गावो यत्र भूरि शृंगा अयास।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णो परमं पदमवभाति भूरे ॥"

—तैत्तरीय सहिता १.३ ६

यह मन्त्र ऋग्वेद के उक्त मन्त्र के अनुसार ही है। इसमे केवल 'ता वा वास्तू' के स्थान पर 'ते ते धामा' और वृष्ण के स्थान पर 'विष्णो' कहा है। अर्थ वही है। इसमे भी भगवान् के धाम को, जहाँ गाय और पशु रहते हैं "परम पद गोकुल" कहा है।

इसी प्रकार तैत्तरीय सहिता के १ ३ ६ के अन्य मन्त्रो मे भी उस धाम को जहाँ गायें निवास करती है "परम पद श्री गोकुल" कहा है।

इसी परम धाम को छादोग्य उपनिषद् मे 'ब्रह्मपुर' कहा गया है। जैसा कि—

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहर पुण्डरी क वेश्म

आगे चलकर इसी मे कहा है कि—

"नास्य जरयैतज्जीर्यते न वधे नास्य हन्यते।
एतत्सत्य ब्रह्मपुरमस्मिन् कामा समाहिता ॥"

अर्थात् वह 'ब्रह्मपुर' वृद्धावस्था से जीर्ण नहीं होता है और न ही वध से उसका नाश होता है। यह 'ब्रह्मपुर' सत्य है, और उसमे भक्तो के सभी काम समाहित है।

इन उल्लेखो का तात्पर्य यह है कि गायो और ढोरो के निवास-स्थान रूप

---

१ "जाति-पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई ॥"

—सम्पादक

गोलोक वा गोकुल 'ब्रज-ब्रह्मपुर' है। वह ब्रज सदा अविनाशी और जरा आदि जीर्ण-शीर्ण धर्मों से रहित नित्य तथाच भक्तो की सभी कामनाओ से निहित है।

इन्ही प्रमाणो के आधार पर भक्ति-क्षेत्र मे इस 'व्रज' को भगवान् श्री कृष्ण की नित्य लीला-स्थली और सदा षट्-ऋतु सम्पन्न नूतन माना है।[1] क्योकि भक्तो की भावना के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण, उनकी लीलायें, और ब्रज-भूमि सभी नित्य हैं।

नित्य ब्रजभूमि—पौराणिक वर्णनो से जिनके उद्धरण यहाँ स्थानाभाव से नहीं दिये जा सके हैं यह प्रमाणित होता है कि भगवान् की ब्रजलीला, और ब्रजभूमि नित्य और दिव्य हैं। परब्रह्म श्री कृष्ण सृष्टि के आदि काल मे ब्रह्मकल्प के पश्चात् पद्मकल्प के सारस्वत कल्प मे अपने मूल 'ब्रह्मपुर' सह ब्रज मे पूर्ण रूप से अवतीर्ण हुए। तब से यह ब्रज परिपूर्णता को प्राप्त हुआ है। अर्थात् ब्रज मे भी नित्य-लीला की स्थिति हुई है। और जिस भक्त को यह नित्य-लीला का सुदृढ ज्ञान हो जाता है उसको भगवान् श्री कृष्ण के अनवतार दशा मे भी इसी ब्रज मे भगवान् की लीलाओ का दर्शन हुआ है और आज भी होता है। सूरदास, हरिवश, हरिदास आदि महानुभावों के चरित्र इस बात के साक्षी रूप है।

वृहद् वामन पुराण मे जहाँ तीर्थराज का प्रसग है वहाँ ब्रज को भगवान् ने अपना घर कहा है। जब प्रयागराज ने भगवान् से कहा कि महाराज ! आपने मुझे सब तीर्थों का राजा किया और पृथ्वी के सब तीर्थ मेरे पास आये किन्तु 'व्रज' नही आया है। तब भगवान् ने कहा कि मैंने तुझे तीर्थों का राजा किया है मेरे घर का नही। 'व्रज' मेरा घर है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्रज भगवान् का निवास-स्थान—घर है। उसकी महत्ता अवर्णनीय है। इसीलिए भक्ति-क्षेत्र मे ब्रज की नित्यता सिद्ध है। उसको गोकुल, ब्रह्मपुर, गोलोक व परमपद भी कहते हैं। यही कारण है कि हमारे पुराण ग्रन्थ ब्रज सम्बन्धी विवरणो से परिपूर्ण हैं, जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

श्रीमद्भागवत में व्रज का उल्लेख—भक्ति के इस महान् शास्त्र मे समस्त ब्रज के दो प्रमुख विभाग माने हैं। एक वृहद्वन दूसरा वृन्दावन। उनके अन्तर्गत गोकुल, भाण्डीर वन, भद्रवन, मधुवन, तालवन, कुमोदवन आदि वनो का समावेश किया गया है। श्रीमद्भागवत मे जिन स्थानो पर वृहद्वन और वृन्दावन का उल्लेख हुआ है वे ये हैं—

"कच्चित्पशव्य विरुजं भूर्यम्बुतृण वीरुधम्।
वृहद्वन तदधुना यत्रास्से त्व सुहृदवृत. ॥ १०-५-२६

इस श्लोक मे वसुदेव जी नन्दराय जी से कहते हैं कि तुम अभी जहाँ सुहृदो

---

१. "ललित ब्रजदेस गिरिराज राजें।
घोष सीमतिनी सग गिरिवर धरण, करत नित्य-केलि तहाँ काम लाजें॥
त्रिविध पवन चरे, सुखद झरना झरे, अमित सौरभ तहाँ मधुप गाजें।
ललित तरु फूल फल, फलित खट-ऋतु सदा, 'चतुर्भुज दास' गिरिधर समाजें॥"
—चतुर्भुजदास

से आवृत्त होकर रहते हो वह वृहद्वन पशुओ का हितकारी, रोग-रहित, और वहुत जल, घास और लता-पता से युक्त है।

इस वृहद्वन को, जहाँ नन्दरायजी का निवास था, इसी अध्याय मे 'व्रज' और 'गोकुल' की सज्ञा भी दी है। देखिये—

(१) "तत आरभ्य नदस्य व्रजः सर्व समृद्धिवान्।"

× × ×

(२) "गोपाल गोकुल रक्षाया निरुप्य मथुरां गत ।"

प्रथम मे 'शुकोक्ति रूप' से कहा गया है कि जब से भगवान् का आविर्भाव हुआ तब से नन्द का व्रज सर्व समृद्धिवान् हुआ।

दूसरे मे नन्दरायजी कस को कर देने के लिए मथुरा गये तब गोकुल की रक्षा के लिए गोपालो को रखा ऐसी 'शुकोक्ति' है। यहाँ उसी वृहद्वन 'व्रज' को गोकुल कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि श्री नन्दराय जी का कृष्ण-जन्म के समय इस वृहद्वन मे निवास था। यही पर भगवान् का जन्म, पूतना-वध, तृणावर्त-वध, शकटासुर-वध और अन्य वाल-लीलाएँ भी हुई हैं।

यह वृहद्वन श्री यमुना के पार, सामने उत्तर-पूर्व दिशा मे आज भी महावन के नाम से विद्यमान है। आज 'महावन' एक कस्वा के रूप मे है किन्तु उस समय नन्दघाट के सामने के भद्रवन से लेकर भाण्डीरवन, माटवन, वेलवन, लोहवन और महावन तथा श्री गोकुल तक व्याप्त था।

श्री मद्भागवत में दूसरा प्रमुख वन 'वृन्दावन' कहा है। जैसे कि—

"वन वृन्दावनं नामं पशव्य नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्य पुण्याद्रितृण वीरुधम्॥" (१०-११-१७)

यमलार्जुन-भजन के पश्चात् उपनन्द नाम का वृद्ध गोप नन्दराय जी से कह रहा है कि गोकुल मे अनेक उत्पात होते हैं अत अपने को वृहद्वन छोड कर दूसरे वन वृन्दावन मे जाना चाहिए। वह वृन्दावन कैसा है उसी का श्लोक मे वर्णन किया है।

"वृन्दावन नाम का वन पशुओ का हितकारी है। गोप, गोपी और गायो के सेवन करने योग्य है, और पवित्र पर्वत, घास और लताओ से युक्त नवीन वन है।" आगे इसी अध्याय के २५वें श्लोक[1] मे इसी वन मे यमुना के तटो का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। अत यह स्पष्ट है कि उस वृन्दावन मे गोवर्द्धन, यमुना और अनेक नाना प्रकार के सुन्दर वन भी थे। यह वृन्दावन आज के प्रसिद्ध वृन्दावन से लेकर मधुवन तक की भूमि है। उस समय मधुवन मे श्री यमुना का प्रवाह था। इसकी पुष्टि श्री भागवत के 'ध्रुवाख्यान' से होती है। इसी प्रकार आज के जमुनावता ग्राम से यह भी स्पष्ट होता है कि यमुना उस समय वहाँ पर थी। इसीलिए 'जमुनावता' नाम उस गाँव का पडा है। जहाँ-जहाँ पहले जमुना जी वहती थी वहाँ-वहाँ आज भी झीलें दिखाई देती है और कुआँ खोदने पर जमुना जी की रेती निकलती है। गिरिराज मे आज भी सर्वत्र जहाँ-जहाँ कुआँ खोदा जाता है वहाँ-वहाँ जमुना जी की रेणुका

---

१ "वृन्दावन गोवर्द्धन यमुना पुलिनानि च। वीक्ष्यामीदुत्तमा प्रीति राममाधवया नृत्य।"

निकलती है। इससे यह स्पष्ट है कि वृन्दावन मे यमुना और गोवर्द्धन दोनो थे। अष्टछाप की वार्ता[1] और पुराणो के अनुसार उस समय सारस्वत कल्प मे श्री यमुना जी की ब्रज मे दो धाराएँ बहती थीं। एक चीरघाट से मथुरा होकर आगरा की ओर जाती थी, दूसरी नन्दग्राम, बरसाना, कामा और पूंछरी होती हुई जमुनावता जाती थी, यह धारा आगरा की ओर जो धारा बहती थी उसमे मिल जाती थी।

इसी प्रकार गोवर्द्धन भी उस समय चार योजन ऊँचा था, अत दुपहरी बाद गोवर्द्धन की छाया मथुरा पर पडती थी। इस ऊँचाई के आधार पर गोवर्द्धन की चौडाई भी काफी होगी, यह माना जा सकता है। आज मथुरा में जमीन मे से गोवर्द्धन की सैकडो छोटी-मोटी शिलाएँ नर्मदा बाई वाली धर्मशाला की खुदाई मे निकली हैं। यदि गोवर्द्धन उस समय मधुवन तक फैला हो तो कोई असम्भव बात नही मानी जा सकती है। अस्तु, इस वृन्दावन के मधुवन, तालवन, कुमोदवन, कामवन आदि विभागो का उल्लेख भी श्रीमद्भागवत मे मिलता है। इससे यह जाना जा सकता है कि उस समय ब्रज के दो मुख्य विभाग थे एक बृहद्वन दूसरा वृन्दावन।

अष्टछाप के सस्थापक श्री विट्ठलेश प्रभुचरण ने भी इन दो विभागो का उल्लेख अपनी 'यमुनाष्ट पदी' मे किया है—

"वृ दावने चारु बृहद्वने, मन्मनोरथ पूरय सूरसूते।
दग्गोचर' कृष्णविहार एवं स्थिति स्त्वदीये तट एव भूयात्।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि मथुरा के पार सामने जो वन हैं वे सब बृहद्वन के अन्तर्गत हैं और मथुरा के इस पार के जो वन है वे सब वृन्दावन के अन्तर्गत माने गये हैं।

मत्स्य पुराण[2] मे कहा कि शेषनाग के फणो मे ठीक मध्य-स्थल पर कुमुद नामक फण विराजित है। उसके उपरि भाग मे सकल स्थानो के फलस्वरूप चौरासी कोस परिमित ऊँचा स्थान है। यह श्री 'ब्रज-मण्डल' है। जो श्री कृष्ण के विहार के लिए है। स्वय श्री कृष्ण द्वारा विरचित पच्चीस हजार तीर्थ उस 'ब्रज-मण्डल' मे विद्यमान हैं।

भविष्य पुराण मे कहा है कि यमुना के दक्षिण तट मे मथुरा से लेकर ९२ वन है। यथा—(१) मथुरा, (२) राधाकुण्ड, (३) गढ, (४) नन्दग्राम, (५) ललिताग्राम, (६) वृषभानपुरा, (७) गोवर्द्धन, (८) कामनावन, (९) जाववट, (१०) नारदवन, (११) सकेत, (१२) काम्यवन, (१३) कोकिलावन, (१४) तालवन, (१५) कुमुदवन, (१६) छत्रवन, (१७) खदिरवन, (१८) भद्रवन, (१९) बहुलावन, (२०) मधुवन, (२१) जह्नुवन, (२२) मेनकावन, (२३) कजलीवन, (२४) नन्दकूपवन, (२५) कुशवन, (२६) अप्सरावन, (२७) विह्वलवन, (२८) कदम्बवन, (२९) स्वर्ण-

---

१ 'कुम्भनदास की वार्ता' का 'भाव प्रकाश'।
२ "ब्रज मण्टल भूगोल, शेषनाग फण वर।
कुमुदाख्य महाश्रेष्ठ सर्वेषा मध्य सस्थितम्॥
तस्यो परिस्थित लोक सर्व स्थान महाफलम्।"

निकलती है। इससे यह स्पष्ट है कि वृन्दावन मे यमुना और गोवर्द्धन दोनो थे। अष्ट-छाप की वार्ता[1] और पुराणो के अनुसार उस समय सारस्वत कल्प मे श्री यमुना जी की ब्रज मे दो धाराएँ बहती थी। एक चीरघाट से मथुरा होकर आगरा की ओर जाती थी, दूसरी नन्दग्राम, बरसाना, कामा और पू छरी होती हुई जमुनावता जाती थी, यह धारा आगरा की ओर जो धारा बहती थी उसमे मिल जाती थी।

इसी प्रकार गोवर्द्धन भी उस समय चार योजन ऊँचा था, अत दुपहरी बाद गोवर्द्धन की छाया मथुरा पर पडती थी। इस ऊँचाई के आधार पर गोवर्द्धन की चौडाई भी काफी होगी, यह माना जा सकता है। आज मथुरा में जमीन मे से गोवर्द्धन की सैकडो छोटी-मोटी शिलाएँ नर्मदा बाई वाली धर्मशाला की खुदाई मे निकली हैं। यदि गोवर्द्धन उस समय मधुवन तक फैला हो तो कोई असम्भव बात नही मानी जा सकती है। अस्तु, इस वृन्दावन के मधुवन, तालवन, कुमोदवन, कामवन आदि विभागो का उल्लेख भी श्रीमद्‌भागवत मे मिलता है। इससे यह जाना जा सकता है कि उस समय ब्रज के दो मुख्य विभाग थे एक बृहद्‌वन दूसरा वृन्दावन।

अष्टछाप के सस्थापक श्री विट्‌ठलेश प्रभुचरण ने भी इन दो विभागो का उल्लेख अपनी 'यमुनाष्ट पदी' मे किया है—

> "वृ दावने चारु बृहद्‌वने, मन्मनोरथ पूरय सूरसूते।
> दग्गोचर कृष्णविहार एव स्थिति स्त्वदीये तट एव भूयात्।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि मथुरा के पार सामने जो वन हैं वे सब बृहद्‌वन के अन्तर्गत हैं और मथुरा के इस पार के जो वन हैं वे सब वृन्दावन के अन्तर्गत माने गये हैं।

मत्स्य पुराण[2] मे कहा कि शेषनाग के फणो मे ठीक मध्य-स्थल पर कुमुद नामक फण विराजित है। उसके उपरि भाग मे सकल स्थानो के फलस्वरूप चौरासी कोस परिमित ऊँचा स्थान है। यह श्री 'ब्रज-मण्डल' है। जो श्री कृष्ण के विहार के लिए है। स्वय श्री कृष्ण द्वारा विरचित पच्चीस हजार तीर्थ उस 'ब्रज-मण्डल' मे विद्यमान है।

भविष्य पुराण मे कहा है कि यमुना के दक्षिण तट मे मथुरा से लेकर ६२ वन है। यथा—(१) मथुरा, (२) राधाकुण्ड, (३) गढ, (४) नन्दग्राम, (५) ललिताग्राम, (६) वृषभानपुरा, (७) गोवर्द्धन, (८) कामनावन, (९) जाववट, (१०) नारदवन, (११) सकेत, (१२) काम्यवन, (१३) कोकिलावन, (१४) तालवन, (१५) कुमुदवन, (१६) छत्रवन, (१७) खदिरवन, (१८) भद्रवन, (१९) वहुलावन, (२०) मधुवन, (२१) जह्नुवन, (२२) मेनकावन, (२३) कजलीवन, (२४) नन्दकूपवन, (२५) कुशवन, (२६) अप्सरावन, (२७) विह्वलवन, (२८) कदम्बवन, (२९) स्वर्ण-

---

१ 'कुम्भनदास की वार्ता' का 'भाव प्रकाश'।

२ "ब्रज-मण्डल भूगोल, शेषनाग फण वर।
कुमुदाख्य महाश्रेष्ठ सर्वेषा मध्य मस्थितम्॥
तस्यो परिस्थित लोक सर्व स्थान महाफलम्।"
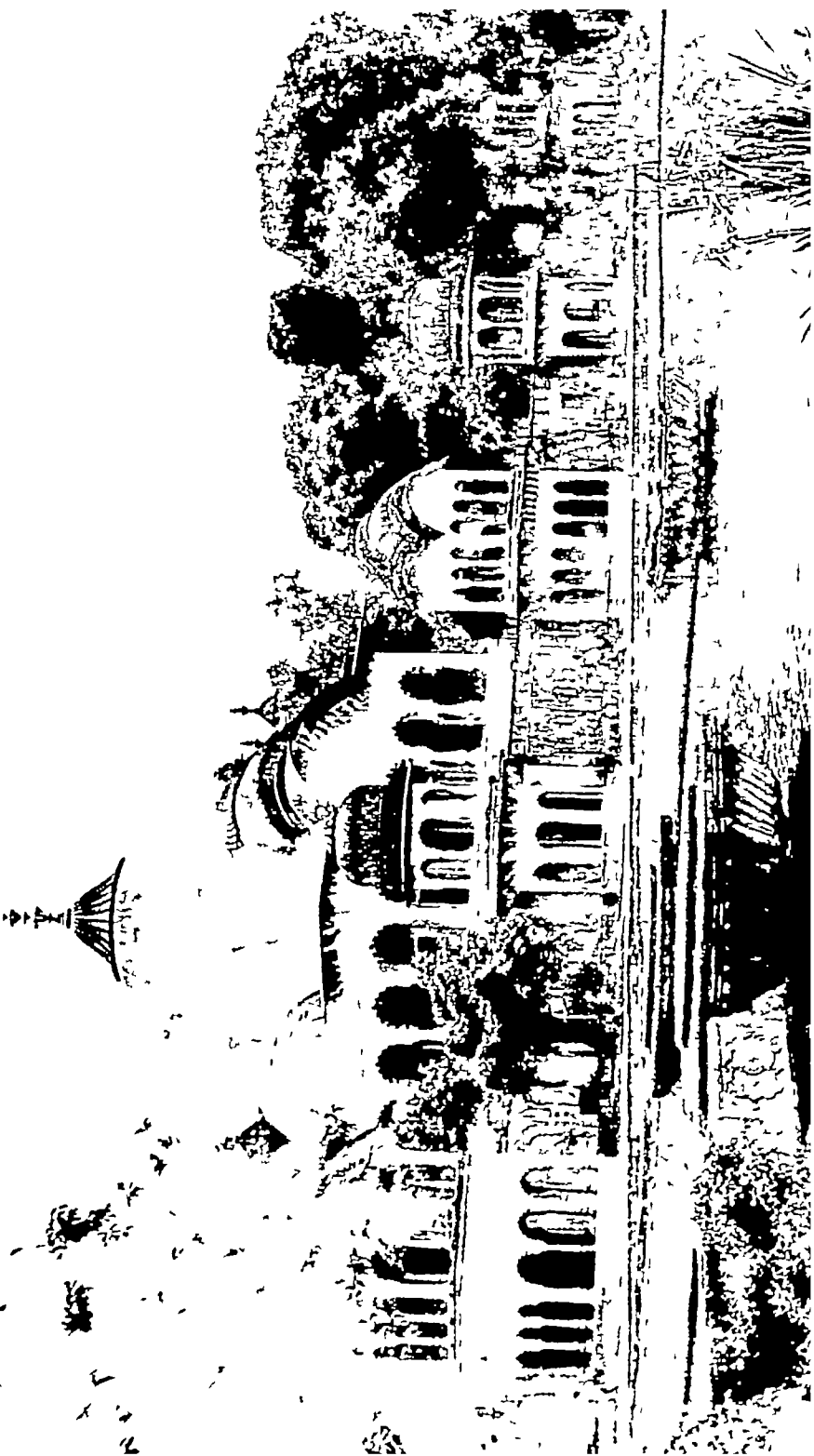
वन, (३०) सुरभीवन, (३१) प्रेमवन, (३२) मयूरवन, (३३) मनोगितवन, (३४) शेष-शयनवन, (३५) वृन्दावन, (३६) परमानन्दवन, (३७) रकप्रत्तिवन, (३८) वार्त्तावन, (३९) करहपुरवन, (४०) अजनवन, (४१) कर्णावन, (४२) क्षिपनवन, (४३) नन्दन-वन, (४४) इन्द्र वन, (४५) शिक्षावन, (४६) चन्द्रावलीवन, (४७) लोहवन, (४८) सारिकावॅन, (४९) जातिवन, (५० तारावन, (५१) नागवन, (५२) सूर्यपतनवन, (५३) तिलवन, (५४) त्रिभुवनवन, (५५) विस्मरणवन, (५६) पर्वत-पहारीवन, (५७) अशोकवन, (५८) नारायणवन (५९) सखीवन, (६०) गोदृष्टिवन, (६१) स्वपनवन, (६२) गह्वरवन, (६३) कपोतवन, (६४) लघुशेपशयनवन, (६५) हाहा-वॅन, (६६) गहनवने, (६७) गन्धर्ववन, (६८) ज्ञानवन, (६९) नीतवन, (७०) लेपन-वन, (७१) प्रशसावन, (७२) मेलनवन, (७३) परस्परवन, (७४) पाडरवन, (७५) वीर्य्यवन, (७६) मोहनीवन, (७७) विजयवन, (७८) निम्बवन, (७९) गोपनवन, (८०) वियद्वन, (८१) नूपुरवन, (८२) पुण्यवन, (८३) यक्षवन, (८४) अग्रवन, (८५) प्रतिज्ञावन, (८६) कामरुवन (८७) कृष्णस्थितवन, (८८) पिपासावन, (८९) चात्रकवन, (९०) विहस्यवन, (९१) आह्वानवन, और (९२) कृष्णान्तर्द्धानिवन,[१]।

इन वनो मे कुछ वनो के नाम और सम्मिलित कर पुराणो मे वारह प्रतिवन वारह अधिवन, वारह तपोवन, वारह मोक्षवन, वारह कामवन, वारह अर्थवन, वारह धर्मवन, वारह सिद्धवन, इस प्रकार के आठ विभाग किये गये हैं जैसा कि—

भविष्य पुराण[२] मे निम्नाकित 'द्वादशवनो' को 'प्रतिवन' कहा है—

(१) रकवन, (२) वार्तावन, (३) करहावन, (४) कामवन, (५) अजनवन, (६) कर्णावन, (७) कृष्णाक्षिपनवन, (८) नन्दप्रेक्षण कृष्णवन, (९) इन्द्रवन, (१०) शिक्षावन, (११) चन्द्रावलिवन, और (१२) लोहवन।

इसी प्रकार निम्नाकित 'द्वादश वनों' को 'कामवन' कहा है—

(१) विहस्यवन, (२) आहूतवन, (३) कृष्णस्थिति वन, (४) चेष्टावन, (५) स्वप्नवन, (६) गह्वरवन, (७) शुकवन, (८) कपोत, पार खण्ड वन, (९) चक्रवन, (१०) शेपशायनवन, (११) दोलावन, और (१२) श्रवन।

विष्णु पुराण[३] मे निम्नाकित 'द्वादश वनो' को 'अधिवन' कहा है—

(१) मथुरा, (२) राधाकुण्ड, (३) नन्दग्राम, (४) गट, (५) ललिताग्राम, (६) वृषभानपुर, (७) गोकुल, (८) वलदेववन, (९) गोवर्द्धन, (१०) जाववट, (११) वृन्दावन, और (१२) सकेतवन।

वारह पुराण[४] मे निम्नाकित 'द्वादशवनो' को 'तपोवन' कहा है—

---

१ "कृष्णलीला विहारार्थं मुख्यस्थान विराजितम्।
चतुरष्टक कोशेन परिपूर्ण विराजितम्।
कृष्णे न निर्मिता स्तीर्थां मार्तण्डय महस्त्रका"—मात्स्ये।
मथुराय नवनि स्त्येकनवतिवनानि यमुना दक्षिण तटस्थानि—भविष्ये—

२ आदौरकवन नाम्ना लोहवन श्रेष्ठ द्वादश शुभद नृपान्। —भविष्ये— तथा "विहस्याख्यं वन नाम।"—भविष्ये।

३ मथुरा प्रथम 'वन द्वादश कीर्तितम्। -विष्णु पुराणे

४. आदौ तपोवन।—वाराह पुराणे

(१) तपोवन, (२) भूषणवन, (३) क्रीडावन, (४) वत्सवन, (५) रुद्रवन, (६) रमणवन, (७) अशोकवन (८) नारायणवन, (९) सखावन, (१०) सखीवन, (११) कृष्णान्ताध्यानिवन, और (१२) मुक्तिवन ।

आदि पुराण[1] मे निम्नाकित 'द्वादश वनो' को 'मोक्षवन' कहा है—

(१) पापाकुशवन, (२) रोगाकुशवन, (३) सरस्वतीवन, (४) जीवनवन, (५) नवलवन, (६) क्षरवन, (७) किशोरीवन, (८) वियोगवन, (९) पियासावन, (१०) चात्रकवन, (११) कपिवन, और (१२) गोदृष्टिवन ।

स्कन्ध पुराण[2] मे निम्नाकित 'द्वादश वनो' को 'अर्थवन' कहा है—

(१) हाहावन, (२) गायनवन, (३) गन्धर्ववन, (४) ज्ञानवन, (५) राजनीतवन, (६) लेपनवन, (७) बोलखोरावन, (८) मेलनवन, (९) परस्परवन, (१०) पाडरवन, (११) रुद्रवीर्यवन, और (१२) मोहिनीवन ।

विष्णु पुराण[3] मे निम्नाकित 'द्वादश वनो' को 'सिद्धवन' कहा है—

(१) सारिकावन, (२) विद्रुमवन, (३) पुष्पवन, (४) मालतीवन, (५) नागवन, (६) रावलवन, (७) वकुलवन, (८) तिलकवन, (९) दीपवन, (१०) श्राद्धवन, (११) षट्पदवन, और (१२) त्रिभुवनवन ।

'स्मृत्यर्थ सार'[4] मे निम्नाकित 'द्वादश वनो' को 'धर्मवन' कहा है—

(१) जेतवन, (२) निम्ववन, (३) गोपीवन, (४) वियद्वन, (५) नूपुरवन, (६) यक्षवन, (७) पुण्यवन, (८) अग्रवन, (९) प्रतिज्ञावन, (१०) चम्पावन, (११) कामरुवन, और (१२) कृष्ण-दर्शनवन ।

आदिवाराह[5] मे द्वादश वनो के दो विभाग कहे गये है—

यमुना के उत्तर भाग मे—महावन, भाडीरवन, लोहजघान, विल्व, भद्र नामक पन्चवन और दक्षिण भाग मे तालवन, वहुलावन, कुमुदवन, छत्रवन, खदिरवन, कोकिलावन, काम्यवन नामक सात वन है ।

वृहन्नारदीय पुराण[6] मे तथा 'वौधायन' मे ४८ वनो के 'अधिदेवता' कहे हैं। जैसे कि—

(१) महावन के देवता हलायुध, (२) काम्यवन के गोपीनाथ, (३) कोकिलावन के नटवर, (४) तालवन के दामोदर, (५) कुमुदवन के केशव, (६) भाण्डीरवन के श्रीधर, (७) छत्रवन के श्रीहरि, (८) खदिरवन के पद्मनाभ, (९) लोहवन के हृपिकेश, (१०) भद्रवन के हयग्रीव, (११) वहुलावन के पद्मनाभ, और (१२) वेलवन के

---

१ "पापाकुश वन घादौ " आदि् पुराणे

२ "आदौ हाहा वर्मे " स्कान्धे

३ "सारिकाख्य वन स्त्रादौ "—विष्णुपुराणे

४ "आदौ जेतवन नामद्वय "—स्मृत्यर्थमार

५ "उत्तरे यमुनायास्तु पच सख्या वनस्थिना ।"
कोकिलाख्य वन काम्य मप्त दक्षिण कुलगा "—आदि वाराहे ।

६ "हलायुधोमहावनाधिपो देव "—इतिद्वादश माख्याता द्वादशोपवनाधिया । नन्दकिशोरोरक प्रतिवनाधियोदेव इति द्वादश प्रतिवना नामधिपदेवता—वृहन्नारदीये ।
"परब्रह्ममथुराधिवना धिपोदेव"•••बौनेधाय ।

जनार्दन। ये वारह वन हैं, अव वारह उपवन के देवताओं को कहते हैं—(१३) ब्रह्मवन के गोपीजन वल्लभ, (१४) अप्सरावन के वामन, (१५) विह्वलवन के विह्वल, (१६) कदववन के गोपाल, (१७) स्वर्णवन के विहारी, (१८) सुरभिवन के गोविन्द, (१९) प्रेमवन के ललित मोहन, (२०) मयूरवन के किरीट, (२१) मानेंगित वन के वनमाली, (२२) शेषशायी वन के अच्युत, (२३) नारदवन के मदनगोपाल, (२४) परमानन्द वन के मुरलीधर।

द्वादश प्रतिवन के देवता—(२५) रकप्रति वन के देवता नन्दकिशोर, (२६) वार्त्तावन के कृष्ण, (२७) करहावन के मुरलीधर, (२८) कामवन के परमेश्वर, (२९) अजनवन के पुण्डरीकाक्ष, (३०) कर्णवन के कमलाकर, (३१) क्षिपन के वालकृष्ण, (३२) नन्दवन के नन्दनन्दन, (३३) वृन्दावन के चक्रपाणी, (३४) शिक्षावन के त्रिविक्रम, (३५) चन्द्रावली के पीताम्वर, और (३६) लोहवन के विश्वकसेन।

द्वादश अधिवनों के देवता—(३७) मथुरा के परब्रह्म, (३८) राधाकुण्ड के राधावल्लभ, (३९) नन्दग्राम के यशोदानन्दन, (४०) गढ के नवलकिशोर, (४१) ललिता ग्राम के व्रजकिशोर, (४२) वृषमानपुर के राधाकृष्ण, (४३) गोकुल के गोकुल-चन्द्रमा, (४४) वलदेव के कामवेनु, (४५) गोवर्द्धन के गोवर्द्धननाथ, (४६) याववट के व्रजवर, (४७) वृन्दावन के युगल, और (४८) सकेत के राधारमण।

उपपुराणो मे 'व्रज-मण्डल' को भगवान् का स्वरूप माना है। जैसा कि—'विष्णुरहस्य'[1] मे कहा है—"व्रज के ५५ वन भगवदग हैं। मथुरा हृदय, मधुवन नाभि, कुमुद-तालवन, दो स्तन, वृन्दावन भाल, वहुलावन-महावन दोनो वाहु, भाण्डीर-कोकिलावन दोनो हस्त, खदिर-भद्रकवन दोनो स्कन्व, छत्रवन, लोहजघान-वन दोनो नेत्र, विल्ववन-भद्रवन दोनो कर्ण, कामवन चिवुक, त्रिवेणी-सखीकूप ओष्ठ, विह्वलादिक दाँत, सुरभिवन जिह्वा, मयूरवन ललाट, मानेंगितवन नासिका, शेष-शायी-परमानन्दवन दोनो नासापुट, करहला-कमई नितम्व-देश, कर्णवन लिंग, कृष्ण-क्षिपनक गुदा, नन्दनवन शिर, इन्द्रवन पृष्ठ, शिक्षावन वाणी, दोयवन-लोहवन, नन्दग्राम-श्रीकुण्ड पाँच करागुलि, गोवर्द्धन-जाववट-सकेतवन-नारदवन-मधुवन पाँच वाम पादागुलि, मृद्ववन-जन्हुवन-मेनकावन-कजलीवन-नन्दकूपवन दक्षिणागुलि हैं।

'पद्मपुराण' में इन वनों में स्थित १६ वटों के नाम कहे हैं—

(१) सकेतवट, (२) भाण्डीरवट, (३) जाववट, (४) शृङ्गारवट, (५) वसीवट, (६) श्रीवट, (७) जटाजूटवट, (८) कामवट, (९) मनोरथवट, (१०) आशावट, (११) अशोकवट, (१२) केलिवट, (१३) ब्रह्मवट, (१४) रुद्रवट, (१५) श्रीधरवट, और (१६) सावित्रीवट।

राज्यों का उल्लेख—श्री यमुना जी के दक्षिण-तट के वन समूह तथा वट समूह पर श्री कृष्ण का राज्य है। इसी प्रकार श्री यमुना जी के उत्तर-तट के वन-समूह में तथा वट-समूह मे वल्देव जी का राज्य है। अन्य वन समूह तथा वट समूह मे श्री राधादि ९० सखियो के भिन्न-भिन्न 'अधिकार' राज्य हैं।

---

१ "पचपंच वनस्थाना भगवदवयवनि च।
मथुरा हृदय प्रोक्त" —विष्णुरहस्य

'बृहद्गौतमीय' मे—वृषभानुपुर, सकेतबट, नन्दग्राम, राधाकुण्ड, गोवर्द्धन, गोपालपुर, अप्सरावन, नारदवन, सुरभिवन, पाडरवन, डिडिमवन मे **श्री राधिका,** का राज्य माना है।

'नारदीय' मे—ललिताग्राम, गुर्जुपुर, करहपुर, स्वर्णपुर, नन्दनवन, क्षिपनवन, कर्णवन, इन्द्रवन, काम्यवन, कामनावन, रकपुर, अञ्जनपुर, शृङ्गारबट, भाण्डीरबट, मे **श्री ललिता जी** का राज्य कहा गया है, इसी प्रकार चिवित्सपुर, पिपासावन, चात्रकवन, जोवनवन, कपिवन, विहस्यवन, आहूतवन, बसीबट मे **श्री विशाखा जी** का राज्य माना गया है।

सम्मोहनीयतन्त्र मे—मथुरा-मण्डल, कृष्णस्थितिवन, गढवन, गोकुल-कृष्णधाम, वल्देवस्थल, श्रीवट, कामबट, मे **चम्पकलता जी** का राज्य कहा गया है।

भविष्यपुराण में—लक्ष्मी नारायण सवाद के भूमिखड मे जावबटवन, सारिकावन, विद्रुमवन, पुष्पवन, जातीवन, मनोर्थवट, आशावट, मे **तुङ्गविद्या जी** का 'अधिकार-राज्य' कहा है।

गरुड सहिता में—चम्पावन, नागवन, तारावन, सूर्यपतनवन, वकुलवन, अशोकवट, केलिबट मे **रगदेवी जी** का 'अधिकार-राज्य' माना है, और तिलकवन, दीपवन, श्राद्धवन, पट्पदवन, त्रिभुवनवन, ब्रह्मबट मे **चित्रलेखा जी** का 'राज्य' कहा है। इसी प्रकार पात्रवन, पितृवन, बिहारवन, विचित्रवन, विस्मरणवन, हास्यवन, और रुद्रवट मे **इन्दुलेखा जी** का राज्य है।

'बृहत्पाराशर' में—जह्नुवन, पहाड़वन, श्रीधरवट, मे **सुदेवी जी** का 'राज्य' कहा है। और कुमुदवन, चन्द्रावलीवन, महावन, कोकिलावन, तालवन, लोहवन, भाण्डीरवन, छत्रवन, खदिरवन, सौमनवन मे **चन्द्रावली जी** का 'राज्य' है।

जिस प्रकार 'तन्त्र' सहितादि मे राज्यो का उल्लेख मिलता है उसी प्रकार सखियो एव उपसखियो के नामो का भी उल्लेख हुआ है। जैसे—

ब्रह्मयामल में—वार्तावन मे **सुमना,** परमानन्दवन मे **सुखिया,** वृन्दावन मे **कांचया,** शेषशयनवन मे **दीपिका,** मानेंगितवन मे **मदीपिका,** मयूरवन मे **नागरी,** कदम्बवन मे **प्रवला,** वेनवन मे **गौरी** इत्यादि का। इसी मे ब्रह्मवन मे **मगला,** कुशवन मे **सुमुखी,** नन्दकूपवन मे **पद्मा,** कजलीवन मे **सुपद्मा,** मेनकावन मे **मनोहरा,** जह्नुवन मे **सुपत्रा,** मृद्वन मे **बहुपत्रा,** मधुवन मे **पद्मरेखा** का उल्लेख है।

इसी प्रकार 'गौतमीयतन्त्र' 'त्रैलोक्य समोहनतत्र' आदि मे भी अनेक सखियो के नाम मिलते है। विस्तार-भय से यहाँ दिये नही जा रहे हैं। अस्तु,

'भविष्य पुराण' मे व्रज के सव स्थलो की प्रदक्षिणा का परिमाण भी दिया है। जैसा कि—

१. मथुरा-मण्डल, ६ कोस
२ राधाकुण्ड और गोवर्द्धन मिल कर, ७ कोस
३ नन्दगाम, २ कोस
४. गढवन, १॥ कोस
५ ललिताग्राम, ३ कोस
६. वल्देव-स्थान, २॥ कोस
७ कामनावन, १ कोस
८. जाववट, २॥ कोस

*६. नारदवन की ।।। कोस
१० संकेत की १।। कोस
*११. सारिकावन की १ कोस
*१२. विद्रुमवन की ।। कोस
*१३. पुष्पवन की १ कोस
*१४ जातीवन की १। कोस
१५. चम्पावन की २ कोस
१६ नागवन की १।। कोस
*१७ तारावन की २।। कोस
१८. सूर्यपतनवन की १।।। कोस
*१९ वकुलवन की १ कोस
२० तिलकवन की १। कोस
*२१. दीपवन की २ कोस
२२. श्राद्धवन की १।। कोस
*२३. षट्पदवन की २। कोस
*२४ त्रिभुवनवन की २।। कोस
*२५ पात्रवन की १ कोस
*२६. पितृवन की १ कोस
२७. विहारवन की २ कोस
२८. विचित्रवन की २। कोस
२९. विस्मरणवन की १। कोस
३० हास्यवन की ४ कोस
३१. काम्यवन की ७ कोस
३२. तालवन की १।।। कोस
३३. कुमुदवन की ।। कोस
३४. भाण्डीरवन की २ कोस
३५. छत्रवन की २। कोस
३६. खदिरवन की २। कोस
३७ लोहवन की १।। कोस
३८. भद्रवन की १।।। कोस
३९ वेलवन की १।। कोस
४०. वहुलावन की २ कोस
४१. मधुवन की १।। कोस
*४२. मृद्वन की ३।। कोस
*४३ मेनकावन की १।। कोस
४४. कजलीवन की १ कोस
४५. नन्दकूपवन की २।।। कोस
४६ कुमवन की २। कोस
४७ ब्रह्मवन की ।।। कोस
४८ अप्सरावन की १ कोस
४९ विह्वलवन की १।। कोस
५० कदम्बवन की १ कोस
५१ स्वर्णवन की १। कोस
५२ सुरभिवन की ।।। कोस
५३. प्रेमवन की ।। कोस
५४. मयूरवन की । कोस
५५ मानेंगीतवन की ।। कोस
५६ शेषशयनवन की १।।। कोस
५७ वृन्दावन की ५ कोस
*५८. परमानन्दवन की १ कोस
*५९. रकपुरवन की ।।। कोस
६०. वार्त्तावन की २ कोस
६१. करहपुर की २।। कोस
६२. अजनपुर की १ कोस
६३. कर्णवन की १। कोस
६४. क्षिपनवन की ।। कोस
६५. नन्दनवन की ।।। कोस
६६ इन्द्रवन की २। कोस
*६७. शिक्षावन की १ कोस
६८. चन्द्रावलीवन की १।। कोस
*६९ लोहजघानवन की २ कोस
*७०. जीवनवन की ।।। कोस
७१ पिपासावन की १ कोस
७२ चात्रकवन की ।। कोस
७३. कपिवन की २ कोस
७४. विहस्यवन की २।। कोस
*७५ आहूतवन की ।।। कोस
७६ कृष्णास्थितवन की १। कोस
७७ तपोवन की १ कोस
७८ भूषणवन की ।।। कोस
७९ वत्सवन की २ कोस
८०. क्रीडावन की १।। कोस
*८१. रुद्रवन की ।। कोस
८२ रमणवन की २ कोस

*८३ अशोकवन की ४ कोस
८४. नारायणवन की १ कोस
८५ सखावन की १। कोस
८६ सखीवन की ॥ कोस
८७ कृष्णान्तर्यानवन की २ कोस
८८. वृषभानपुर की २ कोस
८९. गोकुल की ३ कोस
*९०. मुक्तिवन की १॥। कोस
९१ पापाकुशवन की १। कोस
९२. रोगाकुशवन की १ कोस
९३. सरस्वतीवन की २॥। कोस
९४ नवलवन की ॥। कोस
*९५. किशोरवन की ॥ कोस
९६. किशोरीवन की १ कोस
९७ वियोगवन की ॥ कोस
*९८. गोदृष्टिवन की ३॥ कोस
*९९ चेष्टावन की ॥। कोस
*१००. स्वप्नवन की ॥ कोस
१०१. गह्वरवन की ॥ कोस
१०२ शुकवन की १। कोस
१०३. कपोतवन की ॥। कोस
*१०४ चक्रवन की १ कोस
१०५. लघुशेषवन की १॥। कोस
१०६. दोलावन की ॥ कोस
१०७ हाहावन की १। कोस
१०८ गानवन की १। कोस
१०९ गधर्ववन की ॥। कोस
११०. ज्ञानवन की ॥ कोस
१११ नीतिवन की १ कोस
*११२. श्रवनवन की ॥ कोस
*११३ लेपनवन की १॥ कोस
*११४. प्रशसावन की १। कोस
११५ मेलनवन की ॥। कोस
११६. परस्परवन की १ कोस
११७. पाडरवन की १। कोस
*११८. रुद्रवीर्यस्खलनवन की २ कोस
११९. मोहनीवन की १॥ कोस
१२० विजयवन की १ कोस
१२१. पक्षवन की १। कोस
*१२२ पुण्यवन की १ कोस
१२३ अग्रवन की १॥ कोस
*१२४ प्रतिज्ञावन की ३ कोस
*१२५ कामरूवन की २। कोस
*१२६ कृष्णदर्शनवन की १॥ कोस[1]

व्रजभाषा काव्य और व्रज-भक्ति

व्रजभाषा साहित्य मे 'व्रज' की महत्ता को प्रकट करने वाली इतनी सामग्री भरी पड़ी है कि यदि उसको एकत्रित किया जाय तो हजारो पृष्ठो का एक स्वतन्त्र ग्रथ तैयार हो सके। किन्तु यहाँ सकोच वश हम अष्टछाप आदि के कवियो के कुछ ही पदो को उद्धृत करते हुए 'व्रज' की महिमा पर प्रकाश डालेंगे।

(१) अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि और सगीताचार्य गोविन्द स्वामी ने निम्न-लिखित पद से व्रज की महत्ता इस प्रकार प्रकट की है—

कहा करौं वैकुठहि जाइ।
जहाँ नहीं वसीवट जमुना, गिरि-गोवर्द्धन नद की गाइ॥
जहाँ नहीं वे कुज-लता-द्रुम, मद-सुगधि वहुत नहि वाइ।
कोकिल, मोर, हंस, नहि कूजत, ताकौ वसिवौ काहि सुहाइ॥

१. इन १२६ वनों में से (*) इस चिन्ह वाले ३७ वन आज प्रसिद्ध नहीं हैं अन्य वन किसी न किसी रूप और नाम से प्रसिद्ध हैं।

जहाँ नहिं वंसी-धुनि बाजत, कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन, वच, क्रम आवत नहिं दाइ॥
जहाँ नहीं ये भुवि-वृन्दावन, बाबा नंद जसोमति माइ।
'गोविंद' प्रभु तजि नंद-सुवन को, व्रज तजि वहाँ मेरी बसत बलाइ॥

(२) इसी के अनुरूप एक पद परमानंद दास जी का देखिये—

कहा करौं वैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहिं नंद, जहाँ न जसोदा, जहाँ न गोपी, ग्वाल अरु गाइ॥
जहाँ न जल जमुना को निरमल, और नहीं कदमन की छाँइ।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी, व्रज-रज तजि मेरी जाय बलाइ॥

इन पदो पर 'व्रज' की महिमा वैकुंठ से भी विशेष बतलाई गई है। वैकुंठ मे भगवान् चतुर्भुज रूप से बहुत ही मर्यादापूर्ण रूप मे विराजते हैं। वहाँ सेवक लोगो की परिस्थिति उसी मर्यादा के अनुसार रहती है। बोलना, बैठना, हँसना कुछ भी मर्यादा के विरुद्ध नही हो सकता। 'व्रज' मे वह बात नही है। सख्य-भक्ति के नाते व्रज मे ठाकुर को मन मे आवें जैसे कह सकते है, खिला-पिला सकते हैं और लड-भगड भी सकते हैं। भला इस स्वतन्त्रता का आनन्द छोड़, मर्यादा मे किस को रहना पसन्द होगा? इसी प्रकार गोवर्द्धन, यमुना, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि व्रज के प्राकृतिक आनन्द को छोड़कर वैकुंठ के केवल तेजोदय स्थान मे रहना किसे अच्छा लग सकता है?

कवि रसखान तो व्रज की लोक-मर्यादा से विपरीत चालो का वर्णन करते हुए उसकी इस जगत से भी भिन्नता प्रतिपादन करते हैं। वह एक सरस व्यंगात्मक पद है—

"कैसा है यह देस निगोडा, जगत होरी, व्रज होरा।[1] कैसा ''
मैं जल जमुना भरन जात ही, देखि बदन मेरा गोरा॥ ।
मोसों कहैं चलो कुंजन मे, तनक-तनक से छोरा।
परें आँखिन मे डोरा॥ कैसा है ''॥
जीयरा देखि डरात है सजनी, आयो लाज सरम की ओरा॥
कहा बूढ़े कहा लोग लुगाई, एकतें एक ठठौरा।
न काहु से काहु को जोरा॥ कैसा है ''॥
मन मेरो हर्यो नंद के ने सजनी, चलत लगावत चोरा॥
कहे 'रसखान' सिखाय सखन सों, सब मेरा अंग टटोरा।
न मानत करन निहोरा॥ कैसा है ' ॥"

'व्रज' की इस प्रेममयी लीला के आगे किसे वैकुंठ मे जाना अच्छा लग सकता है? भगवान् श्री कृष्ण व्रज मे स्वच्छन्द लोकवत् क्रीडाएँ करके स्वकीय जनो को

---

१. भगवान् श्री कृष्ण की लीलायें अलौकिक हैं जो मर्यादा-मार्ग से बोधगम्य नहीं हो सकतीं। वे साधारण जन की समझ से परे हैं और भक्ति-भाव से ही समझी जा सकती हैं। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा को भी 'तीन लोक से न्यारी' कहा गया है।

इसी लोक मे अलौकिक आनन्द दे रहे है। उसके आगे सामीप्य, सायुज्य सार्ष्टि और सारूप्य यह चारो युक्ति नीरस लगती हैं।

कृष्ण के 'ब्रज-चरित्र' का वर्णन करते हुए 'सूर' कहते है—

"बनी सहज यह लूट हरि-केलि गोपिन के सुपने यह कृपा कमला हू न पावै।
निगम निराधार, त्रिपुरार हू बिचारि रह्यो, पच रह्यो सेस, नहिं पार पावै॥
किन्नरी बहुरि अरु बहुरि गधर्वनी, पन्नगनी चितवन नहिं मांझ पावे।
देति करतार वे लाल गोपाल सो पकरि ब्रजबाल कपि ज्यो नचावे॥
कोऊ कहे ललन पकराव मोहि पांवरी कोऊ कहे लाल बलि लाओ पीढ़ी।
कोऊ कहे ललन गहाव मोहि सोहिनी कोऊ कहे लाल चढ़ि जाउ सीढ़ी॥
कोऊ कहे ललन देखौ मोर कैसे नचे कोऊ कहे भ्रमर कैसे गुंजारें।
कोऊ कहे पौरि लगि दौरि आओ लाल रीझ मोतिन के हार बारें॥
जो कुछ कहें ब्रज-बधू सोइ-सोइ करत तोतरे बैन बोलन सुहावें।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठत वे चूम मुख जननी उर सो लगावें॥
बेन कहि लोनी पुन चाहि रहत बदन हँसि स्व भुज बीच लै लै कलोलें।
धाम के काम ब्रज-बाम सब भूलि रहीं कान्ह बलराम के सग डोलें॥
'सूर' गिरिधन मधु चरित मधु पान कै और अमृत कछु आने लागे।
और सुख रच की कौन इच्छा करै मुक्ति हू लोन सी खारी लागे॥"

इस पद मे त्रिलोकी-नायक श्री कृष्ण के प्रेम-पराश्रित चरित्रो द्वारा और ब्रजवासियो का उत्कर्ष और उनके जीवन की जिस सरसता का प्रतिपादन किया गया है उसको देखते हुए वैकुंठ, वैकुंठनाथ और उनकी मुक्ति तीनो ही वास्तव मे अमृत के सामने नोन सदृश ही है।

गो० श्री कल्याणराय जी जो गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पौत्र थे और जिन्होने दस वर्ष की अवस्था मे ही करोडो रुपये की सम्पत्ति वाले मठो का अनादर कर 'ब्रज-मांगने' के रूप मे, 'ब्रज' ही मे रहना पसन्द किया था उनका ब्रज के गौरव विषयक एक पद इस प्रकार है—

हौं ब्रज-मांगनों जु ब्रज तजि अनत न जाऊँ।
बडे-बडे भुव-पति राज लोक-पति दाता सूर सुजान।
कर न पसारों सीस न नाऊँ या ब्रज के अभिमान॥
सुर-पति नर-पति नाग-लोक-पति मेरे रक समान।
भांति-भांति मेरी आसा पुजिये ब्रज-जन लो जिजमान॥
बाबा! मैं व्रत करि-करि देव मनाये अपनी घरनी सयुत्त।
दियो है बिधाता सब सुखदाता गोकुल-पति के पूत॥
बाबा! हौं अपुनो मन भायो लैहों कित बौरावत बात।
औरन को धन धन ज्यो बरखत मो देखत हँसि जात॥
अष्ट-सिद्धि नौ-निधि मेरे मन्दिर, तुव प्रताप ब्रज-ईस।
कहत 'कल्याण' मुकुद तात कर कमल धरौ मम सीस॥

इस पद मे 'व्रज तजि अनत न जाऊँ' और 'कर न पसारो सीस न नाऊँ या व्रज के अभिमान' आदि उल्लेखो से व्रज की महत्ता और गौरव जो वर्णन किया है वास्तव मे वेजोड़ है। व्रज साक्षात् भगवद्धाम है उसमे रहना साधारण गौरव की वात नही है। उसमे भी किसी से याचना न करनी और व्रज के आश्रय को छोड़ कर किसी भी अवस्था मे अन्यत्र न जाना भगवान् की कृपा के विना सम्भव नही है। इसी दृष्टि से वैष्णव लोग, साधु-सन्त आदि व्रज मे निवास करते है। यह व्रज की महत्ता का परिचायक है।

इसी प्रकार अष्टछाप के कृष्ण दास जी ने भी 'व्रज-महिमा' मे यह पक्तियाँ लिखी हैं—

"कोटि कल्प कासी वसे, अयोध्या कल्प हजार।
एक निमिष व्रज मे वसे, वड़ भागी कृष्णदास॥"

गो० श्री पुरुषोत्तम जी ख्याल वालो ने भी व्रज की महिमा के अनेक काव्य किये हैं, उनमे एक 'व्रज-परिक्रमा' भी है। उसमे वे लिखते हैं—

"धन्य मथुरा धन्य श्री वृन्दावन धन्य-धन्य यशोदा माई।
जाकी महिमा अगम-निगम है प्रगटे कुँवर कन्हाई॥
वारह वन वारह उपवन की लीला गाइ सुनाई।
'श्री पुरुषोत्तम प्रभु' करत सकल वन आवागमन मिटाई॥"

इसमें कहा है कि चौरासी कोस व्रज की परिक्रमा से ८४ लाख योनि का आवागमन मिटता है। यह कथन व्रज की महिमा की अवधि स्वरूप है।

वैसे तो नागरी दास, अभय राम, कृष्ण जीवन लछी राम आदि अनेक कवियो ने व्रज और व्रज की एक-एक वस्तु, पदार्थ, प्राणी मात्र की महिमा लिखी है किन्तु स्थानाभाव से उनमें से कुछ के उद्धरण ही यहां दिये जा रहे है—

नागरी दास ने व्रज की महिमा इस प्रकार गाई है—

व्रज सम और कोऊ नहि धाम।
या व्रज सों परमेसुर हू के सुघरे सुन्दर नाम॥
कृष्ण नाम यह सुन्यो गर्ग तें कान्ह-कान्ह कहि वोले।
वाल-केलि रस मगन भये सव, आनन्द सिंधु कलोले॥

× × ×

व्रज सवधी नाव लत ए व्रज की लीला गावे।
'नागरिदास' हि मुरलीवारो, व्रज कौ ठाकुर भावे॥

अभय राम भी इसी भावना मे ओत-प्रोत हैं —

"एक व्रज रेणुका पे चिंतामणि वारि डारों,
वारि डारूँ विश्व सेवा-कुंज के विहार पै।
व्रज की पनिहारिन पै रती, सची वारि डारूँ,
रंभा कू वारि डारूँ गोपिन के द्वार पै॥

ब्रज की लतान पै कलपतरु वारि डारूँ,
बैकुंठ हू कू वारि डारूँ कालिंदी की धार पैं।
कहै "अभैराम" एक राधे जू कों जानत हूँ,
देवन कू वारि डारों नन्द के कुमार पैं ॥"

भारतीय अन्य भाषाओं मे ब्रज का महत्त्व—भारत की सभी भाषाओ की जननी सस्कृत है। उसी मे शास्त्रादि की रचनाएँ हुई है। हमारे भारत के महान् आचार्यों ने भी अपने भावो को इसी भाषा मे व्यक्त किया है। अत सबसे पहले हम इसी भाषा के ब्रज सम्बन्धी कुछ विवरणो को देखेंगे—

भारतीय सस्कृति और ब्रज-भक्ति के महान् प्रवक्ता महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के प्रयत्न से ब्रज की महिमा बहुत बढी। गौडीय, हरिदासी, हरिवशी सम्प्रदाय के भक्तो ने भी इस महिमा के वढाने मे अपना-अपना योग दिया। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने सर्वप्रथम वि० स० १५४८ मे वृहद्वन मे श्री गोकुल की स्थापना की थी। इसी गोकुल को आपके सुपुत्र श्री विट्ठल नाथ जी ने एक सुन्दर ग्राम के रूप मे बसाया जिसकी सुन्दरता का वर्णन "भक्तमाल" के कर्त्ता नाभादास जी ने भी किया है। इस गोकुल की महिमा को श्री विट्ठल नाथ जी ने अपने 'गोकुलाष्टक' नामक ग्रन्थ मे गाया है।[1]

इस अष्टक के पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री विट्ठल नाथ जी इस गोकुल को श्री कृष्ण की विहार-स्थली के रूप मे साक्षात् 'गो-लोक' मानते थे। इस मान्यता को पूर्वोक्त शास्त्रीय प्रमाणो से पुष्टि मिलती है।

इसी प्रकार श्री विट्ठल नाथ जी के पाँचवें पुत्र गो० श्री रघुनाथ जी ने अपने 'महारसाब्धि' नामक सस्कृत काव्य में नन्दगाम का जो वर्णन किया है वह ब्रज की आधिदैविकता को स्पष्ट करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रज और 'गो-लोक' एक ही वस्तु है। जैसा कि—

"अभूदपि पदच्युतो विधिरभूतपूर्वः स्वय
न याति सह लीलया न स हली लयादन्वहम्।
चकास्ति जगतीगुणैर्निजगतीरसमेलय—
असौ धरणिमण्डले भरतखण्डलेशो ब्रज ॥४॥" प्रथम सर्ग

अर्थात्—इस पृथ्वी-मण्डल मे भरत-खण्ड के स्वामी रूप (अर्थात् भरत-खण्ड के श्रेष्ठ पोषक रूप) होकर 'ब्रज-मण्डल' विराजमान् हैं। जहाँ ब्रह्मा जी भी अपने पद से च्युत हो गये थे। यह 'ब्रज-मण्डल' ब्रह्माजी की सृष्टि से परे की वस्तु है। अर्थात् ब्रह्मा जी की सृष्टि-घटना से वह सम्पूर्ण पृथक् है। वह फिर अपने अलौकिक गुणों से अपनी प्रभावावली के द्वारा धरणि-मण्डल मे रहता हुआ भी उससे भिन्न है। जिसमे

---

१. श्रीमद्गोकुल सर्वस्व, श्रीमद्गोकुल मटनम्
श्रीमद्गोकुल दक्तारा, श्रीमद्गोकुल जीवनम् ॥१॥ इत्यादि।

श्री कृष्ण सदा-सर्वदा बल्देव के साथ लीला करते हैं। उन लीलाओं की विच्युति प्रलय काल मे भी नहीं होती है। अर्थात् नित्य-रूप से व्रज की स्थिति है।

इसी प्रकार कृष्ण-चरित्र के जितने भी संस्कृत ग्रन्थ हैं वे सब व्रज की महिमा को प्रकट करने वाले हैं। यदि उन ग्रन्थो की एक सूची तैयार की जाय तो उसका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन सकता है। अस्तु।

संस्कृत के अतिरिक्त व्रज और व्रज-भक्ति की महिमा बंगला, मैथिली, गुजराती एवं राजस्थानी भाषा के साहित्य मे भी भरी पड़ी है। उक्त भाषाओं के महा कवियों मे विद्यापति, नरसिंह, शामल, प्रीतम, दयाराम एवं मीरा आदि प्रमुख हैं। इनकी सहस्त्रावधि रचनाएँ व्रज की महिमा को प्रकट करती हैं। इन भाषाओं की व्रज सम्बन्धी रचनाएँ किसी रूप मे व्रजभाषा के अष्टछापादि महाकवियो की रचनाओं की ही छाया रूप हैं। हाँ! भाषा-माधुर्य, शैली की प्रौढ़ता और प्रकारो की विविधता की दृष्टि से वे अपनी-अपनी भाषा मे चमत्कारपूर्ण मानी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ गुजरात के अन्तिम महाकवि दयाराम ने पूर्वोक्त

"कहा करौं वैकुंठ हि जांइ।"

पद की छाया रूप से गाया है कि—

"व्रज वहालु रे वैकुंठ नहिं आवुं,
मने न गमे चतुर्भुज थावुं त्यां तो नंद ना कुवर क्यायी लाऊँ?"

इत्यादि।

(८) व्रजभूमि की भारतीय 'दर्शन' को देन—अब हमको यह और देख लेना चाहिए कि इस 'व्रजभूमि' ने भारतीय 'दर्शन' को क्या दिया? यदि उसने इस क्षेत्र मे भी कुछ न कुछ दिया है तो अवश्य ही उसकी महत्ता पर चार चाँद लग जाते हैं। क्योंकि 'दर्शन' एक शुष्क विषय है। उसको सरस बनाया जाय तभी जन-सामान्य मे इसके प्रति आकर्षण हो सकता है। अन्यथा वह विद्वानो तक ही सीमित रह जाता है।

कृष्णावतार के पश्चात् जब कलि इस पृथ्वी पर आया तब धर्म के नाम पर समाज मे हिंसा, मदिरा-पान और अनेक प्रकार की स्वार्थ-वृत्तियों का बोलबाला हुआ। उसको मिटाने के लिए भगवान् ने बुद्ध का अवतार धारण कर बुद्धिवाद या शून्य-वाद की स्थापना की। इस 'वाद' मे ईश्वर और वेद दोनो के अस्तित्व को अस्वीकार किया गया है। इसमे प्रत्यक्षदर्शी 'जड़वाद' के रूप मे मानवता की स्थापना की और वेद के स्थान पर बुद्धि की ही प्रतिष्ठा हुई। जब तक 'बौद्धवाद' नया-नया रहा तब तब लोगो ने इसे पसन्द किया किन्तु जब इसमे भी बुद्धि की चंचलता के कारण स्वार्थ-वृत्तियो के पोषण की ओर ही समाज के नेतागण प्रवृत्त हुए तब भगवान् शंकर ने शंकराचार्य के रूप मे प्रकट होकर मायावाद की स्थापना की। इस वाद मे बुद्धि के स्थान पर वेद की प्रतिष्ठा तो की गई किन्तु ईश्वर की पूर्ण और स्वतन्त्र सत्ता में माया की प्रधानता रखी गई। इसमे जगत को मिथ्या भ्रम-जाल मानते हुए ईश्वर की केवल परमार्थिक सत्ता को ही स्वीकार किया। इससे 'बौद्धवाद' का तो उन्मूलन हुआ

किन्तु समाज को आत्म-सन्तोष नही हुआ। क्योकि दृश्यमान् पदार्थ और अनुभव में आने वाले तत्वो को मिथ्या किस प्रकार माना जाय ? यह 'खण्ड-ज्ञान' 'केवलाद्वैत' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इससे सन्यास की ओर लोगो की प्रवृत्ति बढी और वास्तविक सन्यास के अनधिकारी लोग पाखण्ड मे रत हुए। तब भारतीय समाज जो वास्तविक तत्त्व का अन्वेषक था वह इससे असन्तुष्ट हुआ।

इसी प्रकार समय-समय पर वेदो के अध्ययन और मनन द्वारा विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि दर्शन भारतीय समाज में उपस्थित हुए किन्तु सब के साधन पक्षो मे कर्म-प्रधान उपासना का बोल-बाला रहा। इससे मनुष्य जीवन कृत्रिम-सा अनुभव मे आने लगा। समय ने पलटा खाया और इन्ही दर्शनो को आधार बना कर अनेक सत-महत एव आचार्यों ने नवीन भक्ति-मार्ग की नीव डाली। और अपने-अपने विचारो के अनुसार निम्बार्क, गौड, रामानन्दी आदि भक्ति की नवीन धाराएँ चल पडी। इन मे कृष्ण-भक्ति की जितनी धाराएँ प्रवाहित हुई उन सभी ने अपने साधन-पक्ष मे व्रजभूमि का आश्रय लिया और व्रज की कृष्ण-भक्ति को प्रधान स्थान दिया। अस्तु, विष्णु स्वामी सम्प्रदाय को आधार बनाकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुगामी महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने उक्त सभी भक्ति-धाराओ से भिन्न अपनी स्वतन्त्र सगुण भक्ति की स्थापना की। इस सगुण भक्ति धारा मे आपने ब्रजभूमि के प्रेममय कृष्ण-चरित्रो का ही सम्पूर्ण अवलम्बन लेकर श्रीमती ब्रजागनाओ, व्रज-सीमतिनियो को इस धारा के गुरु रूप मे स्वीकार किया। यही नही आपने श्री कृष्ण एव गोपी जनो की दैनिक जीवन-चर्या को अपने "शुद्धाद्वैत-भक्ति-दर्शन" मे स्थान दिया और उसी को भक्ति की फलात्मक साधन-सेवा का रूप दिया।

जिस प्रकार गोपी जन सूर्योदय पूर्व अपने घरो मे उठ स्नानादिक से निवृत्त होकर दही-माखन आदि तैयार करती और प्रात काल मे ही नन्दालय में आकर श्री कृष्ण की अरोगावती थी उसी प्रकार महाप्रभु ने उसी भावना के अनुरूप 'मगला' के समय का निर्माण कर वही माखन, मिश्री, दूध, दही आदि के भोग की अपनी सेवा मे व्यवस्था की है। फिर माता यशोदा भगवान् को विविध प्रकारो से शृगार करती थी उसी प्रकार ऋतु-समय के अनुसार इस सेवा में 'शृगार' की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार दधि, मथन, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग आरती और शयन की वैसी ही व्यवस्था है जैसी व्रज मे माता यशोदा, गोपी-ग्वाल, श्री कृष्ण की उस समय में करते थे।

व्रज मे लोक-भावना के अनुसार होरी, दिवारी, हिंडोरा आदि के त्योहार जिस प्रकार माने जाते हैं उसी प्रकार इस सेवा मे भी महाप्रभु ने उन त्योहारो का निर्माण किया है। स्थानाभाव से यहाँ विशेष न लिखकर इतना ही सूचित करना पर्याप्त होगा कि व्रजभूमि की जितनी भी सरस भावनाएँ है, उन सबो को उनके मय आचार के महाप्रभु ने अपनी सेवा मे स्थान दिया है। इससे शुद्धाद्वैत भक्ति-दर्शन मे पूर्ण सरसता प्राप्त हुई है। अन्य भक्ति-दर्शनो मे भी जितने अशो मे व्रज-भूमि की जितनी रागात्मकता की भावनाएँ स्वीकृत हुई हैं, उतने अशो मे वे भी सरसता को प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार वौद्धवाद से चला हुआ नीरस दर्शन अन्तिम शुद्धाद्वैत के निर्गुण भक्ति-दर्शन मे पूर्ण सरसता को प्राप्त हुआ। उसका एक मात्र कारण व्रजभूमि, व्रज-जन, व्रज की भावनाएँ और व्रज-किशोर श्री कृष्ण चन्द्र का ही पूर्ण अवलम्वन है।

यदि इस लोक में व्रजभूमि, श्री कृष्ण, श्री राधा, गोपी-गोप आदि प्रकट न हुए होते तो भारतीय दर्शन ही नही शृगार-शास्त्र, कवि लोग और भक्ति-मार्ग निरर्थक से रहते। इससे ज्यादा व्रजभूमि की महत्ता क्या हो सकती है कि जहाँ निरजन निराकार व्रह्म सगुण साकार होकर अपनी "नित्य-लीलाओ" द्वारा समस्त विश्व को सरस वना रहे हैं और तीनो काल मे अपने भक्ति-रस का मकरद फैला रहे हैं। जिस मकरद की सुवास लेने को असख्य प्राणी विश्व भर में से सदा इस व्रजभूमि मे आते रहे है और इस व्रजभूमि की धूलि को अपने मस्तक पर लगते रहे हैं। भक्ति मे व्रज का यह स्थान और महत्त्व है। व्रज का यह रूप व्रजभाषा के अष्टछापादि महाकवियो की रचनाओ मे छाया हुआ है। भाव की दृष्टि से उनकी रचनाओ मे और कोई खास विशिष्टता हमारे देखने मे नही आई है। हाँ, भाषा शैली और प्रकारो की दृष्टि से वे चमत्कार पूर्ण कही जा सकती है। अस्तु।

भारतीय दर्शनों का सक्षिप्त परिचय—कृष्ण का तिरोधान होने के पश्चात् भारत मे धर्माचार्यो का युग चलता है। 'आचार्य देवो भव' 'आचार्य भाविजनियात्' आदि सूत्रो के आधार पर कलियुगी धर्म-ग्लानि समाज मे जव-जव आई तव-तव कोई न कोई भगवदवतार रूप आचार्य का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होने ज्ञान द्वारा समाज में से धर्म की ग्लानि को हटा कर पुन धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित किया है। इसीलिए समाज उन आचार्यो को ईश्वर के अवतार ही मानता रहा है। ऐसे आचार्यों मे वुद्ध प्रथम थे। उनको श्रीमद्भागवतकार ने भी अवतार कहा है। आर्य लोग उनको आज भी भगवान् का अवतार मानते है। उन्होने कृष्ण के तिरोधान के पश्चात् व्राह्मणो ने वेद के नाम पर जो पाखण्ड चलाया उसको मिटाने के लिए शून्यवाद की स्थापना की। उसमे उन्होने ईश्वर, वेद आदि के अस्तित्व को स्वीकार नही किया और वुद्धि-वाद पर जोर देकर मानव-धर्म की प्रतिष्ठा की। सत्य, दया, अहिंसा, परोपकार की दुहाई दी। प्रारम्भ मे तो लोग इस 'वाद' से आकर्षित अवश्य हुए किन्तु जव इसमे वुद्धि की अल्पज्ञता, चचलता और शून्यता के कारण आत्म-शान्ति का स्थायी और वास्त-विक आधार-आश्रय न मिला तव लोग इस 'वाद' से असन्तुष्ट हुए और पुन पाखण्ड-कार्यो मे रत हुए। तव शकर का अवतार हुआ और उन्होने इस शून्यवाद को प्रच्छन्न वौद्धवाद (शून्यवाद व वुद्धिवाद) से ही अनेक युक्तिओ द्वारा खण्डन किया, माया का कर्तृत्व स्थापित किया और वौद्धवाद मे लोगो को हटा कर पुन वेद के प्रति समाज मे आस्था उत्पन्न की। इससे पुन ईश्वर और वेद को समाज मे स्थान प्राप्त हुआ और लोग वुद्ध के नास्तिकवाद के फदे से वाहर निकल आये। शकर का दर्शन 'केवलाद्वैत' कहलाया। उसमे 'वुद्धि' की जगह आत्मा का 'खण्डज्ञान' प्रधान रहा। अव समाज पुन वेदाध्ययन करने लगा। किन्तु इस 'खण्डज्ञान' से आत्मा की सतुष्टि नही हुई। इस मत मे ईश्वर को निरजन निराकार वतलाया गया। इसमे ईश्वर ज्योतिस्वरूप माने गये।

: ७ :

भगवान् श्री कृष्ण और उनका लीला-क्षेत्र ब्रजमण्डल

पो० श्री कठ मणि शास्त्री, कांकरोली

श्री कृष्णावतार—वेद वेदान्त प्रतिपाद्य परम तत्त्व, सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोतम का भक्तोद्धारार्थ आविर्भूत त्रिभुवन कमनीय स्वरूप ही श्री कृष्ण है। सर्वत्र व्यापक वह परब्रह्म जब आधिदैविक स्वरूप मे स्वकीय रमणेच्छा से अग्नि के समान बहि प्रकट होता है तब प्रमेय बल से ही ग्राह्य बनता है, अन्यथा श्रुतियाँ उसे "यदद्रेश्य मग्राह्य मगोत्र मवर्ण मचक्षु श्रोत्रम्" कहकर ही गतार्थ हो जाती है। अनुग्रहपरवश वह रसतत्त्व पूर्णपुरुपोत्तम स्वकीय श्रीस्वरूपिणी अनन्त शक्तियो के साथ जब आनन्दातिरेक से अनायास क्रियमाण विभिन्न कार्यकलापो का कर्त्ता कारयिता बनता है—

> "कृषिर्भूवाचक' शब्दोणश्च निर्वृति वाचक'।
> तयोरैक्य पर ब्रह्म "कृष्ण" इत्यभिधीयते ॥"

की परिभापा मे आता है। सर्वत्र अनुस्यूत कृष्ण की सत्-चित्-आनन्द की अलोक सामान्य संयुवित ही श्री सहित कृष्ण श्री कृष्ण रूप में आविर्भूत होती है, और इसका एकमात्र प्रयोजन भक्तो का मानसिक निरोध सम्पादन ही होता है।

भगवन्निश्वासात्मक वेद चतुष्टय की समस्त श्रुतियाँ सभूय अचिन्तयानन्त शक्तिशाली अद्भुत कर्मा अतएव विरुद्धसर्वधर्माश्रिय ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती है। जिनमे "सत्य ज्ञानमानन्द ब्रह्म" से लेकर "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता", और "सर्वत पाणिपादान्त" "सर्वतोक्षिशिरोमुख" आदि तटस्थ और स्वरूप प्रतिपादक सभी लक्षणो का समावेश हो जाता है। वैसे तो यह "रसो वै स" रसतत्त्व आध्यात्मिक दिव्य अक्षर स्वधाम मे ही रमण करता है, पर भक्तेच्छोपात्तरूप होने के कारण दिव्य देश-काल के वातावरण मे जगत् मे भी अपनी आधिदैविकता का साक्षात्कार कराने के लिए भी पूर्ण क्षमता रखता है। ऐश्वर्यादि पट्-धर्मो के अभिव्यजन, समस्त कलाओ के समवाय का परिदर्शन अथच "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्" की अप्रतिहत सामर्थ्य का परिचय भगवान् श्री कृष्ण के नरलोक मनोहर स्वरूप मे ही होता है। परब्रह्म का अनुभव, दर्शन, अवतरण, आविर्भाव या साक्षात्कार प्राकट्य आदि यच्च यावन्मात्र शब्द जगदुद्धारक भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप गुण-लीलाओ मे समाकर साभिप्राय होते हैं।

अजन्मा का जन्म, अशरीरी का शरीर ग्रहण, निराकार की साकारता आदि जैसी कुछ प्रश्नात्मक धारणाएँ तर्क प्रतिहत बुद्धि वाद के आदि काल की बातें थी, जब तक कि श्रुति-वचनो, गीतोक्त सूक्तियो, ब्रह्मसूत्रो और भागवत की सैद्धान्तिक पदा-

वलियो का समन्वय युग नही आया था। ज्ञान की आदि युगीन प्रथमावस्था मे परतत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् यह संज्ञाएँ सघर्पमयी प्रतीत होती थीं। ब्रह्म को परमात्मा, परमात्मा को भगवान् और भगवान् को श्री कृष्ण रूप मे कहते मस्तिष्क पर भार सा पडता था। पर जैसे ही कर्म ज्ञान भक्ति के उत्तरोत्तर प्रकाश की किरण फूटती गयी आस्तिक जगत् ने।

"वदन्ति तत् तत्वविदः तत्व यज्ज्ञान मध्ययम्।
ब्रह्मेति परमात्वेति भगवानिति शब्यते।।"

और

"एते चांशकलाः पुस' कृष्णस्तु भगवान् स्वय" "भाग०

के रूप मे उसके मजुल दर्शन कर आत्मा को पावित किया, जो सशयो का अपाकरण, प्रश्नो का समुचित उत्तर अयच वाद-विवाद का सुन्दर समाधान था।

भगवदवतार को लोक-भाषा मे जन्म-धारण भी कहते है, पर भगवान् का यह जन्म उनके कर्म, लीलाएँ दिव्य और सर्वातिशायी होते हैं। विरुद्ध सर्व धर्माश्रय परब्रह्म के यह जन्म, कर्म, गुण, प्राकृत और अप्राकृत दोनो होते है। अप्राकृत तो इसलिए कि जडात्मिका भौतिक प्रकृति का इन पर कोई प्रभाव नही, प्राकृत इसलिए कि वे सब भगवान् की आनन्दाकारिणी स्वीय प्रकृति मे ग्रहीत होते हैं। "प्रकृति स्वामधिष्ठाय सभवाम्यात्म-मायया" और यह दिव्य प्रकृष्टाकृति प्रकृति—

"भूमिरापोनलोवायु. ख मनो बुद्धि रेवच।
अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा।।"

इस गीता-वाक्य द्वारा भगवतास्वय निर्दिष्ट है।

सासारिक जीवात्मा के समान प्रतिक्षण क्षीयमाण शरीर न होकर भगवान् वपु आनन्दमय रसमय होता है, विपव्ययाकुल वहिर्मुख इन्द्रियाँ न होकर उनका करण कलाप अन्तर्मुख, चिन्मय और आनन्दन होता है। चचल अवितृप्त मन न होकर सुस्थिर एव सत्य सकल्पात्मक होता है। वह "श्रोत्रस्य श्रोत्र, मनसो मनो यद् वाचोह वाच स उ प्राणस्य प्राण चक्षुप चक्षु" होता है। गीता की परिभाषा मे—

"सर्वेन्द्रिय गुणाभास सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्त सर्वभृच्चैव निर्गुण गुण भोक्तृ च।।"

के रूप मे व्यक्त होकर विरुद्ध सर्व-धर्मो के आश्रय रूप मे सामने आता है। वह न तो प्राकृत है और न प्राकृतेन्द्रिय ग्राह्य ही। उसके लिए गुडाकेश की भाँति "दिव्य ददामि ते चक्षु" की योग्यता अपेक्षित होती है।

प्रश्नोपनिषद् मे आत्मा की सोलह कलाओ का उल्लेख कर "उसे पोडश कला पुरुप" कहा गया है-(१) प्राणो की प्राणन शक्ति, (२) श्रद्धा की प्रतिष्ठा, (३) आकाश की व्यापकता, (४) पवन की पावनता, (५) तेज की अप्रतिहत शक्ति, (६) जल की आप्यायकता, (७) पृथ्वी की धारणा शक्ति जहाँ उसके विराट् स्थूल रूप का प्रतिष्ठान करती हैं, (८) इन्द्रिय और (९) मन की करणता, (१०) अन्न की सर्वबीजता (११) वल की प्रतिष्ठा, (१२) तप, (१३) मन्त्र, (१४) कर्म, (१५) लोक और (१६) नाम के तत्तद् गुण कर्म स्वभाव भगवान के सूक्ष्म आध्यात्मिक विग्रह का साक्षात्कार

कराते हैं। गीतोक्त अष्टम प्रकृति "अहकार" की सात्विकी शुद्ध सुदृढ स्थिति भगवान् के उस लोकातीत मनोज्ञ रूप को प्रकट करती है, जो—

"यस्मात् क्षर मतीतोहं अक्षरादपि चोत्तम.।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम ॥"

के रूप मे प्रतिफलित है। यह "अह" तात्विक सत्ता का आध्यात्मिक आधिदैविक पक्ष है, जिसका अन्य सहचर "ममत्व" है और जिसके बिना अवतार की सम्भावना ही नही की जा सकती। यही 'अह' और 'मम' तत्त्व का सासारिक रूप अहता ममता है जो यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, देहाध्याय के सम्पर्क से जीवो को बन्धनकारी माना गया है। सासारिक क्षुद्र अणु से लेकर यह व्यापक ईश्वरीय परम-तत्त्व तक समाया है। प्रापचिक अहता ममता विकृत, सीमित, कालबाधित और क्षुद्र है, वहाँ ब्राह्मी अहन्ता ममता दिव्य देश काल गुणातीत और अविकारी है। पारमार्थिक-सत्ता रूप मे इन दोनो का अस्तित्व न होता तो ईश्वरावतार की कल्पना ही नही हो सकती थी? भगवद्गीता के "तदात्मान सृजाम्यह", "सभवामि युगे युगे", "काल कलयतामह", "मम तेजोश सम्भवम्", "प्रकृति विद्धि मे पराम्" आदि वाक्य इसी की पुष्टि करते हैं। और यही कारण है कि परब्रह्म परमात्मा अवतार धारण करता है। यह ईश्वरीय 'अहता' 'ममता' पूर्णावतार और उनके समक्ष अन्य अवतारो के कार्य मे तो अधिकतया दृष्टिगोचर होती है जब वे स्वय लीला-नाट्य करते हुए—

"सकृदेव प्रपन्याय तवास्मीति च याचते।
अभय सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम ॥" —वा० रा०

× × ×

"तस्मान्मच्छरण गोष्ठ मन्नाथ मत्परिग्रहम्।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोय मे व्रत आहित ॥"—भाग०

इत्यादि वाक्य प्रणत जनानुग्रहकातर हो कर श्री मुख से उच्चारित करते हैं। भगवान् के अशावतार, कलावतार, पूर्णावतार धारण करने की यही मूल भित्ति है। जहाँ जब जसी जितनी आवश्यकता होती है वे प्राकट्य लेते है, विविध कार्य-कलापो द्वारा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, सहृति का आयोजन करते है, और अपने मनोमुग्धकारी नाम-गुण-कर्मो से स्वकीय आनन्द को निरानन्द जगत् मे प्रतिष्ठित करते हैं। एक स्थान पर उपनिपद् मे कहा गया है—

"स एकोऽवर्णो वसुधा शक्तियोगात् वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
उपैति चान्ते विश्व पादी स देव स नो बुद्धया शुभया सयुनक्तु ॥"—श्वेता०

इस मन्त्र मे भगवान् की रूप-लीला और नाम-लीला दोनो का मौलिक वर्णन है। कहा गया है कि "परोक्षतया निर्दिप्ट जो (य) निरस्त साम्यातिशय त्रिविध द्वैत वर्जित (एक) वर्णातीत (अवर्ण) होकर भी स्वकीय विविध विचित्र अप्रतवर्य योगमाया शक्तियो के साहचर्य मे या उन्हे साथ लेकर (वहुधा शक्तियोगात्) आनन्द रसमय अद्भुत आकारो को (वर्णाननेकान्) धारण करता है। (दधाति) और यह सब इस लिए कि उसमे असख्य जीवो के अनेक पुरुपार्थ, अनन्त कामनाएँ,

और न जाने क्या-क्या भरा हुआ है जो ये "यथामा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यह" के अनुसार सर्वकाम होकर प्रणत जनो के मनोभिलषित पूर्ण करता है, और जो भक्तों के लिए "गतिर्भर्ताप्रभु साक्षी निवास शरण सुहृत्" सभी रूप मे निहितार्थ धरोहर है। अपने चैतन्य गतिशील व्रज-लीला क्षेत्र मे अनुग्रह परायण होकर आत्म-रमण करता है। (उपैति चान्ते विश्वम् आदौ) और इसी प्रकार जो वाक् सृष्टि मे व्यावहारिक रूप धारण कर विविध नाम-लीला का विकास करता है, हम लोगो को शुभ प्रेरणा से सदा सयुक्त करता रहे, अपने चरित्र के प्रति आकृष्ट कर प्रापचिक पदार्थों से हटाकर हमारे मानस का निरोध करता रहे।"

भगवान् का स्वरूपावतार कृत, त्रेता, द्वापर इन्ही तीन युगो मे होता है, वे ऐश्वर्यादि षट् गुणो मे से क्रमश ज्ञान-वैराग्य द्वारा सत्ययुग मे, यश श्री के द्वारा त्रेता मे, और ऐश्वर्य-वीर्य द्वारा द्वापर मे धर्म-परिरक्षा करते है, जिसके अनुसार उन-उन युगो मे तादृश चरित्रो का परिदर्शन होता है। इन ६ धर्मों मे से किसी धर्म के अवशिष्ट न रहने मे अथच सरक्षक के अभाव मे कलि मे धर्म की ग्लानि होती है और जन अभद्र रुचि होकर केवल स्वार्थ-परायण हो जाते हैं। कृत युग मे केवल सत्व से, त्रेता मे रजोगुणयुक्त सत्व से, द्वापर मे सत्वसम्बन्धाकाक्षी रज तम से धर्म का परिरक्षण हुआ करता है। कलि मे न तो सत्व अवशेष रहता है, और न तत्सम्बन्धित अन्य गुणो का, एतावता उस समय धर्मग्लानि सहज है। सदाचरण, सहत्कृपा, भगवत्प्रेरणा आदि से तामस जन तम से निकल कर रज मे, रज से निकल कर सत्व में और सत्व से निकल कर जब निर्गुणता मे परिनिष्ठित होते हैं, तब गीता की "निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" की स्थिति आती है। दयामय श्रीहरि के अनुग्रह से नि साधन जीवो को ऐसी स्थिति सहज ही प्राप्त हो जाती है, उनका गुणो से सहसा उद्धार हो जाया करता है। यह सौभाग्य अधिकाश लीला श्रवण और दर्शन चिन्तन से अधिगत होता है जैसा कि आगे कहा जायगा।

अवतार-प्रयोजन--अखिल विश्वकारण परमात्मा के अवतार ग्रहण का प्रयोजन तो मुख्यत उनकी अज्ञेय इच्छा है, आत्मरमण ही उनका स्वभाव है, पर शास्त्र मे वे स्वय इस प्रकार भी निर्देश करते है—

"एतदर्थोवतारोय भूभार हरणाय च।
सरक्षणाय साधूना कृतोन्येषा वधाय च॥
अन्योपि धर्म रक्षाये देह सभ्रियते मया।
विरामायाण्यधर्मस्य काले प्रभवत. क्वचित्॥"—भाग०

(१) भूभार-हरण, (२) साधु-सरक्षण, (३) दुष्ट-निराकरण, और (४) भक्ति-प्रवर्तन। इन प्रयोजनो मे प्रथम तीन तो सर्वविदित है, जिनमे धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश भी आ जाता है, पर चतुर्थ प्रयोजन भक्त कुन्ती के शब्दो मे बडा महत्त्वपूर्ण है। प्रार्थना मे उन्होने कहा है—

"तथा परम हसानां मुनीना अमलात्मनाम्।
भक्तियोग-वितानार्थ कथ पश्येमहि स्त्रिय॥"—भाग०

प्रकृति से सम्बन्ध होने के कारण प्राकृतिक गुणो के आधार पर जगदीश्वर

के अवतार कार्य मे (१) दुष्ट-निराकरण तामस कार्य है, (२) भू-भार हरण राजस कार्य है, (३) साधु-सरक्षण सात्विक कार्य है, और (४) भक्ति-प्रवर्तन उनका निर्गुण कार्य है जो भक्ति-मार्ग की दृष्टि मे सर्वोपरि गिना जाता है।

भगवान् के अवतार धारण के चारो प्रयोजन स्वतन्त्र और उनकी इच्छानुसार युगपत् और एकदा भी चलते रहते हैं। एक प्रयोजन से अन्य की सिद्धि नही हो सकती। केवल दुष्ट-विनाश से भू-भार का निरास नही हो सकता, क्योकि पुन -पुन उनकी उत्पत्ति होते रहने से तादृश स्थिति आती ही रहती है। यदि इसी दुष्ट-विनाश के लिए भगवान् अवतार धारण करें तो उनकी दृष्टि में दुष्टो का कोई महत्त्व नही है। भगवदिच्छा से इनकी उत्पत्ति भी असम्भव कर दी जाय तो सर्व-मुक्ति-प्रसग आ सकता है, और फिर लीला का महत्त्व ही नष्ट हो जाता है। अत दुष्ट-विनाश के साथ भू-भार हरण भी एक अन्य प्रयोजन सिद्ध होता है। सरक्षण भी भगवदवतार का एकमात्र प्रयोजन नही, क्योकि एक बार इस कार्य को पूर्ण कर देने पर असदुपद्रव से वही आपत्ति पुन आ सकती है। अत सद्बुद्धि के बाधक असदो का विनाश करना और साधु पुरुषो का सरक्षण दोनो ही प्रयोजन सिद्ध होते है। धर्म-रक्षा और अधर्म-विनाश दोनो की भी यही स्थिति है। अत अवतार के सभी प्रयोजन मुख्य है जो भगवान् के अश कलावतार पूर्णावतार आदि के द्वारा यथायोग्य सम्पन्न होते है। धर्म-स्थापन के अनन्तर भक्ति-प्रवृत्ति तो उनके पूर्णावतार का मुख्य प्रयोजन है, जो सब का फल और उनके स्वरूपानुरूप निर्गुण कार्य है। जिसमे वे दोष-निरसन पूर्वक गुणाधान के साथ जगतीतल मे आनन्दमयता का साम्राज्य स्थापित करते है।

श्री कृष्णावतार का वैशिष्ट्य—अवतारो के मुख्य कार्य का दर्शन उनके सामयिक चरित्रो से होता है। प्राधान्येन उनका व्यपदेश किया जाता है। बुद्धावतार मे केवल धर्म-रक्षा ही प्रयोजन है तो कल्कि मे अधर्म-निवृत्ति ही। परशुरामावतार का प्रयोजन दुष्ट-निग्रह है तो बलराम के कार्य मे भू-भार का हरण। पृथुल विक्रम पृथु अवतार मे सत्परिपालन लोचन-गोचर होता है। भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप मे तो सभी प्रयोजन स्पष्ट दीखते हैं। जहाँ वे अन्य कार्य अपने व्यूह-स्वरूपो से करते हैं, वहाँ भक्ति-प्रवृत्ति, प्रपत्ति-स्थापन और शरणागत-परित्राण तो इनके चरित्र मे पदे-पदे सामने आते रहते हैं, उनकी कौनसी ऐसी लीला है जो बह्वर्थसाधिका नही है? अन्य अवतारो मे जहाँ अशत्व की परिस्फूर्ति होती है। श्री कृष्णावतार मे पूर्णता का दर्शन। अन्य अवतारो मे जहाँ क्वचित्क अज्ञान का सम्पर्क भी विदित हो जाता है, वहाँ यहाँ अखण्ड ज्ञान का समुद्र हिल्लोलित होता दीखता है। इसी प्रकार उनके स्वरूप मे अनन्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री और वैराग्य के भी मूर्तिमान दर्शन होते हैं। श्री कृष्ण की यावन्मात्र लीलाएँ इन्ही का विज्ञापन करती है। अत भगवान् श्री कृष्ण ही अशी, अवतारी, सकल कलानिधान पूर्ण पुरुषोत्तम हैं जो स्वेच्छया जगदुद्धारार्थ सारस्वत कल्प के अट्ठाईसवें द्वापर युगान्त मे प्रादुर्भूत हुए। इस भगवद्वतार मे नीचे लिखी तीन बातें सहज रूप से स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

(१) ऐश्वर्य-वीर्य-यश आदि छै गुणो की निरवधि परिपूर्णता और उनका

सहज विलास।

(२) सर्वलीलाओ की लोकोत्तरता के साथ स्वरूपात्मक सौन्दर्य की पराकाष्ठा और आत्मानन्दनमयी रसता।

(३) असाधनो को भी साधन बनाकर भक्तानुग्रह कातरता और सर्वोद्धार।

भगवान् श्री कृष्ण के यह धर्म और शक्तियाँ सहज है, परिपूर्ण हैं, अनन्त और त्रिकालाबाधित हैं। नरलीला मे वे इनका बहुत कुछ सकोच करते हैं फिर भी वे जहाँ-तहाँ स्वाभाविक रीत्या प्रकट हुए बिना नहीं रहते। इसे चाहे ईश्वरता कहा जाय चाहे उनका असामर्थ्य, उनकी पूर्णता की झलक झलके बिना नही रहती। लोक सामान्य शैशव और बाल्यावस्था मे भी किये हुए पूतना मारण, शकट भजन, कालिय दमन, गोवर्द्धनोद्धारण, आदि चरित्र पामर जनो को भी अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नही रहते। भागवत मे वर्णित लीलाओ के श्रवण से विदित होता है कि किसी चारित्रिक अद्भुतता मे जहाँ भक्तो को, प्रभु की ईश्वरता का बोध हुआ नही कि भगवान् तत्काल ही वैष्णवी माया का वितान कर देते हैं। सक्षेप मे भगवान् श्री कृष्ण इस प्रकार के विमल चरित्रो द्वारा ही अपनी रसमयता को प्रकट करते है।

इस प्रकार जहाँ उनके चरित्र इत्थभूतगुण है, उनका स्वरूप भी अतिशय विलक्षण और अनुपम सकल सौन्दर्य का निधान है। कहा गया है—

"स्निग्ध स्मितेक्षितोदारैं र्वाक्यैं विक्रम लीलया।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाग रम्यया ॥"

× × ×

'नित्यं निरीक्षमाणाना तदपि द्वारकौकसाम्।
न वितृप्यन्ति हि दृशो श्रियोधामाग मच्युतम् ॥"

× × ×

"यन्मर्त्त्य लीलौपयिक स्वयोग मायावल दर्शयता ग्रहीत।
विस्मापनंस्वस्य च सौभगर्द्धः पर पद भूषण भूषणागम् ॥" भाग०

जो स्निग्ध स्मित पूर्वक मधुर निरीक्षण के द्वारा, सत्य प्रिय उदार सलाप द्वारा, अपनी सुललित पराक्रम-लीला द्वारा अथच सर्वांग मनोहर शोभा को भी तिरस्कृत कर देने वाली आकृति के द्वारा मनुष्यालोक को आनन्द-निमग्न कर देते हैं, प्रतिदिन और प्रतिक्षण जिनके श्रीधाम अग-सौष्ठव का निरीक्षण करते रहने पर भी द्वारका निवासी अपने नेत्रो की परितृप्ति नही कर पाते, देखते-देखते अघाते नही हैं, और जो स्वकीय योगमाया-बल को प्रत्यक्ष कराने के लिए मनुष्य-लीला के अर्थ परिग्रहीत परम धाम आसेचनक भूषणो को भी भूषित कर देने वाले स्वरूप सौन्दर्य (लावण्य) को देखकर स्वय भी आदर्श के सन्मुख आश्चर्य-चकित रह जाते हैं, उन भगवान् श्री कृष्ण की त्रिभुवन कमनीय शोभा का क्या वर्णन किया जा सकता है ? सक्षेपत वही सौन्दर्य जो लोकोत्तर अप्रतिम और अनिर्वचनीय है, श्री कृष्ण के स्वरूप मे विश्व प्रपच का शाश्वत कल्याण करता है।

लीला और उसका फल—प्रश्नोपनिषद् मे वर्णित परम चैतन्य की षोडश कलाएँ पूर्णता और आनन्त्य के साथ अन्ततोगत्वा जहाँ कल्याणमय समष्टि मे

विकसित होती है, वही परम-तत्त्व स्वेच्छा माया-शक्ति से अभिलषित रूप धारण करता है। वह "मोद पूर्वपक्ष प्रमोद उत्तर पक्ष आनन्द आत्मा ब्रह्म पुच्छ" प्रतिष्ठा से आगे बढकर" "रसो वै स." की स्थिति मे साकृति होता है, 'श्री कृष्ण' 'देवकीनन्दन' यशोदानन्दन 'नन्दनन्दन' कहलाने लगता है, शुद्ध सत्वात्मक वसुदेव से ब्रह्मविद्या देवकी मे प्रादुर्भूत होता है, पारमार्थिक वसु धन का अग्रज बनता है, धरा यशोदा को आल्हादित करने के लिए गोकुल मे मर्यादा-पुष्टिमयी बाल-लीलाओ का अनुसरण करता है। इस प्रकार उसकी मोदप्रमोदमयी उभय स्थितियो का साक्षात्कार होता है। सर्वस्व समर्पण की प्रतिमूर्तिएँ 'चर्पिणी' शब्द वाच्य ऋक स्वरूपा गोप कुमारिकाओ के साथ वह माधुर्यानुभूति मे पुष्टिस्थल वृन्दावन मे अखड रास-क्रीडा करता है, अद्भुत चरित्रो द्वारा समानशीलव्यसनी गोप-कुमारो और यादव-बन्धुओ के साथ ऐश्वर्य-शालिनी मथुरा राजधानी की मर्यादा-लीलाओ का दर्शन कराता है, ब्रजमण्डल और उसके बाहर भू-भार स्वरूप असुरो का निकन्दन करता हुआ व्यूह-कार्य द्वारा प्रवाह लीलाओ का सम्पादन करता है। इस प्रकार वह यथाधिकार सगुण और निर्गुण चरित्रो की सहज चेष्टा से विश्व के हृदय स्थानीय ब्रज-मण्डल को आनन्दसप्लव मे विलीन कर लेता है। व्यवहारार्थ अपने से पृथक् विश्व के कण-कण में रमण करता हुआ भी उसके बाह्य विग्रह मे भी सर्वतोभावेन व्याप्त हो जाता है।

गूढ परब्रह्म भगवान् श्री कृष्ण के सभी चरित्र कौतूहल समन्वित, विनोद-भरित, रसपरिप्लुत होते हैं। शुद्ध सात्विक अन्त करण पर उनका सीधा प्रभाव पडता है। क्षण भर भी मन को सावधान कर श्रोत्राजलि के द्वारा उस कथा-रस का एक बार भी पान किया जाय, तो वह स्वय अपने प्रति साधक की लालसा को जागृत करने लगता है। "सद्यो हृद्यवरुद्धयतेऽत्र कृतिभि शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् का यही स्वारस्य है।

यह चरित्र अनायास क्रियमाण क्रीड़ाएँ हैं, जो मुख्यत दोपनिरासक एव गुणधायक हो कर भक्तजन-हृदयपटल पर प्रतिफलित होती हैं। असत्ससर्ग जनित शारीरिक असदाचरण, इन्द्रियो के वैयग्य और मानसिक चाचल्य से जीव की भगव-च्चरित्रश्रवण के प्रति रुचि नही हो पाती। अर्थ काम के प्रति लेलिहान तृष्णा के कारण जीवात्मा सामारिक आसक्ति मे फँस कर विमुख हो जाती है, भागवत-चरित्र के प्रति अनुराग होने का उसको अवसर ही नही आ पाता। देह गेहादि ससार-विपयिणी आसक्ति (प्रमाद) अथच शुश्रूषा के प्रति अनुरक्ति का अभाव (अ-रति) यह दो प्रबल दोप हैं जिनमे मानस-निरोध मे महती बाधा पड़ती है। पर इसके विपरीत सत्सग के द्वारा जीव को यदि थोड़ा सा भी लीला-श्रवण का सौभाग्य मिल जाता है, उदरस्थ औषध के समान कर्णगत भगवद्यश अपना प्रभाव प्रकट करने लग जाता है, आनन्दमय परमात्मा कल्याणकारिणी लीला विश्रुति शाश्वत रसपान के लिए जीवात्मा को आकृष्ट करने, उसके विक्षुब्ध मस्तिष्क मे चिर-शान्ति की सरिता बहने लगती है। उसको सासारिक अन्यतम विपम विपय-विभीपिकाओ की बाधकता का भान होने लगता है। एतावता जीव प्रापचिक तृष्णा के मोह-जाल से विमुक्ति पाकर स्वस्थता का अनुभव करता है।

"प्र· कर्णनाडीं पुरुपस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति।"— भाग०

द्वितीय दोष, भगवच्चरित्र श्रवण के प्रति अनुरक्ति का अभाव (अ-रति) है जो अन्तैश्वर्यशाली "लक्ष्मीसहस्त्र लीलाओ से सेव्यमान कलानिधि प्रभु के अचिन्त्य माहात्म्य और तज्जन्य स्वोपकारता के परिज्ञान मे अरुणोदय से तम पु ज की भाँति क्रमश स्वय ध्वस्त होता चला जाता है। भगवान् स्वकीय लीला द्वारा भक्त के मनोमन्दिर मे हृद्य मधुर स्वरूप की स्थापना करते और अन्यासक्ति से उसको बचा लेते हैं। प्रधान भक्त बहि प्रतीयमान यावन्मात्र विश्व को ईश्वरीय विग्रहान्तः पाती देख कर आश्चर्य-चकित रह जाता है। अन्यासक्ति का उसे प्रसग नही आता। स्तन-पान करते समय भगवान् बाल-कृष्ण ममतामयी यशोदा को अपने रुचिरस्मित जृ भमाण मुखारविन्द मे ही निखिल विश्व की झाँकी दिखा कर भी बाल-सुलभ चेष्टा द्वारा उन्हें स्वासक्त कर लेते हैं—

"सावीक्ष्य वीक्ष्य विश्व सहसा राजन् सजात वेपथु ।
समील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सु विस्मिता ।।"—भाग०

बालक के अद्भुत चरित्रावलोकन से माता यशोदा भी वेपथुमती हो जाती है, मृगशावाक्षी के विशाल लोचन काम नही देते, उनका निमीलन हो जाता है, अनन्त महिमा के आगे ज्ञान टिक नही पाता। इस प्रकार अन्य लीला-चरित्रो द्वारा भगवत्कथा-श्रवण के प्रति उदीयमान अरति का समूल घात होता है।

उक्त 'ससारासक्ति' और 'श्रवणविराग' इन दो महान् दोषो की निवृत्ति के अनन्तर भगवल्लीला कतिपय गुणो का आधान करती है। वह शुद्धि-विधायिका होने के कारण अन्त करण को काम-क्रोधादि से विरहित कर निर्मलता प्रदान करती है। अनन्तगुणैकधामा भगवान् के अन्त.स्थ होने पर फिर किन गुणो का प्रतिफलन न होगा ? पूतनासुपय पान, शकट-तृणावर्त-मोक्ष आदि लोकातीत चरित्रो का श्रवण अथच अनन्त अपरिमित सामर्थ्य के द्योतक नामो का स्मरण भागवत गुणो की सर्व-प्रथम अभिव्यक्ति करते है। कहने का तात्पर्य यह कि भगवान् श्री कृष्ण की लीलाएँ मानव-हृदय की मोदमयी कोमल भावनाओ की अभिव्यजिका हैं। सत्वसशुद्धि से जहाँ उनके विश्व-वदित चरण-कमलो मे सहज दास्य का समुदय होता है, भक्ति, रति, प्रेम, स्नेह के परिपाक से वात्सल्य एव दाम्पत्य का विलास भी होने लगता है। भगवान् और भगवदीय भक्तों के प्रति सख्य-भाव की भी जागृति। ज्ञान के सहारे उनके परिणामो का निर्वचन नही किया जा सकता। पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण की यह सब लीलाएँ मनोहारिता, अनुपमता और वैचित्र्य मे स्वय वर्णनातीत होकर सहृदय हृदयैक सवेद्य रूप धारण कर लेती है। वे स्वभावत दोषतिरोधायक और गुणाधायक होकर स्वरूपानन्द फलप्रसविनी हो जाती हैं।

"यच्छृण्वतोपैत्यरतिर्वितृष्णा, सत्व च शुद्धयत्यचिरेण पु सः
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यम् ।।" भाग०

इस प्रकार लीला-श्रवण से भगवान् मे रति का समुदय होता है, भागवत मे एक स्थान पर कहा गया है—

"भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रति रात्मन्यतो भवेत् ।।"

सकलजन्दु खतापहारी स्वय भगवान् भक्त के मन मे रति का उदय करते हैं। ज्ञान-क्रिया उभय काडात्मक वेद का तात्पर्य ही परमात्मा मे रति (अनुराग) का उदय करना है। यह रति लौकिक रति नही है, आध्यात्मिक भक्ति है। "श्रद्धारति-र्भक्ति रनुक्रमिष्यति" इस वाक्य मे जिस क्रम का वर्णन है उसी क्रम से यहाँ उसकी उत्पत्ति अभिप्रेत है। दृश्यमान स्वरूप मे आधिभौतिक भक्ति 'श्रद्धा' रूप मे कही जाती है, इस श्रद्धा से जब आधिदैविकी माहात्म्य ज्ञान-पूर्विका भक्ति का सम्मि-लन होता है तब वह आध्यात्मिक शब्दवाच्य हो जाती है। रूपान्तर मे प्रथम अवस्था प्रेम, द्वितीय आसक्ति और तृतीय व्यसनावस्था की द्योतक है।

"तत' प्रेम तदासक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत्"— भक्तिवर्द्धिनी

लीला-भेद से स्वरूप-भेद धारण करने वाले नरलीलावपु भगवान् श्री कृष्ण जिस प्रकार यदुकुल चूडामणि, वासुदेव देवकीनन्दन हैं, उसी प्रकार नन्दनन्दन यशो-दोत्सग ललित भी है। दोनो के स्वरूप मे मूलत कोई अन्तर नही है, अन्तर है तो लीला के वैचित्र्य से। कार्य-शक्ति की अभिव्यक्ति अनभिव्यति से भगवान् श्री कृष्ण अपने चतुर्व्यूहो के समष्टि भाव अद्भुत कर्त्तृत्व तथा विरुद्ध सर्वधर्माश्रयता से लोकवेदातीत पूर्ण पुरुषोत्तम है। वे "यमेवैषवृणुते तेन लभ्य" की दृष्टि मे साधनो से अप्राप्य, स्वेच्छा अनुग्रह से प्राप्य हैं, सुलभ है। अपने दिव्य जन्म कर्म अभिधान से भक्तो के देह प्राण इन्द्रिय अन्त करण जीवात्म स्वरूप से उनके प्रीणनार्थ रमण करते रहते हैं। तादृशी लीलाओ का आश्रय लेते है। "भजते तादृशी लीला या श्रुत्वा तत्परो भवेत्" जिससे प्रणतजन उनके अनुरागी-जन बन जाते है। गीता के शब्दो मे—

"तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञान निर्धूत कल्मषा ॥"

की स्थिति को प्राप्त करते हैं। और भागवत की परिभाषा मे—

"तन्मनस्का स्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिका।
तद् गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरु ॥"

जैसी पावन अवस्था को अलकृत करते है। कहना न होगा, यह परमोच्च अवस्था प्रभु के लीला-गान, अनुकरण और अहर्निश स्मरण से व्रज-सीमन्तिनियो को ही प्राप्त हुई थी जो लोकवेद की मर्यादा का अतिक्रमण कर अकुतोमय प्रेममार्ग की पथिक बनी थी।

लीलाओं का आनन्त्य—रस रासेश्वर भगवान् श्री कृष्ण की यावन्मात्र लीलाएँ जैसे नित्य है उसी प्रकार निरतिशय आनन्द प्रदायिनी है। उनके अवतार गुण कर्म नाम स्वरूप सभी एक से एक विचित्र है, अनुपम है रस-भरित हैं। प्रभु के अशावतार आवेशावतार आदि के कार्यों मे एक धारावाहिकता होती है। उनमे लीलावैचित्र्य का अनुभव नही होने पाता, वे सीमित से सकुचित से प्रतीत होते है, पर पूर्णावतार के लीला-वैचित्र्य की सहस्त्रश प्रस्फुटित किरणें अज्ञानध्वान्त को ध्वस्त कर प्रपच को दिव्य आत्मीयता से आलोकित करती रहती है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्" का सामूहिक अर्थ पूर्णा-वतार मे ही व्यक्त होता है। विचित्रता का यह मूल स्रोत भक्तो की गुणमयी और

निर्गुण भावना से टकरा-टकरा कर स्रोतस्विनी का रूप धारण करता चलता है। प्रभु के तत्तदनुरूप मायाविडम्वनात्मक आयोजन, अप्रतिहत ऐश्वर्यादि गुणो के साम्य वैपम्य, अथवा सच्चिदानन्दमयी क्रमिक आशिक, पूर्णत्व की सपृक्ति से अनुमेय आनन्त्य देश-काल की परिधि से वाहर हो जाते हैं, उनकी गणना नही हो सकती। अधिकारी भेद के अन्तर्गत भक्त अभक्त विद्वेपी आदि के रूप मे इसमे जिस विपुलता का समावेश होता है उससे भगवान् का यह लीलाक्षीराब्धि आनन्द-पवन से सर्वदा तरगायित होता रहता है। हृदय शेपशायी लक्ष्मीसहस्र लीलासेव्यमान कलानिधि पूर्ण पुरुपोत्तम इसमे विराजमान रहते हैं।

अनायास स्वेच्छया क्रियमाण भगवान् श्री हरि की विनोदमयी क्रीड़ाएँ 'लीला' कहलाती है। वे उनके पूर्णत्व आत्मकामत्व की द्योतक, भक्ति के हृदय-कमल की विकासक और अनिर्वचनीय आनन्द-सौरभ की प्रसारक होती है। उनकी लीलाओ मे कितनी ही स्वरूपान्त पातिकी मूल लीलाएँ हैं, तो कितनी ही अवतार सामयिक वयोवस्या निरूपक, जिन्हें देश-काल के अगीकार से व्यवहारिकता प्राप्त होती है। ज्ञान पक्ष की गौणता के साथ भक्ति पक्ष मे जव गूढ नराकृति परब्रह्म श्री कृष्णावतार मे भक्तजनमन. सन्तोपार्थ स्वरूप धारण करते है, देश-काल वय के अनुरूप वाल, कुमार, प्रौढ, गोकुल, मथुरा व्रज द्वारका आदि की लीलाओ का प्राकट्य होता है।

लीला और नाम के भेद से स्वरूप का भेद भी गिना जाता है, जो तत्वत न होकर भावना पर आधारित होता है। पर इसे स्वीकार किये विना छुटकारा नही है, और इसलिए "रूप नाम विभेदेन जगत क्रीडति्यो यत" कहा जाता है। त्रिगुणात्मक विभिन्न अभिव्यक्तियो (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की वात छोड देने पर भी भगवान् के अवतारो लीला-भेद से स्वरूप-भेद दृष्टिगोचर होता ही है। लोकमर्यादा पुरुप भगवान् श्री राम और पुष्टि पुरुप श्री कृष्ण, और उनकी सहचरी आद्यशक्ति जगज्जननी जानकी, रसरासेश्वरी वृषभानुजा श्रीराधा या भगवत्पत्नी रुक्मिणी मे परमार्थत: कोई भेद नही है फिर भी श्री कृष्ण न तो जानकीजानि है और न श्रीराम रुक्मिणी-वल्लभ। स्पष्टत स्वरूपभेद दोनो में परस्पर समिश्रण नही होने देता। रामावतार की ताड़का ताड़का है, कृष्णावतार की पूतना पूतना, पर श्री राम और श्री कृष्ण परमार्थत भिन्न न होते हुए भी लीला कार्य-भेद से भिन्न रूप मे दर्शन देते है। दोनो चरित्रो का सकलन करते हुए यद्यपि एक स्थान पर कहा गया है—

"य पूतनामारणलब्धकीर्ति काकोदरो येन विनीत दर्व।
यशोदयालकृत मूर्ति रव्यात् नाथो यद्यूनामुत वा रघूणाम्॥"

यहाँ अर्थ (तत्त्व) की अभिन्नता के साथ नाम (शब्द) का भी अभेद है, परन्तु लीला-भेद से स्वरूप भेद यहाँ भी अपनी झाँकी दिखाए विना नही रहता। तात्पर्य यह कि भगवान् की जितनी लीलाएँ हैं, उतना ही उनका स्वरूप-भेद स्वीकार करने मे जो भावना-पक्ष को सौन्दर्य प्राप्त होता है, उतना ज्ञानपक्ष मे नही। इस तरह यदि भगवान् के भक्त किसी एक लीला-स्वरूप के प्रति अनन्य आसक्ति से उन्हे भजते है, तो उन्हें "इत्थ भूत गुणो हरि" के सिवाय और क्या कहा जा सकता है? भागवत मे कहा है—

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थ भूत गुणो हरि॰ ॥"

देह गेहादि प्रसद्विषयो की वासनाओ से ऊपर उटकर, गुणमयी कामना से विरहित और सर्वेन्द्रिय व्यापार-विवर्जित होकर केवल मनन-क्रिया परायण जन (मुनिजन) आत्म-रमण होते हुए भी जिनकी भक्ति से छुटकारा नही पा सकते, विना किसी प्रयोजन के भी जिनकी सेवना मे प्रवृत्त होते रहते है, वे प्रभु वास्तव मे इसी प्रकार के हैं, 'उरुक्रम' होने से वे अपनी विविध ललित गतियो, चेष्टाओ से अपना अद्भुत-कर्मत्व जो प्रकट किया करते है। आकर्षण कर लेना उनका सहज स्वभाव है। एतावता उनकी लीलाओ का पार पाना भी कठिन है। "शेषोऽद्युनाऽपि समवस्यति नास्य पारम्" सहस्रो जिह्वा होकर भी उनके गुणो का गान नही किया जा सकता।

लीला-कार्य-विभेद से वैकुण्ठ भगवान् अशादि चतुर्धा अवतार ग्रहण करते हैं।

१. अशावतार स्वरूप—नृसिह, राम परशुराम वासुदेव मुक्तिदाता के रूप मे प्रत्यक्ष होकर सामयिक मुख्य प्रयोजन की सिद्धि करते हैं।

२ कलावतार स्वरूप—मत्स्य, कूर्म, वाराह वन कर सामयिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

३. आवेशावतार स्वरूप—वामन, बुद्ध, कल्कि होकर सामयिक समस्याओ का निराकरण करते है, और—

४. विभूति अवतार स्वरूप—नारद व्यास आदि का विग्रह धारण कर अवान्तर काल में धर्म-ज्ञान-भक्ति का प्रचार कर लोकानुग्रह का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

गो, देव, द्विज, साधु और भक्तो के ऊपर अनुग्रहार्थ पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप मे श्री हरि चतुर्व्यूह का कार्य सम्पादित करते हैं। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सकर्षण और वासुदेव इन व्यूहो के द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम जो कार्य करते है वह उनके उस कार्य से अनुमेय होता है। चारो व्यूह पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप मे ही अन्तर्हित होते है, और इनका प्रत्यक्ष कार्य-परिदर्शन श्री कृष्णावतार के चरित्र मे ही होता है अत उन्हे अवतारी कहा जाता है। शेष अवतार इसी दृष्टि को लेकर कहा गया है "एते चाशकला पुन्स कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।" यद्यपि भगवान् साधारण अवतारो मे तावत्कार्य के लिये ही प्रकट होते हैं, पर उनकी पूर्ण पुरुषोत्तमता की झलक ·· · अनुग्रह का कार्य कही-कही अन्य अवतारो मे भी प्रकट हो जाती है। नृसिहावतार मे दुष्ट हिरण्यकशिपु के सहार के वाद भक्त प्रह्लाद के ऊपर अनुपम वात्सल्य-प्रदर्शन इसी प्रकार है। वामनावतार मे देवो की प्रयोजन-सिद्धि के अनन्तर वलि पर निग्रह के साथ अनुग्रह इसी का उदाहरण है। श्री रामावतार मे शवरी के नैवेद्य का अगकार, सेतु-वन्ध, विभीषण-शरणागति और साकेत वासियो को स्वधाम की प्राप्ति ऐसे ही अतुलित कार्य हैं जो मर्यादा के ऊपर केवल अनुग्रह परवशता (पुष्टि) से किये गये हैं। भगवान् श्री कृष्ण के चरित्र मे तो ऐसे अनुग्रह के कार्य पदे-पदे लोचन-गोचर होते है।

धेनु-रूप धारिणी भक्त धरिणी की अभ्यर्थना पर उसका भार हटाने के लिए जब सारस्वत कल्प के द्वापरान्त मे पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण का आविर्भाव हुआ, भूतल अलकरण के समय तक उन्होने विविध लीलाओ का अनुभव और प्रत्यक्ष दर्शन कराया, उनका लीला-परिकर भू-मण्डल पर अवतरित होगया। भगवान् के अन्तरग सखा, पार्षद गोप रूप मे प्रकट हुए तो स्वरूपानन्द का अनुभव करने के लिए निगम की ऋचाओ ने व्रज-सीमन्तिनियो का स्वरूप धारण किया। यावन्मात्र देवगण असुर-निकन्दन के लिए यादव-गण मे आकर निवास करने लगे, तो अक्षर ब्रह्मधाम व्रज-वृन्दावन के रूप मे अवतरित हो गया। यत्र-तत्र विविध चरित्रो के लिये आवश्यक परिकर भूतल पर विराजमान होगया।

सर्वगुणोपेत परम शोभन काल मे प्राकट्य हो जाने के बाद कारागृह मे भगवान् ने वसुदेव जी को प्रथम पुष्टि रहित मर्यादा वासुदेव स्वरूप मे दर्शन दिये। अम्बुजेक्षण, चतुर्भुज, शखगदार्यु दायुध अनन्त श्री विभूपित अद्भुत बालक के स्वरूप मे और पूर्व दृष्ट समाधि स्वरूप मे जब वसुदेव जी को विस्मय-सा हुआ भृत्यार्तिहर करुणामय प्राकृत शिशु (पूर्ण-पुरुषोत्तम) पुष्टिलीला रूप मे दर्शन देने लगे। अत जन्म-स्थान मे उनकी मर्यादा-पुष्टि-लीला का साक्षात्कार होता है।

गोकुल मे नन्दराय यशोदा के ऊपर कृपा प्रदर्शन मे श्री कृष्ण अपना चतुर्व्यूह युक्त पुरुषोत्तम स्वरूप व्यक्त करते है। वहाँ व्यूह-कार्य और पुष्टि कार्य दोनो विद्यमान हैं। अरिष्ट "सूतिकार्गह " शिशु-लीला, बाल-लीला गो-चारण, निकुन्ज-लीला, गोवर्ध-नोद्धरण व्रज वृन्दावन महारास मे सर्वदा पुष्टि-स्वरूप से भगवान् रममाण रहते हैं।

जन्म के समय व्रजोत्सवात्मक दधि-कर्दम लीला मे नन्दागण मे गो, गोप, गोपी सभी मे उनके स्वाशावेश का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

पूतना-शकट-तृणावर्त-वत्सासुर-बकासुर आदि के वध मे सकर्पण कार्य युक्त पुरुषोत्तम का स्वरूप परिलक्षित होता है। पूतना को मातृ गति प्रदान मे पुष्टि-लीला का चमत्कार सामने आता है।

यमलार्जुन भग भगवान् का सकर्पणक व्यूह का कार्य है। नल कूवर मणिग्रीव प्रसग से वे अनिरुद्ध व्यूह रूप मे और उन पर अनुग्रह व्यक्त करने मे मुक्ति-दाता वासुदेव व्यूह का कार्य सम्पादित करते हैं।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण स्वकीय बाल-लीला और कौमार-लीला मे अपने मुख्य और व्यूह स्वरूप से विविध नाट्य् कर भक्तो को आनन्दित करते है।

सर्वोद्धार प्रयत्नात्मा भगवान् श्री कृष्ण अपने रूपो से जहाँ अवस्था भेद से बाल-लीला, प्रौढ-लीला, रास-लीला आदि का नाट्य् करते हैं, जो काल विभेद से परिगणित की जाती है। वहाँ वे देश-विभेद से भी अपनी लीलाओ मे वैचिभ्य की स्थापना करते हैं।

देश-भेद से वर्गीकृत होने वाली लीलाएँ गोकुल-लीला, वृन्दावन-लीला, मथुरा-लीला और द्वारका-लीला नाम से विख्यात होती है। इन क्षेत्रीय भगवल्लीलाओ मे भगवदभिप्रेत रूपो के अनुसार भक्त विलक्षणता का अनुभव करते हैं। प्रवाह मर्यादा और पुष्टि के भेद से उनमे भावनानुकूल आस्वाद्य तथा तारतम्य का स्वरूप दृष्टि-

गोचर हुआ करता है।

१ गोकुल मे आचरित लीलाएँ मर्यादा-पुष्टि लीलाएँ कहलाती हैं। नन्द-गृह मे आपका मर्यादा-पुष्टि स्वरूप अष्टावरण सयुक्त है। यह अष्ट-आवरण गीता मे कथित भूमि, आप, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहकार प्रकृति है। यह आपकी दिव्य प्रकृति (प्रकृष्टा कृति) है जो लौकिक से अतिरिक्त अतएव अप्राकृत कहलाती है। इन आठ प्रकृतियो से सयुक्त मुकुन्द चतुर्व्यूहात्मा है।

२. वृन्दावन मे पुष्टि-लीला है। एक आदि रास है जो अविच्छिन्न है, पश्चात् जिस-जिस रसिक जीव पर जैसी करुणा होती है वैसी ही लीला का अनुभव वे उसे कराते हैं। गुरुरास मे केवल श्री पुरुषोत्तम हैं, वही प्रकट रस-रूप से आविर्भूत होते है। अपने व्यूहावतार के कार्यों को अन्तर्हित रखते हैं।

३. मथुरा मे कालयवन दाह पर्यन्त जितनी भी लीलाएँ हैं मर्यादा-पुष्टि है। पीछे केवल मर्यादा है।

४. द्वारका मे मर्यादा-लीला है।

इस प्रकार विविध देशो मे विभिन्न लीला-चरित्रो द्वारा प्रभु तत्तदधिकार-परायण जीवो का कल्याण साधन करते, उन्हें अपने स्वरूप के प्रति आकृष्ट करते और स्वरूपानन्द का दान कर उन्हें कृतार्थ करते रहते है।

"अधिष्ठानं तथा कर्ता करण च पृथग् विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैव चैवात्र पंचमम्।"—गीता

श्री हरि के लीला के अधिष्ठान, स्वय उनका कर्त्तव्य, उनके लीला के साधन और विविध लीलाएँ सभी दिव्य विचित्र अनुपम सरस और सर्वोपरि होती हैं। वे आधिदैविक स्वरूप से स्वय उनके रममाण होकर उनकी आलौकिकता का सम्पादन करते हैं, और इस प्रकार अनायास क्रियमाण उनकी क्रीडाएँ स्वजनो की भव-बन्ध-विमोचनी अथवा आनन्दपर्यवसायिनी सिद्ध होती है।

प्रादुर्भाव-लीला—भक्तोद्धारार्थ भगवान् अवतार लेकर नित्य स्वय-ज्योति अक्षर स्वरूप स्वधाम को जब आधिभौतिक व्रज मण्डल मे परिणत करते है, सर्व-व्यापक जगन्निवास जब क्रीड़ा-केन्द्र गोकुल को पावन करने चलते हैं, अवतार-कार्य मे बाधक दुष्ट देश काल के भी दोषो की निवृत्ति करते हैं। उन्हें अपनी लीला के अनुकूल बना लेते है।

कस के कारागृह मे दिव्य अद्भुत बालक स्वरूप प्रभु श्री कृष्ण के दर्शन कर वसुदेव उनकी इच्छा से जब गोकुल ले जाने लगे, देवकीनन्दन, यशोदानन्दन बनने का उपक्रम करने लगे निविड नीरदो की भयकर वृष्टि और आवर्त शताकुल यमुना के प्रबल प्रवाह ने उनका मार्गावरोध किया। कलि दोष को खडित करने वाली कलिन्द-नन्दिनी होने पर भी यमानुजा होने के कारण उस में काल कृत दोषो का समावेश हो गया। जन्म के समय सर्वगुणोपेत परमशोभन काल, गोकुल मे माया प्राकट्य के अनुक्षण ही सघन वर्षणात्मक प्रावृट् रूप मे परिणत हो गया। माया-मोहित इन्द्र के द्वारा प्रणोदित वर्षा-काल की विकरालता से काल कृत दोष भी समुपस्थित हो गया। इस प्रकार भयावह देश काल कृत उभय विधि दोषो के उद्दाम

प्रवाह ने भगवत्कार्य में बाधा उपस्थित कर दी। जलौघ की अगाधता मे प्रचड वायुवश वेगमयी ऊर्मियो के उत्थान पतन से यमुना फेनिल होकर अपावन हो गई। त्रिदोषग्रस्त विकराल प्रवाह ने शुद्ध सत्वात्मक वसुदेव के द्वारा उह्यमान भगवान् के पथ मे बाधा खडी कर दी। पर भगवत्प्रादुर्भाव तो इन सब विपत्तियो के विनिवारणार्थ ही हुआ करता है, सो श्री पति के चरण-स्पर्श से निर्दोष होते ही रामावतार मे सिन्धुपति समुद्र की भाँति कलिन्दनन्दनी ने मार्ग प्रदान कर दिया शेषाख्यधाम स्वय अपने फणासहस्त्र से वृष्टि का निवारण करने लगे[1]—भक्तोद्धार कार्य मे आने वाली समस्त विपदाएँ तत्क्षण दूर हो गई। किसी ने कहा है—

"विश्व का प्रकाश-पुंज पाणि मे प्रदीप्त था तो—
सूचीभेद्य संतमस आकर अडे तो क्या ?
ससृति समुद्र का समीप दृढ़ सेतु था तो—
नीर का गभीर क्रूर पूर उमडे तो क्या ?
'देशिकेन्द्र' जिसका नाम लेते कट जाते फद—
भौतिकावरोध यदि सकट टरें तो क्या ?
गोद में समोद वसुदेव उस ईश को ले—
भानु-नन्दिनी के यदि पार उतरे तो क्या ?"

इस प्रकार अक्लिष्ट कर्मा प्रभु के नन्द-गोकुल मे निवास होते ही माया का स्थानान्तरित हो गया, वसुदेव सद्य प्रसूता माया को चुपचाप लेकर मथुरा चल दिये। यशोदोत्सग-लालित वह परमतत्व स्वकीय बाल-चेष्टितो से ब्रज-परिकर को मुग्ध करने लगे। नन्द-महोत्सव मे ब्रज-मण्डल उल्लसित हो गया।

नन्द-महोत्सव—सकल गुणनिधान परमैश्वर्य सम्पन्न श्री हरि के प्राकट्य से उनका लीला-क्षेत्र ब्रज-मण्डल भी ऐश्वर्य-मडित हो गया। ब्रजाधीश नन्द के मन्दिर मे ही क्या, समस्त गोकुल मे वैभव मूर्तिमान होकर नृत्य करने लगा। महामना नन्द परमाह्लादित होकर मगल-स्नान और महार्घ वस्त्राभूषणो से सुसज्जित, वेदज्ञ विप्रो द्वारा विधिवत् पितृदेवार्चन करते हुए शिशु के स्वस्त्ययन का कार्य सपादित करने लगे। पयस्विनी, तरुणी, सवत्सा समलकृत असख्य धेनुओ के दान, रत्ननिकर, सुवर्णराशि और महामूल्य वस्त्राभरणो के अटम्बर सहित तिल पर्वतो के प्रत्यर्पण से ब्रज मे दान की सरिता सी उमड़ पडी। जहाँ-तहाँ सूत मागध-वन्दी-जन यशोगान से, गायक सगीत के मधुर आलापो से द्विजवृन्द सौमगल्य श्रुति-मधुर श्रुति-वचनो से जय-जयकार करने लगे। भेरी पटह शख वीणा झाँझ आदि विविध वाद्यो के मनोहर कलरव से नन्दागण मे अनुपम आनन्द की वर्षा सी होने लगी, गृह, वीथी, मार्ग चत्वर, हाट, बाट चित्र ध्वज पताका तोरण वन्दनवारो से सज उठे। चैल, पल्लव, तोरण, कदली-खभ कपन द्वारा आत्मोल्लास को व्यक्त करने लगे। वत्स वृष, धेनु, गोपो मे—बाल, तरुण, वृद्ध सभी मे नवीन जीवन का सचार हो गया। वस्त्र काचन

---

१. मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा, गभीर तोयौघ जवेर्मि फेनिला।
भयानकावर्त शताकुला नदी मार्ग ददौ सिन्धुदित श्रिय पतेः। —भाग०

माला आदि आभूषणो से सजधज कर गोप-गोपियाँ मगल उपायन ले ले कर नन्दगृह मे एकत्रित हो गये, हार्दिक परमानन्द और दिव्य अलकार वस्त्रो की आभा से आभासित व्रज-ललनाएँ नवकु कुम किजल्क से अभिरजित मुखारविन्द की शोभा बिखेरती हुई व्यालोल कुण्डल और पृथुल पयोधरो पर विललुति भौतिक-रत्न हारो के कारण साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप मे देदीप्यमान तडित-त्वरित गति से नन्दालय मे पहुँचने लगी। जहाँ-तहाँ श्रद्धा, प्रेम, आदर, सत्कार का लास्य होने लगा। हरिद्रा, चूर्ण, सुवासित तेल, गन्ध, कु कुम, दूध, दही, नवनीत के प्रक्षेप, परस्पर विलिपन और अभिवर्षण से "नन्द के आनन्द भयो जै कन्हैया लाल की" ध्वनि मे आनन्द बधाई का समुद्र उमड़ गया। श्रीशुकाचार्य के शब्दो मे—

"तत आरभ्य नन्दस्य व्रज समृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्म गुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥"

श्री कृष्ण के जन्मोत्सव से नन्दराय का व्रज सकल-समृद्धियो का निकेतन हो गया। अपने चाचल्य को चरितार्थ करने के लिए रमा व्रज को क्रीड़ागण बनाने मे तल्लीन हो गई। दुरित दु खहारी व्रजबिहारी श्री कृष्ण के निवास और दिव्य गुणो के विकास से व्रज मे ऐश्वर्य की इयत्ता ही नही रही। गोपिकाओ द्वारा जगीयमान गीत "जयति ते धिक जन्मना व्रज श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि" अक्षरश पहले ही चरितार्थ हो गया। प्रभु श्री कृष्ण आत्मगुण-ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य की प्रख्यापक बाल-लीलाओ द्वारा भक्त-जन मानस का निरोध सिद्ध करने लगे।

पूतनासुपय पान—लीला नरवपु धारी कृष्ण स्वकीय लीलाओ द्वारा भक्तजनो की आन्तर बाह्य अविद्या की निवृत्ति करते है। काम चारिणी पूतना सुन्दर स्त्री-वेश धारण कर नन्द-गोकुल के बालको का घात करने के लिए प्रयत्न करती है। बालक कृष्ण को ढूँढने के लिए जैसे ही वह नन्दराय जी के मन्दिर मे पहुँची, एकान्त पाकर कृष्ण को उठाकर विषोल्वण स्तन-पान कराने लगी। भगवान् स्तन-पान के साथ उसके प्राणो का भी पान कर गये। यद्यपि वह गत प्राण होकर पछाड़ खाकर गिर पडी फिर भी भगवत्स्पर्श से उसे मातृ-गति प्राप्त हुई। इस चरित्र से प्रभु अपने पराक्रम लीला का स्वरूप लोक के सन्मुख रखते है।

आध्यात्मिक ज्ञान मे देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्त करण यह चतुर्धाध्यास तथा स्वरूप विस्मृति, यह पचपर्वा अविद्या का स्वरूप है। जिसका आधिभौतिक रूप पूतना है। पूतना मारण मे प्रभु किसी साधन और अवस्था का सहारा नही लेते, और यही कारण है कि व्रजवासियो को इस कार्य से आपके महात्म्य की अवगति नही हो पाती। इमे वे दैवी घटना समझ कर आश्चर्य-चकित रह जाते है, और मन्त्रादि के द्वारा समार्जन कर बालक की रक्षा करने लगते है। इस कार्य को कृष्ण मुग्ध-भाव से ही सम्पादित करते हैं जिससे व्रज-जनो को लोकोत्तर ज्ञान नही होने पाता। पूतना प्राण-शोषण के समय भी वे कोई विशाल रूप धारण नही करते। पालना मे झूलते शिशु ही बने दीखते है।

अपने एक ही चरित्र से भगवान् अनेक प्रयोजन सिद्ध करते हैं, लोक-दृष्टि

से उनका आधिभौतिक चरित्र, शास्त्र प्रतिपादित आध्यात्मिकता का रूप धारण कर लेता है। श्री कृष्ण पूतना-वध के द्वारा उन सभी बालको का उद्धार करते है, जो उसने अपने उदरस्थ कर लिये थे। इसका नाम पूतना है, यह जन्मादि सभी वैदिक सस्कारो से पूत जीवो का भी नयन करने वाली है। अविद्या अपना प्रभाव सस्कृत असस्कृत सभी पर डालती है और उन्हे वह अपनी लपेट मे ले लेती है, पर भगवान् अपनी पराक्रम शक्ति के द्वारा सभी का समुद्धार कर देते है। व्रज के जन पूतना आगमन और उसके प्राणापगम की वात सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। भगवान् के प्रति किये गये इस दुष्ट कार्य से भी भगवान् पूतना को माता की गति प्रदान करते है और इस प्रकार उनकी दिव्य दयालुता का स्वभावत प्रकाश होता है। "लेभे गतिं धात्युचिता ततोन्य क वा दयालु शरण व्रजेम।"

शकट-भंजन—एक दिन औत्थानिक अभ्युदय कर्म मे लोक-प्रथा के अनुसार बालक श्री कृष्ण को दूध-दही नवनीत आदि रस-पूरित घटो से लदे हुए शकट के नीचे सुलाया गया। उसमे असुरावेश हुआ जानकर उन्होने उसे अपने मृदुल चरण के आघात से उलट कर विध्वस्त कर डाला। विविध रसो की उपस्थिति मे भी स्तन्यार्थी बालकृष्ण सन्तुष्ट न हो सके, रुदन करते हुए उन्होने सभी विकृत रसो के साथ आसुरी भावना को भी विनष्ट कर डाला। यावन्मात्र गोप "कथ स्वय वै शकट विपर्यगात्" कहते हुए आश्चर्य-चकित हो गये।

यावन्मात्र धरामण्डल "रसो वै स" परब्रह्म की प्रकृति (प्रकृष्ट) कृति है वह भी रस पूरित 'रसा' है, यो तो उसमें रसो के सात समुद्र भरे हुए है, पर वे आधि-भौतिक हैं, और जब इन आधिभौतिक रसो को आध्यात्मिक रसता से उत्कृष्ट स्थान दिया जाता है, तब वे स्वय अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। अधिष्ठान के साथ विनष्ट हो जाते है। रसो का आध्यात्मिक रूप आनन्द कहलाता है। आनन्दवल्ली उपनिषद् के अनुसार मनुष्यानन्द की अपेक्षा देव, गन्धर्व आदि के आनन्द शतगुणित बताए गये हैं। सर्वोपरि आत्मानन्द और ब्रह्मानन्द गिनाया गया है, पर इससे अगणित अपरिमित परमानन्द, भगवद् भजनानन्द है, भगवत्स्वरूपानन्द है। परम स्वरूप भगवान् की कक्षा मे सभी रस निम्न कोटि के हैं। भगवान् जहाँ अपने स्वरूप और लीला द्वारा रस-दान कर रहे हो। अन्य रसो की कोई प्रतिष्ठा नही हो सकती।

वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति के लिए जब श्री कृष्ण स्वय स्तनार्थी बनते हैं, माता यशोदा लौकिक कार्यासक्त हो जाती है, भक्त की अन्याश्रयता देख कर प्रभु रुदन करने लगते हैं। उसकी निरोध-सिद्धि के लिए अपने ज्ञान भक्ति रूपी मृदुल चरण पल्लव के आघात से प्राकृत रस और उसकी प्रतिष्ठा दोनो को उलट देते हैं और इस प्रकार भगवद्वाहिर्मुख्य से आपतित आसुरभाव की विनिर्वृत्ति हो जाती है। चरणो के मृदु आघात से ही ससार-शकट के देश काल गति रूप दोनो चक्र, 'अह' दड से पृथक् अस्त-व्यस्त हो इधर-उधर जा पड़ते हैं। शकट का कूवर (उच्च स्थान) भी साथ ही विनष्ट हो जाता है।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण विविध कामना भावो से भरे ससार शकट का नाश कर अपनी यशोलीला द्वारा भजनानन्द के प्रति—स्वरूप सेवा के प्रति—भक्तो का

माला आदि आभूषणो से सजधज कर गोप-गोपियाँ मगल उपायन ले ले कर नन्दगृह मे एकत्रित हो गये, हार्दिक परमानन्द और दिव्य अलकार वस्त्रो की आभा से आभासित ब्रज-ललनाएँ नवकु कुम किंजल्क से अभिरजित मुखारविन्द की शोभा बिखेरती हुई व्यालोल कुण्डल और पृथुल पयोधरो पर विलसुति भौतिक-रत्न हारो के कारण साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप मे देदीप्यमान तडित-त्वरित गति से नन्दालय मे पहुँचने लगी। जहाँ-तहाँ श्रद्धा, प्रेम, आदर, सत्कार का लास्य होने लगा। हरिद्रा, चूर्ण, सुवासित तेल, गन्ध, कु कुम, दूध, दही, नवनीत के प्रक्षेप, परस्पर विलिपन और अभिवर्षण से "नन्द के आनन्द भयो जै कन्हैया लाल की" ध्वनि मे आनन्द बधाई का समुद्र उमड़ गया। श्रीशुकाचार्य के शब्दो मे—

"तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः समृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्म गुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥"

श्री कृष्ण के जन्मोत्सव से नन्दराय का ब्रज सकल-समृद्धियो का निकेतन हो गया। अपने चाचल्य को चरितार्थ करने के लिए रमा ब्रज को क्रीड़ागण बनाने मे तल्लीन हो गई। दुरित दु खहारी ब्रजबिहारी श्री कृष्ण के निवास और दिव्य गुणो के विकास से ब्रज मे ऐश्वर्य की इयत्ता ही नही रही। गोपिकाओ द्वारा जगीयमान गीत "जयति ते धिक जन्मना व्रज श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि" अक्षरश पहले ही चरितार्थ हो गया। प्रभु श्री कृष्ण आत्मगुण-ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य की प्रख्यापक बाल-लीलाओ द्वारा भक्त-जन मानस का निरोध सिद्ध करने लगे।

पूतनासुपय पान—लीला नरवपु धारी कृष्ण स्वकीय लीलाओ द्वारा भक्तजनो की आन्तर बाह्य अविद्या की निवृत्ति करते है। काम चारिणी पूतना सुन्दर स्त्री-वेश धारण कर नन्द-गोकुल के बालको का घात करने के लिए प्रयत्न करती है। बालक कृष्ण को ढूँढने के लिए जैसे ही वह नन्दराय जी के मन्दिर मे पहुँची, एकान्त पाकर कृष्ण को उठाकर विषोल्वण स्तन-पान कराने लगी। भगवान् स्तन-पान के साथ उसके प्राणो का भी पान कर गये। यद्यपि वह गत प्राण होकर पछाड़ खाकर गिर पडी फिर भी भगवत्स्पर्श से उसे मातृ-गति प्राप्त हुई। इस चरित्र से प्रभु अपने पराक्रम लीला का स्वरूप लोक के सन्मुख रखते हैं।

आध्यात्मिक ज्ञान मे देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्त करण यह चतुर्धाध्यास तथा स्वरूप विस्मृति, यह पचपर्वा अविद्या का स्वरूप है। जिसका आधिभौतिक रूप पूतना है। पूतना मारण मे प्रभु किसी साधन और अवस्था का सहारा नही लेते, और यही कारण है कि ब्रजवासियो को इस कार्य से आपके महात्म्य की अवगति नही हो पाती। इसे वे दैवी घटना समझ कर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं, और मन्त्रादि के द्वारा समार्जन कर बालक की रक्षा करने लगते हैं। इस कार्य को कृष्ण मुग्ध-भाव से ही सम्पादित करते हैं जिससे ब्रज-जनो को लोकोत्तर ज्ञान नही होने पाता। पूतना प्राण-शोषण के समय भी वे कोई विशाल रूप धारण नही करते। पालना मे झूलते शिशु ही बने दीखते है।

अपने एक ही चरित्र से भगवान् अनेक प्रयोजन सिद्ध करते हैं, लोक-दृष्टि

से उनका आधिभौतिक चरित्र, शास्त्र प्रतिपादित आध्यात्मिकता का रूप धारण कर लेता है। श्री कृष्ण पूतना-वध के द्वारा उन सभी बालको का उद्धार करते हैं, जो उसने अपने उदरस्थ कर लिये थे। इसका नाम पूतना है, यह जन्मादि सभी वैदिक सस्कारो से पूत जीवो का भी नयन करने वाली है। अविद्या अपना प्रभाव सस्कृत असस्कृत सभी पर डालती है और उन्हे वह अपनी लपेट मे ले लेती है, पर भगवान् अपनी पराक्रम शक्ति के द्वारा सभी का समुद्धार कर देते है। व्रज के जन पूतना आगमन और उसके प्राणापगम की बात सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाते है। भगवान् के प्रति किये गये इस दुष्ट कार्य से भी भगवान् पूतना को माता की गति प्रदान करते है और इस प्रकार उनकी दिव्य दयालुता का स्वभावत प्रकाश होता है। "लेभे गति धात्युचिता ततोन्य क वा दयालु शरण व्रजेम।"

शकट-भजन—एक दिन औत्थानिक अभ्युदय कर्म मे लोक-प्रथा के अनुसार बालक श्री कृष्ण को दूध-दही नवनीत आदि रस-पूरित घटो से लदे हुए शकट के नीचे सुलाया गया। उसमे असुरावेश हुआ जानकर उन्होने उसे अपने मृदुल चरण के आघात से उलट कर विध्वस्त कर डाला। विविध रसो की उपस्थिति मे भी स्तन्यार्थी बालकृष्ण सन्तुष्ट न हो सके, रुदन करते हुए उन्होने सभी विकृत रसो के साथ आसुरी भावना को भी विनष्ट कर डाला। यावन्मात्र गोप "कथ स्वय वै शकट विपर्यगात्" कहते हुए आश्चर्य-चकित हो गये।

यावन्मात्र धरामण्डल "रसो वै स" परब्रह्म की प्रकृति (प्रकृष्ट) कृति है वह भी रस पूरित 'रसा' है, यो तो उसमें रसो के सात समुद्र भरे हुए है, पर वे आधिभौतिक हैं, और जब इन आधिभौतिक रसो को आध्यात्मिक रसता से उत्कृष्ट स्थान दिया जाता है, तब वे स्वय अपना अस्तित्व खो बैठते है। अधिष्ठान के साथ विनष्ट हो जाते है। रसो का आध्यात्मिक रूप आनन्द कहलाता है। आनन्दवल्ली उपनिषद् के अनुसार मनुष्यानन्द की अपेक्षा देव, गन्धर्व आदि के आनन्द शतगुणित बताए गये हैं। सर्वोपरि आत्मानन्द और ब्रह्मानन्द गिनाया गया है, पर इससे अगणित अपरिमित परमानन्द, भगवद् भजनानन्द है, भगवत्स्वरूपानन्द हैं। परम स्वरूप भगवान् की कक्षा मे सभी रस निम्न कोटि के है। भगवान् जहाँ अपने स्वरूप और लीला द्वारा रस-दान कर रहे हो ! अन्य रसो की कोई प्रतिष्ठा नही हो सकती।

वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति के लिए जब श्री कृष्ण स्वय स्तनार्थी बनते है, माता यशोदा लौकिक कार्यासक्त हो जाती है, भक्त की अन्याश्रयता देख कर प्रभु रुदन करने लगते हैं। उसकी निरोध-सिद्धि के लिए अपने ज्ञान भक्ति रूपी मृदुल चरण पल्लव के आघात से प्राकृत रस और उसकी प्रतिष्ठा दोनो को उलट देते हैं और इस प्रकार भगवद्बाहिर्मुख्य से आपतित आसुरभाव की विनिर्वृत्ति हो जाती है। चरणो के मृदु आघात से ही ससार-शकट के देश काल गति रूप दोनो चक्र, 'अह' दड से पृथक् अस्त-व्यस्त हो इधर-उधर जा पडते हैं। शकट का कूवर (उच्च स्थान) भी साथ ही विनष्ट हो जाता है।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण विविध कामना भावो से भरे ससार शकट का नाश कर अपनी यशोलीला द्वारा भजनानन्द के प्रति—स्वरूप सेवा के प्रति—भक्तो का

आकर्षण कर लेते हैं, स्वय वात्सल्य रस का अनुस्वाद करने लग जाते हैं—

"रुदन्त सुतमादाय यशोदा ग्रहशकिता ।
कृतस्वस्त्ययन विप्रै सूक्तै. स्तनमपाययत् ।।" —भाग०

तृणावर्त-वध—इसी प्रकार भगवान् भक्तो की मानसिक आसक्ति के लिए अपने छहो गुणो की परिचायक लीला द्वारा भौतिक बाधाओ का निवारण कर आध्यात्मिक विपत्तियो से भी उनका परित्राण करते है । गोकुल मे उठा हुआ प्रबल अन्धड़ इसी प्रसग का एक उदाहरण है—

तृणावर्त सर्व-जन लोचन-वचक जातिगत क्रौर्यादि स्वभाव का आधिभौतिक रूप है जो चक्रवात रूप धारण कर सर्वत्र व्याकुलता उत्पन्न कर देता है । अज्ञानान्धकार, ज्ञान के तीनो अशो का (१) वेद्याश, (२) इन्द्रियाश, और (३) अन्त करणाश का आच्छादन कर लेता है, जिसके कारण भक्त स्वय स्थापित तत्व का भी पता नही लगा पाता । एक समय यशोमति स्वकीय आरोह मे आरूढ शिशु का लालन कर रही थी कि, "अणोरणीयान प्रभु" सहसा "महतो महीयान्" बन गये । पर्वत-शिखर जैसे उनके भार को सहन न कर सकने के कारण भार-पीडिता व्रजेश्वरी ने ज्यो ही उनको भूमि पर लिटाया कस-प्रणोदित 'तृणावर्त' दैत्य चक्रवातस्वरूप से समस्त गोकुल को त्रस्त करने लगा । उसने वेद्याश के अपहरण रूप मे गोकुल के समस्त पदार्थो को ढक लिया, इन्द्रियाश के अपहरणरूप मे व्रजवासियो के लोचनो मे धूल भर दी, और अन्त-करणाश की अपहृति मे वह घोर घोष करता हुआ चारो ओर व्याप्त हो गया । सब कुछ तिरोहित हो जाने पर माता यशोदा स्वय अपने हाथो विराजमान किये हुए श्री कृष्ण को भी भूल गयी ।[1]

जिस प्रकार एक भगवज्ज्ञान से सर्वज्ञान होता है उसी प्रकार उनके अपरिज्ञान से सभी की विस्मृति भी । सो गोकुल मे उस समय यही हुआ । तृणावर्त ने सभी पर आवरण डाल कर अपने अभीप्सितार्थ की सिद्धि करनी चाही । वह श्री कृष्ण को अति लघु समझ कर आकाश मे ले उडा था । कुछ समय के बाद पासु-वर्षण की समाप्ति पर नन्दसूनु की अनुपलब्धि से जब गोपिकाएँ और यशोदा अश्रुमुखी होकर रुदन करने लगी तब उन्हे नि साधन जान कर भगवान् ने अपना "महतो महीयान्" रूप धारण कर लिया, जल-ग्रहण द्वारा दैत्य को निर्गत लोचन बनाकर ब्रह्मशिला पर जा पटका । अन्तरिक्ष से पतित वह कराल दैत्य विशीर्ण सर्वावयव होकर सदा के लिए शान्त हो गया ।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी इस लीला द्वारा भक्तो के हृदय मे यशो-लीला का स्थापन किया । माता यशोदा बालकृष्ण को पाकर कृतकृत्य हो गई ।

नाम सस्कार—अनन्त नामा भगवान् के नाम भी अनन्त है । फिर भी लोक व्यवहारगोचर होने के लिए उनका सस्कार भी किया जाता है । वे श्री रूपिणी नामकरण लीला के द्वारा अनेको अभिधानो से यश प्रसिद्धि द्वारा अपने भक्तो का साक्षात् कराते रहते हैं ।

---

१ (१) गोकुल सवमावृण्वन् (२) मुष्णन् चक्षूं षि रेणुभि
(३) ईरयन सु महाघोर शब्देन प्रदिशो दिश (भाग० ।)

यदुकुलाचार्य महामुनि गर्ग गुण कर्मों के अनुरूप प्रभु की ईश्वरता का प्रतिबोध कराते हुए कहते है—

"वस्मान्नन्दात्मजोयं ते नारायण समो गुणे।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहित ॥"

इस प्रकार श्री कृष्ण अपनी शैशव लीलाओ द्वारा सर्वजन नयनाह्लादक रूप से व्रज का उद्धार करते हैं और विभिन्न नामो मे भरे हुए रहस्यो का स्मरण कर भक्त उनके पावन चरित्र का गायन करते हैं।

वालचेष्टित—प्रभु वाल-सौन्दर्य श्री के प्रत्यक्ष दर्शन करा कर तो व्रजवासियो को जैसा मुग्ध करते है, उतनी पराकाष्ठा अन्य चरित्रो मे अनुभूत नही होती। वे वाल-सुलभ चेष्टित धाष्ट् उपालम्भप्रद लीलाओं का अनुकरण करते है। गो-दोहन के असमय ही धेनुओ के तर्णको को छोड देते हैं। प्रभु न तो स्वय क्षुधित रहना चाहते हैं और न गौओ की तरफ सस्पृह निरीक्षण करते हुए वछडो को ही भूखे रखना चाहते है। वे छूटते ही दौड़ कर दुग्ध-पान करने लगते है और वाल कृष्ण उन्हें हुड़्ट लगाते देख कर प्रसन्न होते हैं। गृह की स्वामिनी गोपिकाएँ इस व्यति-क्रम से असमजस मे पड जाती हैं। श्री कृष्ण व्रजवासियो के घरो से दूध दही माखन को चोरी करते है तो कभी मर्कटो को खिला पिला कर गोपिकाओ को उपालम्भ देने को विवश कर देते है। दूध दही की मथनियाँ फोड कर विविध हाव-भाव चेष्टाओ द्वारा गोपिकाओ के मन मे जो वे असन्तुलित स्थिति उत्पन्न कर देते है, उससे वे कुपित भी होती हैं, विमुग्ध भी। परवश जव माता यशोदा के समीप उलाहना लेकर पहुँचती हैं, श्री कृष्ण के मुखारविन्द की हास्य-भय सम्मिश्रित विलक्षण शोभा देखकर कर्त्तव्य का निश्चय नही कर पाती। इधर माता भी श्याम सुन्दर के सलौने मुख को देख सव कुछ समझ कर भी उन को डाँट-डपट नही पाती, मन ही मन मुस्कराकर रह जाती है—

"इत्यंस्त्रीभि. सभय नयनश्रीम्मुखालोकिनाभि.।
व्याख्या वार्या प्रहसितमुखी नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥" —भाग०

महात्मा सूर के शब्दों मे—

"मेरो गोपाल तनिक सो कहा करि जानै दधि चोरी।
हाथ नचावति आवति ग्वारिनि जीभ करै किन थोरी।
कव सींके चढ़ि माखन खायो कव दधि-मटुकी फोरी।
अँगुरी करि कवहूँ नहिं चाखत घर हीं भरी कमोरी।
इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी।
'सूरदास' जसुदा को नन्दन जो कछु करै सो थोरी ॥

भगवान् श्री कृष्ण की यह वाल श्री लीला वडी महत्त्वपूर्ण है। "श्रयो हि परमाकाष्ठा सेवका स्तादृशा यदि" इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार उनके परिवार मे भी इसी श्री गुण की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है और इसी कारण भगवान् के वाल-सखा भी सहज क्रीड़ा मे माता यशोदा के पास जाकर "कृष्णो मृद भक्षित वान्" मैया कन्हैया ने आज माटी खाई है" की शिकायत करने मे झिझकते नही हैं, अन्यथा उनकी

क्या सामर्थ्य ? जो ब्रजेश्वर के पुत्र अपने नायक कृष्ण की ब्रजेश्वरी के आगे शिकायत कर सकते ?

माता यशोदा भी कृष्ण की परब्रह्मता का साक्षात् करने पर भी "कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः" कह कर कृष्ण को शिक्षा देने लगी। वे सहज सलोने उन के मुख से पहले ही यावन्मात्र ब्रह्माण्ड का दर्शन कर चुकी थी। पर श्री गुण की पूर्णता के कारण उन्हें "अदान्तात्मन्" कह कर सम्बोधित करने लगी। माता के इस शिक्षण के समय भगवान् की जो वदन सौन्दर्य की छटा बिखरी वह कुन्ती के हृदय मे सर्वदा के लिए बैठ गई थी। वे तो इस पर निछावर-सी हो गई। एक बार श्री कृष्ण के दर्शन पर सहसा उनके मुख से निकल पड़ा था—

"गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाप तावद् या ते दशाश्रुकलिलाजन सभ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भवभावनया स्थितस्य सा मा विमोहयति भीरपि यद्बिभेति॥"—भाग०

उदूखल बन्धन—भगवान् की ज्ञान-लीला का निरूपक उदाहरण है जिसमे वे बाल-नाट्य द्वारा माता को वात्सल्य-भक्ति का वास्तविक ज्ञान कराते है। स्तन-पान मे *अतृप्त बालक को छोड़कर जब यशोदा उफनते हुए दूध के प्रति आकृष्ट हो जाती* है, तब भगवान् कुपित होकर दूध-दही के भाँडे फोड़ देते है, स्वय नवनीत खाने लगते हैं और कुछ अपने रामावतार के अनुचर मर्कटो को खिला देते हैं। स्तन-पान द्वारा वे अपने उदरस्थ उन जीवो को पुष्ट करना चाहते थे जो बाल-घातिनी पूतना के द्वारा माता का स्तन-पान किये बिना ही मार डाले गये थे, पर यशोदा ने इस भक्ति के वात्सल्य कार्य की उपेक्षा कर श्री कृष्ण को कुपित कर दिया। लौकिक अर्थ—हानि को सहन न कर सकने के कारण यशोदा शिक्षा देने के लिए कृष्ण को जब पकड़ने दौड़ी तो वे कुयोगियो—भौतिक अर्थ-लोलुपो—को अप्राप्य होने के कारण हाथ मे न आ सके। तप समाधित योगियो के मन से भी अप्राप्य ब्रह्म, गोपिका यशोदा के कब वश हो सकता था ? अपरमेय तत्त्व के पीछे दौड़ती बुद्धि के समान वे भी श्रान्त, क्लान्त हो गई। जब उनके पृथुल शरीर पर श्रम-बिन्दु झलक आए तब भक्त-वश्यता के कारण भव-बंध-विमोचक प्रभु स्वय माता के प्रेम-दाम मे बँध गये।

"दृष्ट्वा परिश्रम कृष्ण कृपयासीत् स्वबन्धने।"

कृपा का बन्धन ही उन्हें बाँध सकता था, सो वे उसी मे बँध गये।

भगवान् दामोदर की इस लीला मे भक्तो को स्वभावत उनकी साधना-ग्राह्यता का और परिपूर्ण व्यापकता का दर्शन होता है। बाँधने का साधन दाम (रज्जु) बार बार दो अँगुल न्यून ही होता चला गया। उनकी बंधनात्मक प्राप्ति मे आदि अन्तता का अभाव सदा ही बना रहा है। पर कृष्ण तो सदानन्द हैं, हरि हैं, न स्वय दुखी होना चाहते है न अन्य को भी दुखी देखना चाहते है, सो उन्होने स्वकीय भक्तवश्यता का परिदर्शन कराया, और ऊखल मे बन्धन को प्राप्त हो गये।

यमलार्जुन-उद्धार—इस नाट्य के द्वारा जहाँ उन्होने वात्सल्य-रस का ज्ञान कराया वहाँ वैराग्य लीला का भी उदूखल के विकर्षण और आघात से प्रभु ने यमलार्जुन वृक्षो का उद्धार किया जो श्री मद मे मत्त हो जाने के कारण भागवत्-मुख्य नारद के शाप से वृक्षत्व को प्राप्त हो गये थे, और कृष्णावतार की प्रतीक्षा मे खड़े-खड़े तपस्या

कर रहे थे। अतिशय सौन्दर्य एव धनदात्मज होने से वैभव की अति प्रख्याति द्वारा उन्हे मद का उत्पन्न होना स्वामाविक ही था। मद होने पर महत्पुरुषों का अतिक्रम भी। अत. वे भागवत् नारद का अवहेलन करने के कारण शाप के भागी हो गये थे पर अपने भक्त की वाणी सत्य करने के लिए भगवान् श्री कृष्ण ने उन पर करुण दृष्टि डाली और तिर्यक् गत उदूखल के आकर्षण द्वारा दोनो का उद्धार कर दिया।

भागवत् सगति और भगवत्कृपा दोनो से मदोत्पन्न शाप की विनिवृत्ति हुई और दोनों गुह्यक अपनी वास्तविक पूर्व स्थिति को प्राप्त कर भगवद्भक्त बन गये।

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है प्रभु श्री कृष्ण सदानन्द है, अपने नाम, चरित्र आदि के द्वारा आनन्द की प्रतिष्ठा करते हैं, और श्री हरि दु खहर्ता रूप मे जीवो के यावन्मात्र कष्टो की निवृत्ति भी। त्रिविध आनन्द की स्थापना करने में उनका स्वरूप, उनके कार्य, उनका स्मरण, श्रवण आदि सहायक होते हैं, उसी प्रकार वे त्रिविध दु खो का विनाश करते है। व्रज मे आकर जहाँ दुष्ट दैत्य अपने भयानक स्वरूप से लोक-सन्त्रास के कारण बनते है, भगवान् उनके आधिभौतिक स्वरूप का विनाश कर आध्यात्मिक रूप से भी उनकी निवृत्ति कर देते है।

वत्सासुर समस्त वत्सो का एकीभूत आसुर भाव है, जो सहमिलन द्वारा ललित क्रीड़ा मे व्यतिक्रम उपस्थित करता है। श्री कृष्ण उसका विनाश कर वत्स-चारण कार्य को निरापद बनाते हैं।

बकासुर वत्स-पालको का समूह गत दम्भ-दोष है जो भगवान् पर अपने तीक्ष्ण तु डो द्वारा प्रहार करता है। वह लोभ और अनृत इन दोनो तु डो से ही अपना शरीर पुष्ट करता है। श्री कृष्ण इन दोनो तु डो को फाड कर दम्भात्मक बकासुर का नाश करते हुए वत्सो के समान वत्स-पालो को भी निर्दोष बना लेते है।

अघासुर स्वय व्रज-मण्डल का पाप है। गोप बालको के साथ वन-भोजन के अनन्तर सुख-क्रीडा मे बाधक बन कर आता है। यह अन्न गत आलस्य दोष जब अपना विशाल मुख फैला कर सब को उदरस्थ करता हुआ, प्रभु पर भी अपना प्रभाव प्रकट करने की प्रतीक्षा करता है। अन्त प्रविष्ट गोप बालको के उद्धारार्थ श्री कृष्ण स्वय उसके भीतर जाकर व्यापक विशाल रूप द्वारा उसका विनाश करते है।

इस प्रकार पाप के प्रभाव से अक्षत जीवो को निष्कलमष बना कर प्रभु अपनी क्रीडान्तर्गत कौमार-लीला से उनका उद्धार करते हैं।

लीला-केन्द्र व्रज-मण्डल—सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम का लीला-धाम [illegible]-मण्डल आधिभौतिकादि भेद से त्रिविध है, पर जब वे स्वय अपने [illegible] क्रीडा करने भूतल पर आविर्भूत होते हैं, उनका धाम भी धरा-मण्डल [illegible] हो जाता है। नित्य, देशकालापरिच्छिन्न वाग्मनोगोचरातीत, स्वयं [illegible] अक्षर दिव्य धाम-रूप से वह आधिदैविक है। इस स्वधाम का [illegible] ही सम्भव होता है। साधन द्वारा इसका अनुभव करना सर्वथा [illegible]

पूर्वपुण्योपार्जित शुभ कर्म से जीव को स्वगति का [illegible] वह निर्दुष्ट हो जाता है उसकी प्राप्त्युपाय को समझ [illegible] शास्त्रानुसार साधनानुष्ठान से ही आत्म-प्राप्ति करता है [illegible]

को ब्रह्मभाव की उपलब्धि और ब्रह्मभावानन्तर भगवद्भक्ति का जब उसके हृदय मे उदय होता है तब कही तादृश जीव को भगवज्ज्ञान की सम्प्राप्ति का सौभाग्य मिलता है। यहाँ जाकर वह भगवद्धामदर्शन की योग्यता पा सकता है। उस पर भी भगवत्कृपा सर्वोपरि है, पर यह सब जीवो के लिए कोटि जन्म से भी सम्भव नही है। अतः नि साधन दशा से सन्तुष्ट होने पर प्रभु जब स्वय चाहते हैं अपने जीवों को महती कृपा द्वारा सहज मे ही उस दिव्य लीला-धाम का दर्शन करा देते हैं—

"दर्शयामास लोक स्वं गोपानांतमसः परम्।"

इसका स्वरूप तृतीय स्कद मे इस प्रकार कहा गया है—

"तदाहुरक्षर ब्रह्म सर्वकारण कारणम्।
विष्णोर्धाम पर साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः॥"—भाग०

यही दिव्य गोलोक व्यापिवैकुठ धाम है जो ब्रह्मानन्दमय हो जाता है।

"ब्रह्मानन्दमयोलोको व्यापि वैकुंठ-सज्ञितः
निर्गुणोऽनाद्यनन्तश्च वर्तते केवले क्षरे॥"—बृ० वामन

भगवान् के इस नित्य-लीला-धाम वृन्दावन मे सब प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान रहती है, जिससे इसकी अलौकिक ही शोभा है, यहाँ—

"यत्र निर्मल पानीया कालिन्दी सरिता वरा।
रत्न बद्धोमय तटा हंसपद्मादि सकुला॥"

निर्मल सुमधुर सलिलवाहिनी, हसादि विविध पक्षिगण से परिवेष्टित, विकसित सरसिज पराग-राग से अनुरजित, और मणिमय तट गत वालुका से सुशोभित, सरिद्वरा श्री यमुना महार्घ रत्नमय शिला-तटो पर अपनी ललित बीथियो से भगवच्चरणारविन्द का प्रक्षालन करती रहती है। जहाँ—

"यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्भर दरायुतः।
रत्नधातुमय श्रीमान् सुपुक्षिगण सकुल॥"

जहाँ कोमल तृण, जल, मधुर कन्द मूल, फल से गो-गोप-गोपी आदि ब्रजवासियो की सर्वविध सुख-सम्पदा का सम्पादक, अपने कल-कल करते हुए निर्भर सपात और स्वच्छ विशाल सुखद कन्दराओ के द्वारा सुख-सेव्य, विचित्र रत्न धातुमय हरिदासवर्य गिरिराज गोवर्धन, विलक्षण शोभा से विभूपित होकर, शुक-पिक-मयूर-मधुकरो के कलरव द्वारा भगवान् की परिचर्या स्तुति करता विराजमान है।

इस प्रकार समस्त ब्रज-मण्डल अपनी सर्वविध सम्पत्ति से भगवान् का क्रीड़ा-केन्द्र बन जाता है।

लोक में देश-काल से प्रभावित परिलक्षित होते हैं, पर यहाँ तो कुछ अन्यथा ही सामग्री होती है। यहाँ तो देश के गुणो का काल पर साम्राज्य छाया रहता है, और इस प्रकार अन्यथाकर्तु समर्थ रूप भगवच्छक्ति का यहाँ साक्षात् होता है। प्राणिमात्र को दहला देने वाला भयकर ग्रीष्म-काल यहाँ वृन्दावन के गुणो से वसन्त श्री की आभा बिखेरने लगता है। कहा है—

"सच वृन्दावन गुणैर्वसन्त इव लक्षित ।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥" —भाग०

और यह सब षडगुणैश्वर्यसम्पन्न भगवान् केशव के अतुलित महिमा का साक्षात् प्रताप वृन्दावन मे आकर स्फूर्जित होता है।

यह वृन्दावन-धाम गोपराजकुमार कृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। वे पौगडवय की चारुता को अगीकार कर स्वकीय सखा-मण्डली से वेष्टित वेणु-नाद करते हुए जब गो-चारण में चरण-पकज स्पर्श से इस पर सौभाग्य की वर्षा करते हैं, यह वृन्दावन काम रूप धारण कर दैहिक और परमार्थिक दोनो फलो को लुटाने लग जाता है।

श्री कृष्ण के वन-प्रवेश मे इस अवनी की शोभा ही निराली हो जाती है। यावन्मात्र वन कुसुमाकर हो जाता है। चरणपकज-पराग की विकासक यह वन-गमन-लीला भगवान् की सत्वप्रधान रजोलीला है, अत. सकल व्रज मे सुरभित कुसुम-रज की अभिव्यक्ति हो जाना ही उसकी दिव्यता है। रज की प्रधानता के बिना विहार की सम्भावना ही कहाँ ? और इधर व्रज-विहारी व्रज मे जो विहार करना चाहते हैं, सो उनके चरण विन्यास से सर्वत्र सुमन-रज की व्याप्ति होने लग जाती है।

"वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।"

यह कुसुमाकर वृन्दावन मजुल अलि-कुल-घोष से सकुलित, मृग-गणों के निर्भय सचार से आकुल, अव्यक्त कलरव परायण विविध विहगमो के ललित विलास से पर्याकुल होकर व्रजराज-कुमार के मानस मे वेणु-कूजन की प्रेरणा को अकुरित करता रहता है। इसकी सुषमा से प्रेरित होकर वशी-धर की कोमलागुलियाँ वेणु के सुधा-पूरित छिद्रो पर थिरकने लगती है।

भूमिगत निस्तब्धता दोष को मधुर-मधुर अलि-गुंजन से निवृत्त कर यह वृन्दावन तृण-पुष्प-फलाढ्य हो कर महत्पुरुषो के निर्दोष गुणवत् मन के समान रूप धारण कर लेता है, जहाँ भगवल्लीला प्रख्याति की शीतलता भरी हुई है, लय विक्षेप रहित तरगादिशून्य, शान्त सलिल-परिपूर्ण सरोवरो के बीच यो किलोल करता हुआ शतपत्र गन्ध पवन जहाँ भगमनोमन्दिर मे विनोद की प्रतिष्ठा करता है; रसानुभूति से स्वच्छन्द रमणेच्छा का प्राकट्य करता है, धन्य है वह वृन्दावन जिसकी सुषुमा को निहार कर सकल सौन्दर्य-निधान श्री पति के मन मे भी रस की उद्भूति होने लग जाती है।

"तन्मञ्जु घोषालि-मृगद्विजाकुलं, महन्मनः प्रख्यपयत् सरस्वता।
वातेन जुष्ट शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तु भगवान् मनो दधे ॥"—भाग०

क्यो न हो ! वह वृन्दावन भी तो भगवदीय ऐश्वर्यादि गुणो से अलकृत है—भगवल्लीला का निकेतन जो है वह।

व्रज-रेणु—नन्दनन्दन की लीला-भूमि व्रज की रेणु मे तो न जाने क्या आश्चर्य समाया हुआ है ? उसका माहात्म्य न जाने कैसा विलक्षण है कि उसकी गाथा गाते-गाते बडे-बडे देवता महर्षि भी तृप्त नही होते। उस पर ज्ञानीगण आश्चर्य-चकित हैं, तो भक्त-गण विमुग्ध है, रसिक-जनो की तो कुछ न पूछिये वे तो इसमे ही रम जाना,

खो जाना चाहते हैं। भगवदीय जनो की पुरुपार्थ-परिसमाप्ति ब्रज-रेणुमय हो जाने मे ही है। क्यो न हो ? वे तो उस मुख-माधुरी के उपासक चकोर हैं जिसकी बकिम अलकावलियो पर गो-चारण के समय सरसिज-पराग को तिरस्कृत करने वाली ब्रज-धूलि विराजमान रहती है। गोपवेशधारी के ब्रजकर्दमलिप्ताग की सुषुमा का पान कर जो त्रिलोकी के वैभव को भी ठुकरा देते है।

ब्रज-रेणु का यह माहात्म्य श्री कृष्ण के चरण-सरोज के सम्बन्ध से अनुक्षण अनुप्राणित होता रहता है, जो ध्वज-वज्र अकुश पकज आदि चिह्नो से अकित है, और जो गो-चारण के समय सचरण करने पर उसमे स्पष्ट उभर आते है।

भगवान् राम-कृष्ण को मथुरा राजधानी मे लाने के लिए आए हुए अक्रूर तो स्पष्टतः चतुर्विध पुरुषार्थ के द्योतक ध्वजा कुलिश अकुश और अम्भोज से शोभित, चरण-पल्लवो से पूत ब्रज-स्थली का दर्शन कर कृतार्थ हो गये। धर्माचरण से सप्राप्त अभ्युन्नति के परिसूचक ध्वज-चिह्न जिस ब्रजभूमि मे अकित हो, अर्थ की बीहड पर्वत राशि के पक्षच्छेद के लिए जिसकी पाँसुलो मे कुलिश चिह्न का परिदर्शन होता हो, मदोन्मत्त काम गजेन्द्र की मतता विनिवारणार्थ जहाँ अकुश-लक्ष्य का दर्शन होता हो, अथच मोक्ष की मधुर गन्ध की महक उडाने के लिए जहाँ सरसिज चिह्न विकसित हो उस ब्रजभूमि का उसकी पावन रेणु-कणिकाओ का प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर अक्रूर जी कृतकृत्य हो गये, और इन्ही चरण-रेणु के अभिवन्दन से उन्हे नन्दनन्दन के मुखार-विन्द दर्शन का सौभाग्य अधिगत हो सका था।

रस-रासेश्वर भगवान् श्री कृष्ण के प्रेमसान्त्वना-सन्देश की पाती देकर ब्रज-सीमन्तिनियो के अनुपम भक्ति-भाव का आस्वाद लेकर रसोन्मत्त परम भागवत उद्धव हरि-कथा गायन करते हुए ब्रज मे ही कतिपय दिनो तक रम गये, ब्रज-भक्तो की तन्मयता उनकी अतुलित भक्ति-अनिर्वचनीय भाव, सौम्य व्यवहार और प्रभु के प्रति दृढासक्ति देख कर तो उद्धव पर ब्रज का रग ही चढ गया। उन्हें भी तन्मनस्कता का मद सा चढने लगा। वे अपने सखा श्याम सुन्दर से प्रत्यक्ष वियुक्त होने पर भी अन्तर से सयुक्त हो गये। उनके चरित्रो का गान तल्लीलाओ का स्मरण और लीला-क्षेत्रो के निरीक्षण से उद्धव अपने अगले कर्तव्य को भूल कर तो कुछ दूसरी ही योजना सोचने लगे। कर्ण-रोचन भागवतीय कथा और मनोरम ब्रज अवनी का विहार यही दोनो इनके जीवन के लक्ष्य वन गये।

"सरिद्वन-गिरि-द्रोणी वीक्षन्, कुसुमितान द्रुमान्।
कृष्ण संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥"—भाग०

भक्ति के दो प्रधान अग श्रवण और दर्शन ही तो हरिदास उद्धव को भक्ति-रस मे आप्लावित करने के साधन थे। सो वे जहाँ प्रतिक्षण भगवान् श्री कृष्ण के अनन्य दास गोप, गोपी-जनो मे बैठ कर श्यामसुन्दर का सस्मरण कराते थे, अपनी रसना और कर्ण-पुटी को पवित्र करते थे, अलौकिक लीलाओ की आधार भूमि ब्रज की मंजुल शोभा निहार-निहार कर आत्म-विमुग्ध हो जाते थे।

कलि-कलुप-निकृन्तनी श्री यमुना के मृदुल स्वच्छ स्फटिक वालुकामय पुलिन, उसका शान्त गम्भीर नीर का धीर प्रवाह और श्यामसुन्दर के कलेवर की आभा धारण

कर सलिल का अनोकहो के सुवासित सुमन लेकर चरण प्रक्षालनार्थ तरगायित उद्यम देख कर उद्धव का मन मधुकर भी उन सुमनो पर मँडराने लग गया। वृन्दावन का सुषुमा और पानीय सूयवस-कन्दर-कन्द-मूलो से भगवत्सहचरो के सेवा-सौभाग्याधिकारी हरिदासवर्य गोवर्द्धन की छटा तो उनके नयनो मे ऐसी समाई जो कभी हटाई न जा सकी। उभयत्र स्थित प्रत्यन्त पर्वतो की मध्यगत भूमि द्रोणी जहाँ बाल कृष्ण, नटखट गोपाल कृष्ण की दान-लीलाएँ होती थी उद्धव को भुलावा देने लगी। गोकुल में अमित कुसुमित चम्पक, बकुल मल्लिका कदम्ब, रसाल की सघन वीथियो मे श्यामल सुखद छाया पाकर उनका मन-कुरग विश्राम करने लग गया। लीला-निकेतनो की अच्छच्छवि ने पीयूष तिरस्कारिणी कथा को प्रोत्साहन देकर तो उद्धव को व्रज-ललनाओ की चरण-रज का उपासक बना दिया। वे हृदय की अनुभूति स्वर मे शुष्क ज्ञान पर भक्ति की विजय पा कर गा उठे—

> "आसामहो चरण-रेणु-जुषामह स्या
> वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम्
> या दुस्त्यज स्वजनमार्य पयचहित्वा
> भेजुमुकुन्द-पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥"

ज्ञानिनामग्रगण्य उद्धव जी विचारने लगे कि मै तो इन व्रज-भक्तो के दासानुदासत्व की योग्यता भी नही रखता, इनकी स्थिति पर पहुँचना तो दूर। अधिकार से बाहर पदार्थ चाहने वाले का अध पात होता है सो मुझे तो अपने स्वरूपानुरूप ही कामना करनी चाहिये। एतावता गोपिकाओ के चरण-रेणु सम्पर्कशाली इन गुल्म, लता ओषधियो मे से ही मैं 'किमपि स्याम्' कुछ हो जाऊँ। उच्च भावना मे मनोरथ की परिसमाप्ति "क्या हो जाऊँ' कुछ पता नही ? भगवान् स्वेच्छा से ही इनके बीच मे कुछ न कुछ बनाने की कृपा तो करें, जिससे इन महाभागाओं के चरण-कमल सचार से उद्धत रज का मेरे मस्तक पर अभिषेक हो सके।

सो इस कमनीय कामना को लेकर उद्धव के व्रज मे रम जाने का मानसिक दृढ सकल्प व्रज-रज के उस अनन्त दिव्य माहात्म्य का परिचायक है जो ब्रह्मादि देवो को भी अतिशय दुर्लभ है। जगम प्राणी तो कदाचित् इस सौभाग्य से विमुख भी हो सकते हैं पर स्थावर नही। वे तो निश्चल भाव से एकत्र स्थित रह कर इसका सदा स्वागत करते रहते हैं सो परम भागवत उद्धव भी क्रियागति विहीन बनकर इसी व्रज-रेणु की लालसा मे वृन्दावन-निवास के प्रेमी बन गए।

वृन्दावन की रेणु के लिए वे न जाने क्या और कैसे बन जाना चाहते है ? यह रज कोई साधारण थोडे ही है श्रुतियो द्वारा चिरन्तन से विमृग्य है, स्वरूप-सुधा के वितरक श्री कृष्ण-मुकुन्द की मृदु पदवी तो इसी मे जहाँ-तहाँ परिलक्षित हो सकती है।

> "धन्यं वृन्दावने यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः।"

: ८ :

व्रज-गौरव

प० वनमाली शास्त्री, चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, मथुरा

यो तो "व्रज" शब्द के अनेक अर्थ है, पर "व्रजन्त्यस्मिन्" इस निरुक्ति के अनुसार गमन अर्थ वाली 'व्रज' धातु से "गोचर सचर वह व्रजव्यजापण निगमाश्च" (३।३।१२२ पाणिनि सूत्र) से 'घ' प्रत्यय जुडने पर "भुक्तो—मोक्ष-लाभ करने वालो का गन्तव्य देश, अर्थ होता है। "मुक्ताना परमा गति" यह शास्त्रीय वचन इसी-निर्दिष्ट अर्थ की पुष्टि करता है। अथवा "व्रजन्त्यनेन" इस निरुक्ति मे उक्त गमनार्थक 'व्रज' धातु से "पुन्सिसज्ञाया घ प्रायेण" (३।३।११८ पाणिनि सूत्र) से 'घ' प्रत्यय करने से निष्पन्न 'व्रज' शब्द का दूसरा अर्थ होता है "पुण्यात्माओ के गमन का साधन"। अतएव पुराणो मे कहा है—"सिद्धिद सिद्धि साधनम्।" भगवान् श्री कृष्ण का उत्पत्ति-स्थान तथा क्रीड़ा-स्थल होने से "व्रज-भूमि" अतीव पावन मानी गयी है। वेदो मे 'व्रज' शब्द का उल्लेख मिलता है, बाद मे विष्णु-सूत्र मे भी 'व्रज' का स्पष्ट उल्लेख है।[1]

उपनिषदो मे 'व्रज' शब्द तो नही देखा गया है, किन्तु वहाँ, "व्रज-कमल" की कर्णिका-रूप 'मथुरा' और दलरूप 'मधुवन' आदि का सुस्पष्ट उल्लेख है।

अथर्ववेदीय 'गोपालोत्तर तापिनी' उपनिषद् के एक उपाख्यान में गान्धर्वी जब श्री दुर्वासा ऋषि से श्री गोपाल कृष्ण के सम्बन्ध मे पूछती हुई उनके स्थान की जिज्ञासा करती है, तब श्री दुर्वासा ऋषि ब्रह्मा और नारायण के सवाद से ज्ञात उन—श्री कृष्ण के स्थान का परिचय इस प्रकार देते हैं—

"सहोवाच त हि नारायणो देव.। सकाम्या मेरो शृङ्गे यथा सप्तपुर्यो भवन्ति तथा निष्काम्या सकाम्या भूगोलचक्रे सप्त पुर्यो भवन्ति तासा मध्ये साक्षाद् ब्रह्मपुरी हीति।"

अर्थात् भगवान् श्री नारायण ने ब्रह्मा जी से कहा कि—"परम वैकुण्ठ मे जैसे कि सब भोगो सहित सात पुरी है, वैसे ही भूगोल-चक्र मे मोक्ष और भोग देने वाली अयोध्या, मथुरा आदि सात पुरी है। उन सात पुरियो मे गोपाल पुरी-मथुरा, ब्रह्मात्मक और ब्रह्म-प्रकाशक होने से साक्षात् ब्रह्म रूप ही है।

"यथा हि सरसि पद्मस्तिष्ठति तथा भूम्या तिष्ठति चक्रेण रक्षिता हि मथुरा

---

१ "व्रज च विष्णु सखित्राऽअपोर्णु ते।"—विष्णु-सूक्त

तस्माद् गोपालपुरी भवति ।"[1]

श्रीमद्भागवत मे मथुरा मे श्री कृष्ण की सदा उपस्थिति बतलाते हुए लिखा है—

"मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ।"

—श्री मद्भागवत १० स्क, १ अ०, २८ श्लोक

'मथुरा' शब्द का अर्थ समझाते हुए श्री गोपालोत्तर-तापिनी उपनिषद् मे लिखा है कि—

"मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा ।
तत्सारभूत यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते ।।" —गोपालोत्तरतापिन

जगदीश्वर के लाभ के लिए जो ज्ञान वार-वार अन्वेषण करता है, उसी ज्ञान का सारभूत ब्रह्म जहाँ है, वह मथुरा कहलाती है । अर्थात् 'मथ्यते जगद् अनेन" इस विग्रह मे विलोडन—मथन, अर्थ वाली 'मन्थ' धातु से उणादि 'कुरच्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होने वाले 'मथुर' शब्द का अर्थ है 'ज्ञान' । 'मथुर-ज्ञान, यस्यामस्ति सा' इस निरुक्ति मे "अर्श आदिभ्योऽच्" (५।२।१२७ पाणिनि सूत्र) से 'अच्' प्रत्यय एव "अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४ पाणिनिसूत्र) से टाप् होने से "मथुरा" शब्द वनता है ।

यह तो हुआ वेद एव उपनिषद् के अनुसार प्रस्तुत विषय पर विवेचन । अव पुराणो की ओर आइये, इन मे स्थान-स्थान पर 'व्रज', ब्रजभूमि, मथुरा-मण्डल अथवा 'व्रज' के अन्तर्गत स्थल मथुरा, वृन्दावन आदि की तथा उनमे निवास करने वालो की भूरि-भूरि प्रशसा पाई जाती है ।

पद्मपुराण मे—

"श्टगुत दत्तचित्तो मे रहस्य व्रजभूमिजम्" ।

(सावधान होकर 'व्रजभूमि' का रहस्य सुनिये) इस भाँति उपक्रम कर, व्रज के विषय मे लिखा है कि—

"तस्मिन्नन्दात्मज· कृष्ण, सदानन्दाङ्ग विग्रह· ।
आत्मारामश्चात्मकाम·, प्रेमाक्तै रनुभूयते" ।।[2] —पद्म पुराण

वही आगे चलकर 'मथुरा-मण्डल' का निर्देश करके वताया है, कि—

"अत्रैव ब्रजभूमि· सा, यत्र तत्त्व सुगोपितम् ।
भासते प्रेमपूर्णानां, कदाचिदपि सर्वत· ।।"[3]

गर्ग-सहिता मे एक यह कथानक है कि , "भूमि का भार उतारने के लिए देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवान् श्री कृष्ण ने भू-लोक मे अवतार ग्रहण की

---

१. सरोवर में कमल की भाँति भूमि में भगवान् के सुदर्शन-चक्र से रक्षित होने से मथुरा गोपाल पुरी है ।

२ उस व्रज में श्रद्धालु लोग आनन्द स्वरूप, आत्माराम और सब कामनाओं के प्राप्त करने वाले नन्दनन्दन श्री कृष्ण का सदा अनुभव करते हैं ।

३ (प्राकृत की भाँति प्रतीत होने वाले) इसी 'मथुरामण्डल' में वह व्रजभूमि है, जहाँ प्रेमपूर्ण भक्तों को गुप्त-तत्त्व कभी-कभी (भगवान् श्री हरि की जब कृपा होती है, तब) सब ओर भासित प्रतीत होता है ।

प्रतिज्ञा कर अपनी प्राण-प्रिया श्री राधिका को यह समाचार सुनाया। उनने यह समाचार सुन कर कहा कि—"आपके वियोग में मेरा जीवित रहना सम्भव नही," तब श्री कृष्ण ने आज्ञा की कि —"आपको साथ मे लेकर ही मै भूमि पर अवतार लूँगा।" इस पर श्री राधिका फिर बोली, कि —

> "यत्र वृन्दावन नास्ति, यत्र नो यमुना नदी।
> यत्र गोवर्द्धनो नास्ति, तत्र मे न मनःसुखम्॥"[1]—गर्गसहिता १।३।३३

यह सुनकर भगवान् श्री कृष्ण ने गो-लोक से मनुष्य-लोक मे ८४ कोस भूमि भेज दी। जैसा कि राजा जनक के प्रति श्री नारद मुनि के वचन से स्पष्ट है—

> "वेद नाग[2] क्रोश भूमि, स्वधाम्न श्री हरि स्वयम्।
> गोवर्द्धन च यमुना, प्रेषयामास भू परि॥"—ग० स० १।३।२४

आगे चल कर वही (गर्ग-सहिता मे) वृन्दावन-खण्ड मे वर्णित है कि जब गोकुल मे बहुत उपद्रव होने लगे तब ब्रजाधीश श्री नन्द बाबा की असमञ्जसता देख-कर सन्नन्द ने प्रस्ताव रखा कि—"वृन्दावन के लिए प्रयाण किया जाय।" उसे सुन कर श्री नन्द बाबा ने पूछा कि "वह वृन्दावन कितनी दूरी पर और कैसा है?" इस पर श्री सन्नन्द ने उत्तर देते हुए कहा, कि—

> "प्रागुदीच्या वर्हिर्षदो-दक्षिणस्या यदो' पुरात्।
> पश्चिमाया शोणितपुरान्माथुर मण्डल विदुः॥
> विंशद्योजनविस्तीर्णं, सार्धयद्योजनेन वै।
> माथुर मण्डल दिव्य, व्रजमाहुर्मनीषिणः॥"[3] —ग० सं० खड २

इस मथुरा-मण्डल 'व्रज' को श्री कृष्ण ने अपना साक्षात् निवास-स्थान, एव तीनो लोको (भू, भुव, स्व) से उत्कृष्ट और प्रलय काल मे भी अविनाशी कहा है। तथाहि—

> "मथुरामण्डल साक्षान्मन्दिर मे परात्परम्।
> लोकत्रयात्पर दिव्य, प्रलयेऽपि न सहृतम्॥"
> —ग० स० २, ख० १, अ० ४२

'व्रज' की महिमा का वर्णन करते हुए गर्ग-सहिता मे लिखा है, कि—

> "धन्यो व्रजो धन्य मरण्यमेतद् यत्रैव साक्षात्प्रकटः परोहिसः।"
> —ग० स० ख० ४, ५

'व्रज' 'मथुरा-मण्डल', के स्वरूप और माहात्म्य के विषय मे श्री नारद पुराण में लिखा है, कि—

> "विंशतिर्योजनाना तु, माथुर परिमण्डलम्।
> यत्रकुत्राप्लुतस्तत्र, विष्णुभक्ति भवाप्नुयात्॥"
> —ना० पु० उत्तर ख० ५६, अ० २००

---

१ जहाँ पर वृन्दावन, यमुना नदी और गोवर्द्धन पर्वत नहीं वहां मेरे मन को सुख नहीं।

२ ८४।

३. वर्हिपद् (बरहद) से पूर्वोत्तर, यदुपुर (शूरसेन के ग्राम) से दक्षिण और शोणितपुर (सोनहद) से पश्चिम में चौरासी कोस भूमि को विद्वज्जन 'माथुर मण्डल' और 'व्रज' कहते हैं।

श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) तो 'व्रज-महिमा' से पर्याप्त भरा पड़ा है। उसमें कही साक्षात्, कही व्रज-वासियो की प्रशसा द्वारा और कही वहाँ की लता-पताकाओ की सराहना से स्थान-स्थान पर व्रज की महिमा का वर्णन देखने मे आता है। उदाहरणार्थ श्री कृष्ण और वलराम ने चाणूर और मुष्टिक को मार दिया है। उस समय व्रज-ललना परस्पर कह रही है, कि—

"धन्या वत व्रजभुवोयदयं नृलिङ्ग,
गूढ' पुराण पुरुषो वनचित्रमाल्य।
गाः पालयन् सहवल' क्वणयश्च वेणु,
विक्रीड्यार्चति गिरित्ररमार्यिताऽङ्घ्रि' ॥"[1]

—भा० द० स्क० पूर्वार्द्ध ४४, अध्याय १३

इन व्रज-वालाओ की चरण-धूलि की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ, जिनकी कि गायी गयी हरि-कथा का गान तीनो लोको को पवित्र करता है। व्रज-लता पताओं से प्रभावित उद्धव द्वारा भी व्रज की महिमा का वर्णन इस उक्ति मे देखिये—

"आसामहो चरण रेणु जुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यज स्वजनमार्य-पथ च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥"[2]

—भा० पु० १०।४७।६२

इसी प्रकार व्रज वसुन्धरा के प्रत्येक स्थल का महत्त्व शास्त्रो मे भरा पडा है।

---

१ अहो सखी व्रजभूमि बडी धन्य है, जिनमें पुराण पुरुष, श्री शकर और श्री लक्ष्मी द्वारा पूजित चरण-कमल वाले श्री भगवान् मानव देह से आच्छन्न होकर वन की विचित्र फूल-मालाओं को धारण किये श्री वल्देव जी के साथ गाय चराते और वशी वजाते हुए क्रीडा करते विचरते रहते हैं।

२. इन व्रजागनाओं की चरण-धूलि का सेवन करने वाली लता-पताओं में मैं भी कोई वन जाऊँ तो अच्छा हो।

द्वितीय खंड

ब्रज-यात्रा

श्री गोवर्धननाथ जी

ब्रज-यात्रा का उदय और विकास

सेठ गोविन्ददास, ससद-सदस्य, जबलपुर

ब्रज-यात्रा की महत्ता—भारतवर्ष मे तीर्थाटन की परम्परा बड़ी प्राचीन है और तीर्थ-यात्रा की इस भावना ने ही प्राचीन युग मे जब कि आवागमन के साधनो का नितान्त अभाव था, इस देश को सास्कृतिक एकता के सूत्र मे सँजोये रखने में बड़ा योग दिया था। चार धामो, और सप्त-महापुरियो की भावना, देश की इसी सास्कृतिक एकता की धुरी थी। इसी प्रकार देश के दूरस्थ भागो से ब्रज के वन-उपवनो और श्री कृष्ण-लीला स्थलो की यात्रा भी इसी सास्कृतिक एकता की एक प्रतीक है, जिसने समस्त श्री कृष्ण-भक्त वैष्णव समाज को विभिन्न भाषा-भाषी होते हुए भी और उन मे रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार और खान-पान का विभेद होने पर भी, उन्हे "ब्रज-भक्ति" के सास्कृतिक सूत्र मे बाँध दिया। इस दृष्टि से ब्रज-यात्रा का महत्त्व बहुत अधिक है।

यद्यपि इस देश मे प्रति वर्ष सहस्रो धार्मिक यात्राय होती हैं, परन्तु ब्रज-यात्रा इन सब यात्राओ मे अभूतपूर्व है, क्योकि सम्भवत यही एक मात्र ऐसी यात्रा है जहाँ प्रति वर्ष हजारो यात्री देश के अनेक भागो से एक निश्चित तिथि को एक साथ यात्रा आरम्भ करते है तथा ४० से ५० दिन तक एक दूसरे के निकट सम्पर्क मे रहते हुए उसे एक ही तिथि को समाप्त करते हैं। सह-अस्तित्व भ्रातृ-भाव और सास्कृतिक-सहयोग की यह परम्परा सचमुच अनूठी है। साथ ही ब्रज-यात्रा की यह परम्परा है भी बहुत प्राचीन।

प्रकृति-पूजा की प्रतीक ब्रज-यात्रा—यदि हम अपने प्राचीन वाङ्मय के आधार पर ब्रज-यात्रा की परम्परा पर विचार करें तो इस यात्रा के स्वरूप के विश्लेषण से यह सहज ही कहा जा सकता है कि ब्रज-यात्रा की मूल भावना मे वैदिक प्रकृति-पूजा के ही तत्त्व विद्यमान हैं और आर्यों द्वारा मूर्त्ति-पूजा को पूरी तरह ग्रहण किये जाने से पूर्व ही ब्रज-यात्रा की भावना विकसित हो गई थी। ब्रज-यात्रा मे वास्तव मे ब्रज के वन-उपवन, नदी, पर्वत, सरोवर, तड़ाग और यहाँ तक कि ब्रज की रज[1] भी वन्दनीय है जो वैदिक प्रकृति-पूजा का ही भक्ति-परक प्रतिरूप है। जहाँ-जहाँ भगवान् श्याम सुन्दर के चरणारविन्द पड़े और जिन वस्तुओ से भगवान् का सस्पर्श

---

१. मुक्ति कहै गोविन्द ते मेरी, मुक्ति बताय।
ब्रज रज उड़ मस्तक परे, मुक्ति मुक्त है जाय॥

हुआ वही वस्तु व्रज-यात्री के लिए परम पावन बन गई। सम्भवत· इसीलिए वल्लभ-सम्प्रदाय मे आज भी व्रज-यात्रा को 'वन-यात्रा' कहा जाता है। स्वय आचार्य वल्लभ ने भी व्रज के १२ वनो की ही यात्रा की थी[1] और गौराग महाप्रभु तो वृन्दावन के लता-गुल्मों से लिपट-लिपट कर उनका आलिगन करते-करते समस्त सुधि-बुधि ही भूल गये थे।[2] अपने 'व्रज-भक्ति विलास ग्रन्थ' में श्री नारायण भट्ट जी ने भी व्रज की प्रकृति का ही वर्णन अधिक विस्तार से किया है। उन्होने यहाँ के वन-उपवन और पर्वतो का देवताओ जैसी श्रद्धा से वर्णन किया है और व्रज के सरोवरो तक में स्नान व आचमन करने से पूर्व उनको नमस्कार करने तक के मन्त्र लिखे हैं। उदाहरण के लिए वृषभान कुण्ड (भानोखर) का प्रणाम मन्त्र इस प्रकार है—

"निर्धूतकिल्विषायैव गोपराज्कृताय ते।
वृषभानु महाराजकृताय सरसे नमः॥"[3] —व्रज-भक्ति-विलास

इन विवरणो से स्पष्ट है कि भगवान् श्री कृष्ण की लीला-भूमि व्रज की प्राकृतिक सुषमा ने इसे मूर्त्ति-पूजा के विकास से पूर्व ही वन्दनीय बना दिया था। बाद मे इन स्थलो पर मन्दिरो के निर्माण और मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा ने उनकी और भी श्री-वृद्धि की होगी। परन्तु वैसे व्रज-यात्रा मे प्रकृति-पूजा की भावना ही सर्वोपरि है।

व्रज-यात्रा का प्रारम्भ—स्वय सोलह-कला पूर्ण परब्रह्म श्री कृष्ण की बाल-लीलायें भी व्रज की इसी प्रकृति की गोद मे हुई थी और यहीं उनकी कलाओ का विकास हुआ था, सम्भवत इसीलिए स्वय भगवान् व्रजराज को भी यह भूमि अत्यन्त प्रिय थी। हम भगवान् गोपाल कृष्ण की गोवर्द्धन-पूजा को भी प्रकृति-पूजा ही मानते है, जो व्रजभूमि के वन, पर्वतो को देव-तुल्य महत्त्व प्रदान करने की ओर भगवान् का स्वय का एक प्रयत्न था। ऐसी दशा मे भगवान् श्री कृष्ण ने जिस दिन गिरिराज गोवर्धन को समस्त व्रजवासियो के समक्ष देवत्व प्रदान कर उसे पूजा सम्भवत उसी दिन से व्रज मे यहाँ के प्राकृतिक स्थलो की पूजा की भावना का बीज-

---

१. "महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने अपनी परिक्रमा में व्रज के बारह वनों को ही प्रधानता दी। आपकी परिक्रमा सात दिन को होती थी। आप प्रति दिन १२ कोस की यात्रा करते थे।"
—"वल्लभीय सुधा" 'श्री व्रज-परिक्रमा अक' का आमुख, ले० श्री द्वारिकादास परीख

२ "थावर जगम विपिन के प्रभुजू कों लखि जोइ।
देखि बन्धु-गण बन्धु कों ज्यों आनन्दित होय॥
आलिंगन प्रभुजू करें प्रति तरु-लता सुजान।
करैं समर्पण कृष्ण कों सुमनादिक कर ध्यान॥

और आगे—
"वृन्दावन मधि भौ जिनो प्रभु कें प्रेम विकार।
कोटि ग्रन्थ करि सेष जी लिखें जु तिहि विस्तार॥"
श्री चैतन्यचरितामृत का कवि सुबल श्याम-कृत व्रजभाषानुवाद, पृष्ठ १५३-१५४

३. हे कल्मष को धोने वाले! हे गोपराज वृषभानु द्वारा निर्मित, हे भानु-सरोवर आपको नमस्कार है।

वपन हो गया, जिसका विकसित रूप ब्रज-यात्रा कही जानी चाहिए। ब्रज-यात्रा के प्रेरक के रूप मे हम भगवान् कृष्ण को ही इस यात्रा का सूत्रधार कह सकते हैं।

श्रीमद्भागवत मे 'ब्रह्मा-व्यामोह' के प्रसग मे, एक कथा है, जिसके अनुसार भगवान् कृष्ण को गोप-कुमारो की भूँठी छाक खाते देखकर ब्रह्मा को मोह हो गया और वे भगवान् कृष्ण व उनके सखाओ, गौ-वत्स और गायो का हरण करके ले गये, परन्तु भगवान् कृष्ण द्वारा गौ-वत्सो की नई सृष्टि रच दी जाने पर ब्रह्मा को अपनी भूल ज्ञात हुई और उन्होने पश्चात्ताप किया। जब ब्रह्मा मोह से निवृत्त होकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए तो भगवान् ने ब्रह्मा को क्षमा कर दिया। किन्तु इसी कथा मे महाकवि सूर और 'प्रेम-सागर' के रचयिता लल्लू जी लाल का कहना है कि ब्रह्मा को ब्रज-यात्रा करने का आदेश भगवान् ने दिया था।[1] इस कथन का मूलाधार क्या है यह नही कहा जा सकता परन्तु यदि यह सत्य है तो भगवान् गोपाल कृष्ण के बाल्य-काल मे ही ब्रज-यात्रा की यह परम्परा स्वय उन्हीं के द्वारा स्थापित की गई मानी जानी चाहिए और सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा जी इस कथन के अनुसार ब्रज के प्रथम यात्री हुए।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि क्योकि ब्रह्मा द्वारा ब्रज-यात्रा की ही गई, इसका कोई ब्यौरा नही मिलता, अत यह नही कहा जा सकता कि उन्होने ब्रज-यात्रा की ही थी ? परन्तु यदि ब्रह्मा जी ने ब्रज-यात्रा न भी की हो तो भी ब्रज-यात्रा भगवान् श्री कृष्ण के समय मे ही आरम्भ हो गई थी। पुराणो मे भगवान् श्री कृष्ण के सखा उद्धव की ब्रज-यात्रा का भी वर्णन हुआ है, और भगवान् श्री कृष्ण की लीलाओ के एक महत्त्वपूर्ण पात्र देवर्षि नारद जी की ब्रज-यात्रा के विवरण भी पुराणों मे उपलब्ध है, जिन का उल्लेख आगामी अध्याय मे किया जा रहा है। ब्रज मे कई स्थलो पर विद्यमान नारद जी के मन्दिर तथा उद्धव जी के कुण्ड और मूर्त्तियाँ भी यही प्रमाणित करते हैं कि इन देव कोटि और मनुष्य कोटि के प्राणियो ने ब्रज-यात्रा की थी। बाद मे द्वारका में यदु-वश के नष्ट हो जाने पर श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने भी मथुरा लौटकर यहाँ पुन यदुवशी-राज्य की स्थापना की व अपने प्रपितामह भगवान् श्री कृष्ण के लीला-स्थलो की यात्रा भी की और वहाँ मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। इस यात्रा का विवरण भी आगामी अध्याय मे दिया जा रहा है।

ब्रज-यात्रा का काल-निर्णय—इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रज-यात्रा श्री कृष्णावतार काल मे ही प्रारम्भ हो गई थी। जैसी कि जन साधारण की धारणा है, भगवान् श्री कृष्ण अब से ५,००० वर्ष पूर्व इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। यदि इस मत को माना जाय तो ब्रज-यात्रा की परम्परा भी अब से ५,००० वर्ष प्राचीन मानी जानी चाहिए, परन्तु अधिकाश इतिहासवेत्ता भगवान् कृष्ण का काल अब से लगभग ३,५०० वर्ष पूर्व मानते हैं। यदि यही मत माना जाता है तो भी ब्रज-यात्रा

---

१ "श्री मुख वाणी कहत, विलँब, अब नेंक न लावहु।
ब्रज-परिक्रमा करहु, देह कौ पाप नसावहु॥"—सूरदास कृत, बाल-वत्स हरण-लीला

की परम्परा ३५०० वर्ष-पुरानी कही जा सकती है।[1]

सामूहिक ब्रज-यात्रा—परन्तु ऊपर ब्रज-यात्रा की जिस परम्परा का उल्लेख किया गया है, वे यात्रायें व्यक्तिगत ब्रज-यात्रायें ही थी। महाप्रभु वल्लभाचार्य और गौराग महाप्रभु की ब्रज-यात्रा भी इसी कोटि मे आती है, किन्तु इसके बाद गुसाई विट्ठल नाथ जी और नारायण भट्ट जी जैसे आचार्यो द्वारा सोलहवी शताब्दी मे ब्रज-यात्रा की इस परम्परा को सामूहिक रूप प्रदान किया गया।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब ब्रज मे भक्ति का केन्द्र आचार्य वल्लभ और महाप्रभु चैतन्य देव के समय ही स्थापित हो गया तो फिर सामूहिक ब्रज-यात्रा उनके समय मे ही क्यो आरम्भ नही हो सकी ? इसके कारण निम्न हैं—

जैसा सभी जानते हैं बौद्ध धर्म के व्यापक प्रचार तथा यवन आक्रान्ताओं द्वारा ब्रज पर हुए अनेक आक्रमणो के कारण वहाँ की समस्त श्री उस समय क्षत-विक्षत थी और भगवान् श्री कृष्ण के समस्त लीला-स्थल अप्रगट हो गये थे। यहाँ तक कि ब्रज के बारह वनो की दशा भी बड़ी सोचनीय थी। ऐसी दशा मे मार्ग-हीन इस वन-पथ मे सामूहिक ब्रज-यात्रा सम्भव ही न थी और न उस समय किन स्थलो की यात्रा की जाय यही निश्चित था। स्वय वल्लभाचार्य जी ने जब ब्रज के वनों की परिक्रमा की थी, तब ये वन थापाथूहर (नागफनी) के काँटो से आच्छादित थे जिन को आचार्य जी ने अपने सेवको से कटवाया था।[2] वल्लभाचार्य जी ने ही वर्त्तमान गोकुल का स्थल निर्धारित करके उसे बसाया था और मथुरा के विश्रान्त-घाट से श्मशान को हटवा कर वहाँ वस्ती बसवाई थी। उधर महाप्रभु चैतन्य के पार्षद रूप सनातनादि गोस्वामियों ने वृन्दावन की, जो उस समय हिंस्र-पशुओ से युक्त था पुनर्स्थापना की।[3] इसके बाद जब सवत् १६०२ मे श्री नारायण भट्ट जी के ब्रज पधारने पर ब्रज के अनेक लीला-स्थलो का पुनर्स्थापन हुआ। 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी के कथन से इस अनुश्रुति की सपुष्टि होती है कि भट्ट जी के पास श्री लाडलेय जी का एक देव-विग्रह था, जिसे साथ लिये वे ब्रज-भ्रमण करते थे और वह श्री विग्रह उन्हे स्वय बोल कर प्रत्येक स्थल का परिचय देता था जिन्हें भट्ट जी प्रगट करते थे।[4] वाराह पुराण के अनुसार भट्ट जी ने भगवान् कृष्ण के

---

१ इतिहासकारों के मत से पाण्डवों के पौत्र राजा परीक्षित का काल ई० पू० १४३० है। इस प्रकार सन् १९५९ में १४३० जोड़ देने से परीक्षित का काल ३,३८९ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है और भगवान् कृष्ण का काल लगभग ३,५०० वर्ष पूर्व माना जा सकता है।

२ देखिये "वल्लभीय सुधा" श्री ब्रज-परिक्रमा-अक का आमुख, वि० स० २०१३।

३ "The best named community (Bengali or Gouriyas Vaishnavas) has had a more marked influence on Bindraban than any of the others since it was Chaitanya the founder of the sect, whose immediate disceples were its temple builders"

—ग्राउस-कृत "मथुरा मेमोयर" पृष्ठ १८३।

४. "बोलि के बतामें यहाँ अमुक स्वरूप है जू, लीला कुण्ड धाम स्याम प्रगट दिखाये हैं।"

—प्रियादास

गुप्त स्थलो को प्रगट किया, ऐसा नाभादास जी का कथन है—

"गोपस्थल मथुरा-मण्डल, जिते वाराह वखाने।
किये नारायण प्रगट, सकल पृथ्वी ने जाने॥"

यही नही, भट्ट जी ने अकबरी दरबार के अर्थ-मन्त्री राजा टोडरमल की सहायता से ब्रज मे स्थान-स्थान पर रास-मण्डल भी बनवाये[1] और ब्रज की पुनर्स्थापना का यह काम भट्ट जी ने सवत् १६०९ से पूर्व ही पूर्ण कर दिया था, क्योकि सवत् १६०९ मे वे अपना ग्रथ 'ब्रज-भक्ति-विलास' समाप्त कर चुके थे, जिसमे सम्पूर्ण ब्रज-मण्डल का विस्तृत परिचय उपलब्ध है। इस प्रकार संवत् १६०० वि० के आस-पास सामूहिक ब्रज-यात्रा की पृष्ठ-भूमि तैयार हुई और उसमे भट्ट जी का बडा योग रहा। इसीलिए श्री ग्राउस महोदय ने अपने 'मथुरा मेमोयर' मे श्री नारायण भट्ट जी को वन-यात्रा (ब्रज-यात्रा) का सस्थापक कहा है।[2]

गुसाई विट्ठल नाथ जी और सामूहिक ब्रज-यात्रा—यहाँ यह विवेचन करना हमे अभीष्ट नही कि गुसाई विट्ठल नाथ जी ने पहले सामूहिक ब्रज-यात्रा की या भट्ट जी ने, क्योकि ये दोनो ही महापुरुष समान उद्देश्य से प्रेरित थे। हम उक्त दोनों महापुरुषो को ही इस सामूहिक ब्रज-यात्रा के प्रणेता मानते हैं और यह कहना चाहते है कि ब्रज-यात्रा की यह परम्परा सवत् १६२४ तक बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर गई थी। क्योकि गुसाई विट्ठल नाथ जी की उक्त सवत् मे की गई ब्रज-यात्रा का विस्तृत विवरण साहित्य मे उपलब्ध है। कवि जगतनन्द[3] ने बडे विस्तार से गुसाई जी की इस यात्रा का वर्णन किया है, जिससे प्रगट होता है कि ये कवि भी गुसाई जी के साथ इस यात्रा मे उपस्थित थे, अन्यथा वह प्रत्येक दिन की यात्रा का ऐसा ब्यौरा उपस्थित नही कर सकते थे। अस्तु।

इस प्रकार सवत् १६०० के आस-पास ब्रज मे यह सामूहिक यात्रा की परम्परा आरम्भ हुई और ब्रज-यात्रा के नियम भी निर्धारित किये गये। नारायण भट्ट जी ने ब्रज-यात्रा की जो विधि 'ब्रज-भक्ति-विलास' मे लिखी है लगभग उन्ही सब नियमो के अनुसार आज भी सभी सम्प्रदाय ब्रज-यात्रा करते हैं।

ब्रज-यात्रा के नियम—भगवान् कृष्ण की लीलाओ को ध्यान मे रखते हुए वन-यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। प्रदक्षिणा के मार्ग मे स्थित वृक्ष, लता, गुल्म, गौ,

---

१ "ठौर-ठौर रास के विलास लै प्रगट किये, जिये यों भगत-जन कोटि सुख पाये हैं।"
—भक्तमाल

२ "It was disciple Narain Bhatt, who first established the Banjatra"
—'मथुरा मेमोयर', पृष्ठ ८६

३ कवि जगतनद सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए देखिये 'ब्रज-भारती' के वर्ष १६, अक १ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख पृष्ठ ३१, तथा 'ब्रजभारती' के वर्ष १५, अक ४ में श्री रतनलाल गोस्वामी का लेख, और विद्या-विभाग, काकरौली से प्रकाशित ग्रन्थ 'जगतानद'।

ब्राह्मण, मूर्ति, पाषाण, तीर्थ तथा भगवत्-स्थलो का परित्याग नहीं करना चाहिए और यथा विधि सबकी पूजा और सम्मान करना चाहिएँ। साथ ही कूर्म पुराण मे कही गई मर्यादा के अनुसार रात का पहना हुआ वस्त्र धारण करके यात्रा करना वर्जित है। यात्रा मे धुले हुए स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिएँ और ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। रात्रि के समय ब्रज-यात्रा करना वर्जित है। यात्रा शौचादि कर्मों से निवृत्त होकर ही आरम्भ की जानी चाहिए। यात्रा मे पग धीरे-धीरे व सम्हाल कर रखना चाहिए जिससे जीव-हिंसा न हो। जूठे जल, भोजन तथा तेल का स्पर्श यात्रा मे वर्जित है। यात्रा-काल मे रोग-ग्रसित हो जाने पर, स्त्री के रजस्वला हो जाने पर या सूतकादि के समय यात्रा नही करनी चाहिए। यदि ऐसा अवसर आ जाय तो उस समय यात्री यात्रा-मार्ग मे ही निवास करे और उससे निवृत्त हो जाने पर आगे की यात्रा आरम्भ करे।

यात्रा मे यात्री को अल्पाहार और रात्रि को व्रत रखना चाहिए। यात्रा मे यव, चावल व धान का दान मुख्य है। मत्र-पाठ करते हुए, हाथ-पाँव धोकर दान करना चाहिए। यात्रा के नियमो मे यह भी कहा गया है कि वन-यात्री को शरीर को अधिक कष्ट न देकर ही प्रदक्षिणा करनी चाहिए, क्योकि शरीर का दु खी होना आत्म-घाती होता है और यात्रा भी सामान्य फल देती है तथा भगवान् भी क्रोधित होकर शाप देते है।[1]

इस प्रकार ब्रज-यात्रा की इस प्राचीन परम्परा को भक्ति-युग मे विकसित होने का अवसर मिला, और यह ब्रज-यात्रा तब से आज तक प्रति वर्ष गो० पुरुषोत्तम जी तथा गो० गोपाल लाल जी द्वारा किये गये किंचित् सामयिक परिवर्त्तनो के साथ होती चली आ रही है, जिसका विशेष परिचय आगे दिया जा रहा है। हाँ, औरगजेब जैसे शासको के काल मे कुछ समय तक यात्रा के इस सामूहिक क्रम मे अवश्य विक्षेप हुआ था, जिसको बिना कोई महत्त्व दिये हम यहाँ तो केवल यही कहना चाहते हैं कि ब्रज-यात्रा की यह परम्परा बहुत ही प्राचीन है और श्री कृष्ण-भक्ति के क्षेत्र और ब्रज के लोक-जीवन मे इसका महत्त्व अक्षुण्ण है।

---

१ नैव दत्वा शरीरस्य कष्ट शक्तचनुमारत ।
कष्ट दत्वा शरीरस्य ह्यात्मघात फल लभेत ॥
क्रुद्धो हरिर्ददौ शाप फल सामान्यमाप्नुयात् ॥ —'ब्रज-भक्ति-विलास'

ब्रज-यात्रा की परम्परा

श्री चुन्नीलाल शेष, मथुरा

ब्रज-यात्रा की परम्परा पर विचार करने के लिए हमारे पुराण ग्रंथ ही एक मात्र महत्त्व पूर्ण साधन हैं। अत यहाँ हम प्राचीन पुराणों के आधार पर ब्रज-यात्रा की परम्परा पर विचार करना चाहते हैं। इस प्रकार उपलब्ध विवरणो के आधार पर हम पहले भगवान् श्री कृष्ण के सखा उद्धव जी की ब्रज-यात्रा का वर्णन करेंगे जो भगवान् के मथुरा आ जाने के उपरान्त, उन्हीं की प्रेरणा से ब्रज गये थे और वहाँ उन्होने कुछ मास रह कर ब्रज-भ्रमण किया था।

उद्धव जी की प्रथम ब्रज-यात्रा—श्रीमद्भागवत् अध्याय ४६ मे लिखा है कि एक दिन शरणागतो का दु ख हरने वाले भगवान् श्री कृष्ण ने एक बार अपने प्यारे तथा एकान्त भक्त उद्धव जी का हाथ से हाथ पकड़ कर कहा[१] कि हे सौम्य उद्धव आप ब्रज जाकर ऐसा उपाय करो जिससे हमारे माता-पिता प्रसन्न हो और गोपियो को मेरे वियोग का जो सताप हो रहा है उसे भी मेरा सदेश देकर दूर करो।[२] ये सुन कर वे तत्काल ही यदुराज कृष्ण का सदेश शिरोधार्य कर, रथ पर सवार हो नन्द-राय जी के गोकुल को चल दिये।[३] उद्धव जी मार्ग की शोभा देखते हुए जब सन्ध्या-समय गोकुल पहुँचे तो कृष्ण के प्रिय तथा अनुगामी उद्धव जी को आता देखकर उन्ही को कृष्ण समझ नन्द जी ने पूजा की। श्री नन्द जी कृष्ण की लीलाओ का वर्णन कर उनका स्मरण कर अत्यन्त उत्कठा के मारे प्रेम के आवेग मे व्याकुल होकर मौन हो गये। इस प्रकार के वर्णन को सुनकर श्री यशोदा जी की आँखों से आँसू बहने लगे और स्नेह से उनके स्तनो से दूध टपकने लगा।[४]

---

१. "तमाह भगवान् प्रेष्ठ भक्त मेकान्तिन क्वचित।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरि ॥२॥"

२ "गच्छोद्धव व्रज सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतमावह।
गोपीना मद्वियोगाधि ममसदेशैर्विमोचय ॥३॥"

३ "इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेश भर्तुराहत।
आदायरथमारुह्य प्रययौ नदगोकुलम् ॥७॥
प्राप्तो नदव्रज श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ।
छन्नयान प्रविशता पशूनां खुररेणुभि ॥८॥"

यहाँ मे आगे व्रज के सौन्दर्य का वर्णन है—

४ "यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानिं च।
श्र ण्वन्त्यश्र ण्यवास्त्राक्षीद् स्नेहस्नुत पयोधरा॥"

रात्रि भर नन्द-गृह मे उद्धव जी ने निवास किया और प्रात काल वह गोपियो से मिले। इस स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म रीति से 'भ्रमर-गीत' का वर्णन है। किन्तु अन्त मे भगवान् के सदेश से उनका विरह ताप दूर हो जाता है, तथा कृष्ण को परमात्मा समझ कर तथा अपनी आत्मा मानकर गोपी उद्धव जी की पूजा करती है।

उद्धव जी गोपियो का ताप मिटाने के लिए भगवान् की लीलाओ का वर्णन करते हुए कुछ मास गोकुल मे रहे।[1] वे हरि-भक्त उद्धव जी, नदी, वन, पर्वत की गुफाओ और फूले हुए वृक्षो को देख कर उनके विषय मे पूछ-ताछ करके भगवान् का स्मरण करते हुए ब्रजवासियो को आनन्द देते रहे।[2] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उद्धव जी ने ब्रज मे रहकर भ्रमण किया था, वहाँ के सब स्थलो को देख कर वे उनसे बहुत प्रभावित हुए थे और अन्त मे वे यह कहने को विवश हुए थे, कि—

"वन्दे नदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥" (४७, ६४)

"जिनका श्री भगवान् की कथाओ सम्बन्धी गायन त्रिलोक-को पवित्र करता है, उन नन्दराय जी के ब्रज की स्त्रियो की चरणो की रज की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।"

ऐसी है यह उद्धव जी की ब्रज-यात्रा जिसको बिन्दु-रूप से लेकर पुराणो तथा हिन्दी के भक्त-कवियो ने विशद् विवेचना की है।

उद्धव जी की द्वितीय ब्रज-यात्रा—श्रीमद्भागवतकार के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण ने जब अपनी द्वारका-लीला का सवरण किया तो उद्धव जी को बद्रिकाश्रम मे तप करने की आज्ञा दी थी, परन्तु स्कन्द पुराण (श्रीमद्भागवत खण्ड) मे वज्रनाभ जी की गोवर्द्धन मे उद्धव जी से भेंट का उल्लेख उपलब्ध है। गोवर्द्धन मे वज्रनाभ-ने उद्धव जी से श्रीमद्भागवत की कथा सुनी थी। इस विवरण से प्रतीत होता है कि बद्रिकाश्रम जाकर भी उद्धव अपने सुहृद भगवान् श्री कृष्ण की बाल-लीला भूमि ब्रज को नही भूल सके। वे उससे अपना निकट सम्पर्क बनाये रहे और स्वय यहाँ आये। यदि उद्धव जी बद्रिकाश्रम मे ही स्थायी रूप से रह गये होते तो उनका राजा वज्रनाभ को गोवर्द्धन मे कथा सुनाना सम्भव न था।

देवर्षि नारद की ब्रज-यात्रा

उद्धव जी के अतिरिक्त ब्रज के दूसरे यात्री के रूप मे हम देवर्षि नारद का उल्लेख कर सकते है। नारद जी का यात्रा-काल भी पुराणो के अनुसार उद्धव जी की प्रथम ब्रज-यात्रा काल के आस-पास ही माना जा सकता है। नारद जी की ब्रज-यात्रा का यह प्रसग पद्म पुराण और वृहद् नारदीय पुराण मे उपलब्ध है।

---

१ उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुच ।
कृष्ण-लीला कथा गायन् रमयामास गोकुलम् ॥४७, ५५॥

२. सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ।
कृष्ण संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥४७, ५७॥

पद्म पुराण (पाताल खण्ड) मे लिखा है कि जब नारद ने सुना कि भगवान् श्री कृष्ण अपने परिवार सहित व्रज मे अवतार लेकर लीला विस्तार कर रहे है तो उनकी सहचरी, रास रसिकेश्वरी राधा के दर्शन करने वे व्रज मे पधारे। नारद घर-घर उस समय उत्पन्न होने वाली समस्त वालिकाओ के लक्षण देखते हुए व्रज में भ्रमण करने लगे परन्तु उसमे कोई भी वालिका ऐसी न मिली जिसके लक्षण रास-रसिकेश्वरी से मिल सकें। अन्त में वह वृषभानु घोष के घर पधारे। वहाँ वृषभानु ने नारद जी को कितने ही वालको का हाथ देखते हुए देख कर अपने पुत्र का भी हाथ दिखाया। नारद जी ने उसका हाथ देख कर वताया कि यह कृष्ण का सखा होगा। इस वात से कुछ प्रोत्साहित होकर उन्होंने अपनी मूक और वधिर लड़की को देखने की प्रार्थना की। नारद ने जाकर अन्दर देखा कि एक परम ज्योतिर्मयी कन्या पृथ्वी पर पड़ी हुई है। उसको देखते ही नारद जी पहचान गये कि यही कृष्णार्द्धांगिनी श्री राधा हैं। उन्होंने सवको वाहर जाने की आज्ञा दी और एकान्त पाकर उनकी प्रार्थना करने लगे। श्री राधा ने प्रसन्न होकर उन्हे किशोरावस्था मे दर्शन देते हुए उनसे वर माँगने का आदेश दिया। नारद जी ने उनसे रास दिखाने की प्रार्थना की। श्री राधा ने उनको रात्रि के समय कुसुम सरोवर पर पहुँचने की आज्ञा दी। नारद वहाँ पहुँच कर एक अशोक वृक्ष के सहारे खडे हो गये। जव रास का समय हुआ तव प्रिया प्रीतम रास-स्थल पर पधारे तो जितने भी लता-गुल्म आदि थे सभी नारी रूप में परिवर्तित हो गये और नारद जी ने देखा कि जिस अशोक वृक्ष के नीचे वे खडे थे वह अशोक मजरी नाम की सखी वन गया। नारद जी ने वहाँ रास देख कर अपने को धन्य माना।

नारद जी की एक अन्य यात्रा का उल्लेख 'वृहद् नारदीय पुराण' मे मिलता है जो 'पद्म पुराण' से भिन्न है। इसमे नारद जी की जिस व्रज-यात्रा का उल्लेख है, उससे उस समय के व्रज के वन और उपवनो पर प्रकाश पड़ता है।[1] आगे इसी

---

१ आद्य मधुवन नाम स्नातो यत्र नरोत्तम।
सतर्प्य देवर्षि पितृन्विष्णुलोके महीयते ॥६॥
अथ तालह्वय देवी द्वितीय वनमुत्तमम्।
यत्र स्नातो नरो भक्तया कृतकृत्य प्रजायते ॥७॥
कुमुदारण्य तृतीय तु यत्र स्नात्वा सुलोचने।
लभते वाञ्छितान्कामानिहामुत्र च मोदते ॥८॥
तत काम्यवनं नाम चतुर्थं परिकीर्तितम्।
वहु तीर्थान्वित यत्र गत्वा स्याद्विष्णुलोक भाक् ॥६॥
यत्तम विमलकुण्ड सर्वं तीर्थोत्तमोत्तयम्।
तत्र स्नातो नरो भद्रे लभते वैष्णव पदम् ॥१०॥
पचम बहुलाख्य तु वन पापविनाशनम्।
यत्र स्नातस्तु मनुज सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥११॥
अस्ति भद्रवन नाम षष्ठ स्नातोऽत्र मानव।
कृष्णदेवप्रसादेन सर्वभद्राणि पश्यति ॥१२॥

पुराण के अध्याय ८० मे लिखा है कि एक वार नारद जी यात्रा करते हुएँ वृन्दावन मे कुसुम सरोवर पर पधारे जो मथुरा के उत्तर-पश्चिम मे है। यहाँ अष्ट-सखियो के कुण्ड के पास गोवर्द्धन पर्वत है।[1] यह वृदा की तपोभूमि, गोवर्धन से नन्दगाँव तक मथुरा के किनारे-किनारे स्थित है। यहाँ भगवान् मध्याह्न के समय सखियो सहित विश्राम करते है। यहाँ कुसुम सरोवर का आचमन कर सध्यादि से निवृत्त होकर नारद जी ने गोपी और गोपो को जाते हुए देखा और जव दिन आधा प्रहर शेष रह गया तो उन्होंने 'अद्रुम-आश्रम' (नारद कुण्ड) मे प्रवेश किया जहाँ उस आश्रम मे रहने वाली वृन्दा देवी आगत भगवद्-भक्तो का फलो से स्वागत करती थीं। नारद जी उस तपस्विनी को प्रणाम कर पृथ्वी पर वैठ गये।[2] वृन्दा ने ध्यान योग से उठकर उन्हे आसन दिया, तव नारद ने कृष्ण-रहस्य जानने की इच्छा की।[3] वृन्दा ने उनका अभीष्ट जानकर अपनी सखी माधवी को ध्यान-योग से बुलाया तथा नारद की इच्छा-पूर्ति करने का आदेश दिया। माधवी ने उन्हें वन्दासर मे

खादिर तु वन देवि सप्तम यत्र मानव ।
स्नान मात्रेण लभते तद्विष्णो परम पदम् ॥१३॥
महावन चाष्टम तु सदैव हरिवल्लभम् ।
तदृष्ट्वा मनुजो भक्तया शक्रलोके महीयते ॥१४॥
लोहजघ तु नवम वन यत्राप्लुतो नर ।
महाविष्णु प्रसादेन भुक्ति मुक्ति च विंदति ॥१५॥
विल्वारण्य तु दशम यत्र स्नात सु मध्यमे ।
शैव व वैष्णव वापि याति लोक निजेच्छया ॥१६॥
एकादश तु भाडीर योगिनामतिवल्लभम् ।
यत्र स्नातुस्तु नरो भक्तया सर्वपापैर्विमुच्यते ॥१७॥
वृन्दावन द्वादशं तु सर्वपापनिकृतनम् ।
यत्सम न धरा पृष्ठे वन मस्त्यपर सति ॥१८॥

—उत्तर खण्ड, ७६वाँ अध्याय, मथुरा महात्म्य

१. एकदा नारदो लोकान्पर्यटभगवत्प्रिय ॥५॥
या वृंदारण्य समासाद्य तस्थौ पुष्प सर तटे ।
पश्चिमोत्तर तो देवि माथुरे मडने स्थितम् ॥६॥
वृन्दारण्य तुरीयांश गोपीकेशरह स्थलम् ।
गोवर्धनो यत्र गिरि सखो स्थल समीपत ॥७॥

—वृन्दावन-माहात्म्य, ८०वां अध्याय

२. यत्र वृन्दा स्थिता देवी कृष्ण भक्ति परायणा।
समागताना सत्कार विदधाना फलादिभि ॥१४॥
ता दृष्ट्वा तापसी भद्रे नारद साधु सम्मत ।
नमस्कृत्य विनम्रांगो निपसाद धरातले ॥१५॥

३. तत स नारदस्तत्र सत्कृतो वृन्दयावसत् ।
रहस्य गोपकेशस्य तस्या जिज्ञासुरादरात् ॥१७॥

स्नान कराया जिससे वे नारी रूप होकर 'नारदी' सज्ञा को प्राप्त हुए ।[1] माधवी उसे वृन्दा के पास ले आई, जहाँ वृन्दा देवी उन्हें वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर भगवान् के रत्न-जटित महल मे पहुँचा आई । इस 'केलि महल' मे नारद ने श्री कृष्ण को ललितादि सखियो से युक्त देखा । भगवान् के बुलाने पर नारदी लज्जा से नत-मस्तक होकर उनके समीप गई जहाँ श्री कृष्ण ने उसके साथ रमण कर और आलिगन दे विदा किया ।[2] फिर वह कुसुम सरोवर पर आ गई । यहाँ माधवी ने उन्हें दक्षिण-पश्चिम कुण्ड मे स्नान कराकर पुन पुरुष रूप मे परिणित कर दिया ।[3] वृन्दा की आज्ञा से सरोवर के पूर्व दक्षिण मे भगवान् के दर्शन की पुन लालसा से वे तप करने लगे । वृन्दा देवी इनको नित्य-प्रति आहार के लिए फल भेजा करती थीं । एक दिन नारद जी ने आकाश-मार्ग मे विचरते किसी का सुन्दर शब्द सुना । नारद जी उस शब्द रस को ढूँढने की चेष्टा करने लगे किन्तु उसका पता न लगने पर उन्होने वृन्दा से पूछा । वृन्दा ने उन्हें कुब्जा-कृष्ण का अति गोपनीय रहस्य बताया और कहा कि उसके अतिरिक्त इस रहस्य को और कोई नहीं जानता । यदि वह इस रहस्य को जानना चाहें तो तप करें । उन्होंने यह भी कहा कि एक समय मध्याह्न मे श्री कृष्ण स्वामिनी जी सहित उनके यहाँ पधारे तथा विश्राम किया ।

यह एक रहस्य है जिसे सब कोई नही जानते किन्तु कुछ प्रकाशित रहस्य अथवा स्थल हैं जहाँ भगवान् ने लीलाएँ की थी । इसमें ब्रह्म कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, नव प्रकाशित तीर्थ अरिष्ट कुण्ड, श्री कुण्ड, चन्द्र सरोवर, वत्स तीर्थ, अप्सरा कुण्ड, रूप कुण्ड, काम कुण्ड, कदम खण्डी, विमल कुण्ड, भोजन थारी, बलि स्थान, बृहत्सानु (बरसाना), सकेत स्थल, नन्दगाँव, किशोरी कुण्ड, कोकिलावन, शेषसायी, अक्षय वट, राम कुण्ड, चीर घाट, भद्र-वन भाडीर-वन और बिल्व-वन का नाम आया है । इन

---

१ ययौ वृन्दातिक भद्रे सविधाय तदीप्सितम् ।
अथासौ नारदस्तत्र सन्निमज्योद्गतस्तदा ॥२५॥
ददर्श निजमात्मान वनितारूपमद्भुतम् ॥
ततस्तु परितो वीक्ष्य नारदी सा शुचिस्मितातम् ॥२६॥

२ ततस्तया समाहूता नारदी सा तदतिकम् ।
प्राप्ता विश्वासिता स्वस्था नीता चापि स्थलातरम् ॥२७॥
रत्न प्राकार खचिते भवने वनिता कुले ।
प्रापय्य तां निवृत्तासौ सामि ताभि सुसत्कृता ॥२८॥
विशाखादि सखी वृदैराश्वास्याऽऽत्मैक्या तत. ।
प्राप्तिताभ्यतर देवि सापश्यदगो पिकेश्वरम् ॥३०॥
इत्या तस्या निवृत्ताया समाहूता प्रियेण सा ।
नारदीपत्येश लज्जा नम्रातिक ययौ ॥३१॥
रसिकेन समाश्लिष्य रमयित्वा विसर्ज्जिता ।
क्रमेणैव तु सम्प्राप्तः सा कौसुर्य सर' ॥३२॥

३ सा पुनस्तत्र माधव्या मज्जिता दक्ष पश्चिमे ।
पु भावममिसम्प्राप्तो नारदो विस्मितोऽभवत् ॥३३॥

परन्तु राजा वज्रनाभ ने व्रज के पुनर्स्थापन की जो चेष्टा की वे स्थायी न रह सकी। बाद मे देश मे जैन धर्म और बौद्ध धर्म आदि के विकास के कारण, जिन का मथुरा स्वय बड़ा केन्द्र बन गया था, भगवान् कृष्ण के लीला-स्थलो को सुविदित नहीं रखा जा सका। मुसलमानो के आक्रमण ने यहाँ की सस्कृति और वैभव को पूरी तरह ही ध्वस्त कर दिया।

इसलिए भक्ति-युग मे सगुण कृष्ण-भक्ति का केन्द्र 'व्रज' मे स्थापित होने पर 'व्रज' के पुनरुद्धार की ओर फिर ध्यान दिया गया। व्रज को कृष्ण-भक्ति का केन्द्र बनाने का मुख्य श्रेय दो आचार्यों को है। इनमे दक्षिण की धारा के प्रवृतक थे आचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य तथा पूर्व की ओर के थे श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु। इन आचार्यों व इनके शिष्यो द्वारा 'व्रज' के पुनरुद्धार के जो प्रयत्न हुए उन्हें व्रज की दूसरी खोज कहा जा सकता है।

आचार्य महाप्रभुओ द्वारा 'व्रज' की खोज

वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थो से पता लगता है कि स० १५४९ फाल्गुन शुक्ला ११ को महाप्रभु वल्लभाचार्यजी को झारखण्ड मे 'व्रज' के आने की प्रेरणा हुई और वह व्रज मे आ गये। यहाँ आकर उन्होने श्री नाथ जी का दर्शन किया और उनका पाटोत्सव कराया। इसी समय उजागर चौबे को साथ लेकर वे व्रज मे विभिन्न स्थानो पर गये।[1] वल्लभाचार्य[2] जब-जब अपनी यात्रा समाप्त करते तब-तब वह गिरिराज आकर श्री नाथ जी की सेवा और प्रबन्ध करते थे। उनके जीवन-चरित्र से तीन यात्राओ का पता लगता है जो स० १५६८ तक समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार उनकी व्रज की तीन बार यात्रा तो अवश्य ही होनी चाहिए और भी यदि कोई यात्रा हुई हो तो उसका पता नही चलता। वल्लभाचार्य ने व्रज के जिन स्थानो पर ठहर कर श्रीमद्‌भागवत परायण किया वह 'बैठक' कहलाते है। समस्त भारतवर्ष में चौरासी बठकें है—स० १५५० वि० मे व्रज मे जिन स्थानो पर वे उजागर चौबे के साथ गये और वहाँ से लौटकर उनको १००) दक्षिणा स्वरूप प्रदान कर अपना पुरोहित बनाया, वह इस प्रकार हैं—

(१) गोकुल—गोविन्द घाट पर। यहाँ सं० १५५० वि० श्रावण शुक्ल ११ के दिन प्रथम बार गोकुल आने पर 'ब्रह्म-सम्बन्ध' की आज्ञा और श्री भगवान् को 'पवित्रा' पहिराये।

---

१. काकरोली का इतिहास, पृ० ४९।

२ 'यदुनाथ विजय' में वल्लभाचार्य जी की तीन यात्राओं का उल्लेख मिलता है—
प्रथम यात्रा—९ वर्ष में पूर्ण।
(अनुमानत स० १५४९ अथवा ५० से १५५८ या ५९ वि०।)
द्वितीय यात्रा—५ वर्ष में पूर्ण।
(अनुमानत स० १५५८ वि० अथवा ५९ से स० १५६३, अथवा ६४ तक।)
तृतीय यात्रा—५ वर्ष में पूर्ण।
(अनुमानत स० १५६३ अथवा ६४ से स० १५६८, अथवा ६९ तक।)
कांकरोली का इतिहास, पृ० ६४

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी

गुसाईं श्री विट्ठलनाथ जी

(२) गोकुल—भीतर की बड़ी बैठक जहाँ वे निवास करते थे।

(३) गोकुल—शैया मन्दिर की बैठक। यहाँ एक योगी दर्शनार्थ आया उसने गोकुल बसने और सात मन्दिर बनने की भविष्यवाणी की।

(४) वृन्दावन - वंशीवट के पास। यहाँ प्रभुदास जलोटा खत्री को स्थल का महात्म्य बताकर बिना स्नान किये ही सखड़ी प्रसाद खिलाया।

(५) मथुरा—विश्रामघाट पर। पहिले यह स्थान श्मशान था, जिसे हटाने के लिए वल्लभाचार्य ने कृष्ण दास मेघन द्वारा अपने कमण्डल से जल छिड़कवाया। इसके पश्चात् यहाँ असकुण्डा से लेकर सूर्य-कुण्ड तक बस्ती बस गई।

सं० १५५० वि० आश्विन कृष्ण १२ को उन्होने उजागर चतुर्वेदी को पुरोहित बनाया और व्रज-यात्रा आरम्भ की। वल्लभाचार्य व्रज के जिन-जिन स्थलो पर गये और भागवत का परायण किया, उनका वर्णन इस प्रकार है।

मधुवन—कृष्ण कुण्ड पर कदम्ब के नीचे।

तालवन-कमोदवन—तालवन मे किसी भगवत स्वरूप के न होने से भागवत की पारायण नहीं की, कमोदवन मे पारायण की।

बहुलावन—कृष्ण कुण्ड के ऊपर उत्तर दिशा मे वट वृक्ष के नीचे यहाँ के ब्राह्मणो की प्रार्थना पर वल्लभाचार्य जी ने मुसलमान हाकिम को चमत्कार दिखा कर बहुला गाय की पूजा प्रारम्भ कराई।

राधा कुण्ड-कृष्ण कुण्ड—राधा कुण्ड मे स्वामिनीजी के महल के पास यहाँ एक निवास किया।

मानसी गंगा—घाट के ऊपर। कहा जाता है यहाँ छ महीना पूर्व से श्री कृष्ण चैतन्य बैठ कर भगवत् नाम का जप कर रहे थे। वे वल्लभ के आने पर उनसे मिले।

परासोली—चन्द्र सरोवर के पास।

आन्योर—सद्दू पाण्डे के घर मे।

गोविन्द कुण्ड—श्री कृष्ण चैतन्य को 'कृष्ण प्रेमामृत' नामक ग्रन्थ प्रदान किया।

सुन्दर शिला—गिर्राज। यहाँ श्री नाथ जी का दीपावली और अन्नकूट का उत्सव किया।

गिरिराज—श्री नाथ जी के मन्दिर के दक्षिण भाग मे एक चौंतरी। यहाँ सेवा करने के बाद आप विराजते थे। यहाँ प्रबोधिनी तक रहे। (यह बैठक प्रकट नहीं है)

कामवन—सुरभि कुण्ड या श्री कुण्ड। कहा जाता है आपने यहाँ रहने वाले एक ब्रह्म-पिशाच की मोक्ष कराई।

गह्वरवन, बरसाना—कुण्ड के ऊपर। यहाँ एक अजगर को देखा जिसे बहुत से चींटे खा रहे थे। महाप्रभु ने जल से सींच कर उसकी मोक्ष कराई। सेवको के पूछने पर बतलाया कि यह वृन्दावन का एक महन्त था जिसने अपने शिष्यो से धन लिया पर उनके उद्धार का कोई मार्ग नही बतलाया। आज उसके शिष्य इस रूप मे बदला ले रहे है।

सकेतवन—छोकर के वृक्ष के नीचे।

नन्दगाँव—यहाँ छह मास तक निवास किया।

कोकिलावन—कृष्ण कुण्ड के ऊपर। यहाँ एक मास विराजे। यहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय के चतुरा नागा नामक एक साधु और उनके साथियो के आग्रह करने पर आचार्य चरण ने उन्हें भोजन कराया और प्रार्थना करने पर कहा कि कुछ वर्षों के बाद हमारे वशज तुम्हे अपना शिष्य बनावेंगे।

भांडीरवन—माध्व सम्प्रदाय के महन्त व्यास तीर्थ ने उन्हें अपना शिष्य बनाना चाहा परन्तु वे इस कार्य मे सफल न हो सके।

मानसरोवर—यहाँ वल्लभाचार्य ने दामोदर दास को अलौकिक दर्शन दिये।

यहाँ से जाकर गोकुल मे नन्द-महोत्सव किया जिसमे वृक्ष मे चादर बांध कर नवनीत लाल जी को पालना झुलाया।

फिर विश्राम घाट मथुरा मे आकर ब्रज-यात्रा पूरी की और अपने पुरोहित उजागर चौबे को १००) प्रदान किये।

वल्लभाचार्य के इन यात्रा-स्थलो को देख कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आचार्य महाप्रभु ने ब्रज स्थित उन्ही १२ वन की यात्रा की जिसका उल्लेख नारद पुराण (उत्तर भाग ७९ अध्याय) मे मिलता है किन्तु इसमे लोहजघवन (लोहवन) का वर्णन नही है। महावन का भी उल्लेख गोकुल नाम से मिलता है। वर्तमान काल मे महावन को ही प्राचीन गोकुल कहते है। सूरदास ने अपनी सूरसारावलि मे बारह वनो का उल्लेख करते हुए इसी गोकुल का वर्णन किया है तथा निम्नलिखित नाम गिनाये हैं—

"यहि विधि क्रीड़त गोकुल मे हरि निज वृन्दावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन सुन्दर बहुलावन अभिराम॥
नन्दगाम सकेत खिदरवन और कामवन धाम।
लोहवन माठ बेलवन सुन्दर भद्र वृहद्वन गाम॥
चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल-मोहन।
सामवेद रिगवेद यजुर मे कहेउ चरित ब्रज मोहन॥"

—'सूरसारावलि १०८८-१०९०

वराह पुराण (अध्याय १५३ और १६२) मे मधुवन, तालवन, कुन्दवन, कामवन, बकुलवन, मधुवन, खादिरवन, महावन, लोहजघवन, बिल्ववन, भाडीरवन, और वृन्दावन नाम से बारह वनो का उल्लेख आया है।

इस यात्रा से यह भी विदित होता है कि वल्लभाचार्य के ब्रज मे पधारने के पूर्व माध्व, निम्बार्क और गौडिया सम्प्रदाय के अनुगामी इसके पूर्व ही यहाँ आ चुके थे, जैसा कि श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु की ब्रज-यात्रा से विदित होता है। वल्लभाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से गोविन्द कुण्ड पर भेंट की तथा उनको 'कृष्ण प्रेमामृत' नामक ग्रन्थ भेंट किया। प्रयाग प्रदीप (पत्र ३०) से विदित होता है कि सवत् १५५७ वि० के लगभग चैतन्य महाप्रभु प्रयाग पधारे थे। इसी सम्बन्ध मे एक अनुश्रुति प्रसिद्ध है कि जब चैतन्य महाप्रभु प्रयाग पधारे, एक दिन वल्लभा-

चार्य जी ने भिक्षा के लिए उन्हें निमन्त्रित किया तो वे कृष्ण-भक्ति मे विह्वल होकर नाव मे ही नाचने लगे और यमुना जी मे गिर गये। लोगो ने उन्हे यमुना जी से निकाला तथा फिर उन्हें भोजन कराकर वापिस कर दिया। वल्लभकुल सम्प्रदाय की वार्ताओ के आधार पर इस भेंट का काल स० १५५० वि० माना गया है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की उत्कट इच्छा थी कि व्रज मे लुप्त हुए तीर्थों का पुनः उद्धार किया जाय। 'चैतन्य-चरितामृत' (प्रथम अध्याय) मे लिखा है—

"दोल यात्रा बइ प्रभु रूपे आज्ञा दिला।
अनेक प्रसाद करि शक्ति सञ्चिरिला॥
वृन्दावने जाओ तुमि रहिओ वृन्दावने।
एक बार इहाँ पाठाई ओ सनातने॥
व्रजे जाइ रस-शास्त्र कर निरूपण।
तीर्थ सब लुप्त तार करिओ प्रचारण॥
कृष्ण सेवा रस-भक्ति करिओ प्रचार।
आमिओ देखिते ताहाँ जाव एक बार॥"

'भक्त-रत्नाकर' (पंचम तरग) मे लिखा है कि वज्रनाभ ने जिन ग्रामो को बसाया था तथा विग्रहो की स्थापना की या कुण्डो को प्रकाश मे लाये थे वे कितने ही समय पूर्व गुप्त हो गये थे। उनका अन्वेषण करने के लिए आचार्य महाप्रभु (श्री कृष्ण चैतन्य) ने रूप और सनातन नामक दोनो भाइयों को व्रज मे भेजा। पुलिन विहारी दत्त (माथुर कथा, पृ० २७६) के अनुसार उन्होने चौदह-पन्द्रह वर्ष यहाँ रहकर वाराह पुराण के अन्तर्गत आये हुए स्थानो का नाम देख कर कृष्ण-लीला सम्बन्धी स्थानो का अन्वेषण किया। कविराज कृष्णदास ब्रह्मचारी द्वारा रचित 'चैतन्य-चरितामृत' में चैतन्य देव की व्रज-यात्रा का वर्णन हुआ है। इसी ग्रथ का अनुवाद व्रजभाषा मे सुवल श्याम जी ने किया था। इस ग्रथ के अनुसार चैतन्य देव की व्रज-यात्रा का निम्न प्रकार है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की व्रज-यात्रा—श्री चैतन्य महाप्रभु के निज शिष्य श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी के 'चैतन्य चरितामृत' के तीन भाग हैं, आदि, मध्य और अन्त लीला। इसमे मध्य लीलान्तर्गत १६ से १८ अध्याय तक उनकी व्रज-यात्रा का वर्णन है। पुस्तक मे यात्रा का समय नही दिया गया है किन्तु एक मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। पुस्तक के सम्पादक प० क्षीरोद चद गोस्वामी के मतानुसार आदि-लीला उनकी २५ वर्ष की आयु तक की कथा है। मध्य-लीला मे उनके ६ वर्ष तक भ्रमण का वर्णन और अन्त-लीला उनके शेष १८ वर्ष का जीवन-वृत्त है। श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म स० १४०७ शाके मे हुआ था। इस प्रकार उनका सन्यास लेकर भ्रमण का काल १४४२ शक स० आता है। भ्रमण-काल मे उनकी व्रज आने की बडी इच्छा थी किन्तु उनके भक्त उनको आने ही नहीं देते थे। इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गये।[1] इससे उनकी व्रज-यात्रा का समय स० १४४४ शक आता है।

१. "बहुत उत्कठा मोरे जाइते वृन्दावन। तो मार छठे दुइ वत्सर ना कैल गमन॥"

वर्षा व्यतीत होने पर विजया दशमी के दिन उन्होंने नीलाचल से बलभद्र भट्टाचार्य के साथ रात्रि समय अकेले ही प्रस्थान किया और भक्त लोग उन्हे फिर आकर न घेर लें इससे वे पथ छोड कर उप पथो के सहारे ही चलते थे। मार्ग मे उन्हें हिंसक पशु भी मिलते थे। वे भी उनकी अभ्यर्थना करते थे। वे झारखण्ड होते हुए काशी, प्रयाग आये और वहाँ से फिर मथुरा की ओर चल पडे।

मथुरा के निकट आकर उन्होने दूर से मथुरा देखी, दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमाविष्ट हो गये।[1] यहाँ आकर उन्होने विश्राम घाट पर स्नान किया। जन्म-स्थान मे केशवदेव के दर्शन किये, प्रणाम किया और प्रेमावेश मे नाचने-गाने लगे।[2] यहाँ वे माधवेन्द्रपुरी के शिष्य एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर ठहरे और वहीं भोजन किया। यहाँ फिर उन्होने यमुना के चौबीस घाटो पर स्नान किया और यहाँ के स्वयभू, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या, गोकर्ण आदि तीर्थों को विस्तारपूर्वक देखा तथा उसी ब्राह्मण को सग लेकर मधुवन, तालवन, कुमुदवन गये और वहाँ स्नान किया।[3]

यहाँ से आप वृन्दावन पधारे। कविराज ने वृन्दावन का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वह लिखते हैं कि प्रभु को देख कर समस्त प्रकृति प्रेम से पुलकायमान हो गई।[4]

इसी प्रकार उन्होने बारह वनो का भ्रमण किया जिसका लिख कर वर्णन नही किया जा सकता।

इस प्रकार वह भ्रमण करते हुए आटि गाँव आये। यहाँ उन्होने लोगो से राधा कुण्ड की कथा पूछी किन्तु कोई न बता सका। साथ का ब्राह्मण भी नहीं बता सका। प्रभु ने तीर्थ को लुप्त जान कर उस स्थान पर अल्प जल मे ही स्नान किया। और स्तवन करते हुए बताया कि यह कुण्ड प्रिया-प्रीतम की नित्य जल-केलि-क्रीडा स्थली सरसी (सरोवर) है जहाँ स्नान करने से कृष्ण राधा सदृश प्रेम-दान करते हैं। कुण्ड की माधुरी राधा की माधुरी और कुण्ड की महिमा राधा की महिमा

---

१ "मथुरा निकटे आइला मथुरा देखिया। दण्डवत् होइया पडे प्रेमाविष्टे होइया॥"

२ "मथुरा आसिया केल विश्राम तीर्थ स्नान। जन्म स्थाने केशव देखि करिल प्रणाम॥"

३ "यमुनाद चव्वीश घाटे प्रभु केल स्नान। सेई विप्र प्रभु को देखाय तीर्थ स्नान॥
स्वयभू, विश्राम, दीर्घ विष्णु, भूतेश्वर। महाविद्या गोकर्णादि देखिला विरतर॥
वन देखिवार जदि प्रभु मन हेइल। सेइ त ब्राह्मण प्रभु सग ते लइल॥
मधुवन तालवन कुमुदवन गेइला। तहाँ तहाँ स्नान करे प्रेमाविष्टे गेइला॥"

४ "प्रभु देखे वृन्दावने वृक्ष लता गण। अकुर पुलक मधु अश्रु परिषण॥
फूल फल भरी डाल पडे प्रभु पाय। बन्धु देखे बन्धु जेन भेट लये आय॥
प्रभु देखे वृन्दावन स्थावर जगम। आनन्दित बन्धु जेन देखे बन्धु गण॥

है।[1] यह कह कर कुण्ड की मिट्टी लेकर उन्होंने तिलक लगाया और भट्टाचार्य ने कुछ मिट्टी अपने साथ ले ली।

वहाँ से चलकर वे कुसुम सरोवर आये।[2] फिर गोवर्द्धन आये। गोवर्द्धन आकर उन्होंने हरिदेव जी के दर्शन किये।[3] प्रात काल मानसी गगा मे स्नान करके गोवर्द्धन की परिक्रमा को प्रस्थान किया।[4] गोविन्द कुण्ड पर पहुँच कर स्नान किये। वहाँ सुना कि यहाँ गोपाल जी का गाँठोली गाँव है।[5] गाँठोली पहुँच कर गोपाल जी के दर्शन किये और प्रेमावेश मे आकर कीर्तन और नृत्य करने लगे। इस प्रकार गोपाल जी के तीन दिन दर्शन किये। यही गोपाल जी म्लेछो के भय से एक महीना मथुरा मे श्री विट्ठलेश्वर (श्री वल्लभाचार्य के पुत्र) के घर मे रहे।[6]

यहाँ से महाप्रभु कामवन गये। यहाँ केलि-स्थली देखकर, नदीश्वर के दर्शन किये फिर सव कुण्डो मे स्नान किया। फिर यहाँ लोगो से पूछा कि यहाँ क्या कोई देव-मूर्ति है ? लोगो ने वताया कि यहाँ गुफा के भीतर माता-पिता के मध्य मे त्रिभगी स्वरूप का दर्शन है।[7] यह सुनकर उनको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और गुफा खोलकर दम्पति को ध्यान घर कर कृष्ण के सर्वाङ्ग का स्पर्श किया। सव दिन प्रेमावेश मे नृत्य-गीत करते रहे और वहाँ से वे खिदरवन गये। यहाँ से शेषशायी जाकर लक्ष्मी जी के दर्शन किये।[8] फिर खेला तीर्थ होते हुए भाडीरवन आये और वहाँ से यमुना पार कर भद्रवन गये। यहाँ से श्रीवन, श्रीवन से लोहवन और लोहवन से महावन जाकर जन्म-स्थान के दर्शन किये। यमलार्जुन के दर्शन कर गोकुल आये और फिर गोकुल का दर्शन कर मथुरा आ गये। यहाँ जन्म-स्थान का दर्शन कर उसी ब्राह्मण के घर

१ एइ मत महाप्रभु नाचिते-नाचिते। आटि ग्रामे आसि वाह्य हेइल आचम्बित॥
राधाकुण्ड वार्ता प्रभु पूछे लोक स्थिने। केह नाहि कहें सगेर ब्राह्मण न जाने॥
तीर्थ लुप्त जान प्रभु सर्वज्ञ भगवान्। दुई धान्य क्षेत्रे अल्प जले केल स्नान॥
देखि सव ग्राम्य लोकेर विस्मय होइल मन। प्रेमे प्रभु करे राधा कुण्डेर स्तवन॥
सव गोपी हेइति राधा कृष्णेर प्रेयसी। तैपि राधाकुण्ड प्रिय-प्रियार सरसी॥
जेई कुण्ड नित्य कृष्ण राधिकार सगे। जले जल केलि करे तीरे रास रंगे॥
सेई कुण्ड जेई एक वार करे स्नान। तारे राधा सम प्रेम कृष्ण करे दान॥
कुण्डेर माधुरी येन राधार मधुरिमा। कुण्डेर महिमा येन राधार महिमा॥

२ तवे चले एला प्रभु सुमना सरोवर। तहाँ गोवर्धन देखि होइला विह्वल॥

३ मेये मत चलि एला गोवर्धन ग्राम। हरिदेव देखे तहाँ करिला प्रणाम॥

४ प्रात'काल प्रभु मानस गगाय करि स्नान। गोवर्धन परिक्रमाय करिला पयान॥

५ गोविन्द कुण्डादि तीर्थे प्रभु केल स्नान। तहाँ शुनि ले गोपाल गाठोली ग्राम॥

६ म्लेछ भये एला गोपाल मथुरा नगरे। एक मास रहिल विट्ठलेश्वर घरे॥

७ प्रस्तावे कहिला गोपाल कृपालु आख्याने। तवे महाप्रभु गेला श्री काम्यवने।

× × ×

तहाँ लीलास्थली देखि गेला नन्दीश्वर। नन्दीश्वर देखे प्रभु होइला विह्वल॥
पावनादि सव कुण्ड स्नान करिया। लोकेर पूछे पर्वत ऊपर जाइया॥
किछु देव मूर्ति होइ पर्वत ऊपरे। लोक कहे मूर्ति होय गोफार भितरे॥
दुई दिके माता पिता पुष्ट कलेवर। मध्ये एक शिशु होय त्रभगे सुन्दर॥

८ सव दिन प्रेमावेशे नृत्य गीत केला। तहाँ होइते प्रभु खदिरवन गेला॥
लीला-स्थल देखे तहाँ गेला शेषशायी। लक्ष्मी देखे एई श्लोक पढेत गुसाई॥

आ गये। किन्तु यहाँ भीड़ अधिक रहती थी। इसलिए वे एकान्त मे अक्रूर घाट पर रहने को आ गये। फिर वृन्दावन जाकर काशी-हृद मे स्नान किया, द्वादशादित्य होते हुए केशी तीर्थ और वहाँ से रासस्थल पर आकर प्रेमावेश मे प्रभु मूच्छित हो गये।[१] इस प्रकार व्रज की यात्रा कर और कुछ दिन यहाँ रहकर माघ लगते ही वे प्रयाग के लिए रवाना हो गये।

इस प्रकार इस यात्रा मे दो सम्प्रदायों का मुख्य हाथ रहा है। एक वल्लभ-कुल सम्प्रदाय का तथा दूसरे गौडिया सम्प्रदाय का। दोनो ही सम्प्रदाय इस बात का दावा करते हैं कि व्रज-यात्रा का प्रारम्भ उन्ही के द्वारा हुआ है। गौड़िया सम्प्रदाय वाले तो इस बात को अनेक सबल प्रमाणो द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि यात्रा का आरम्भ श्री नारायण द्वारा ही हुआ था।

श्री नारायण भट्ट का जन्म-काल सवत् १५८८ वि० है तथा स० १६०२ उनका व्रजागमन काल माना जाता है। जैसा कि हम पहले बता आये है श्री वल्लभाचार्य ने अपनी प्रथम व्रज-यात्रा स० १५५० वि० मे की थी, तथा इसके पश्चात् उनकी दो और व्रज-यात्राओ का उल्लेख मिलता है। स० १६०० वि० मे तो श्री गुसाई विट्ठल नाथ जी के हस्त-लेख प्रमाण भी मिलते है जिनमे उन्होने व्रज की यात्रा की थी। फिर भी हम इस विवाद मे नही जाना चाहते। हमारा तो मत है कि इन दोनो सम्प्रदायो के महात्माओ की लगन और अथक प्रयास से ही व्रज का उद्धार हो सका।[२] इन महात्माओ ने जब व्रज-यात्रा का प्रचार किया तो उन सभी साधनो को अपनाया जो कृष्ण-भक्ति प्रचार के चार स्तम्भ कहे जा सकते है। इन का उल्लेख यहाँ किया जाना आवश्यक है—

१. प्रवचन द्वारा।
२ कीर्तन द्वारा।
३. तत्सम्बन्धी रचनाओ द्वारा।
४. रासलीला के अभिनय द्वारा।

इन साधनो को अपने रूप मे ढालने के लिए गुसाईं विट्ठल नाथ जी व गौडिया महात्माओ ने देश के विभिन्न भागो मे समय-समय पर अनेक यात्रायें की। इन यात्राओ का क्षेत्र दोनो का भिन्न-भिन्न था। गौड़िया सम्प्रदाय वालो ने बिहार, बगाल, आसाम और मणीपुर के क्षेत्र मे कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। इनकी उपासना जुगल-

---

१ तबे खेला तीर्थ देखे भाडीरवन एला। यमुना ते पार होइया भद्रवन गेला॥
श्रीवन देखि पुन गेला लोहवन। महावन गया जन्म-स्थान दरशन॥
यमुलार्जुन भग्यदि देखिल सेइ स्थल। प्रेमावेशे प्रभु मन हइला रलमल॥
गोकुल देखिया आइला मथुरा नगरे। जन्म स्थान देखि रहे सेई विप्र घरे॥
लोकेर सघट-देखि मथुरा छाँड़िया। एकान्ते अक्रूर तीर्थ रहिल आसिया॥
आर दिन ऐला प्रभु देखिते वृन्दावन। कालीय हृद स्नान कर प्रार प्रस्कन्दन॥
द्वादश आदित्य हो इते केशी तीर्थ ऐला। रास-स्थली देखे प्रेमे मूर्छित होइला॥

२ आचार्य वल्लभ के बाद ही व्रज की सामूहिक यात्रा की भावना विकसित हुई और आचार्यों ने जनता को सार्वजनिक रूप से यात्रा की प्रेरणा दी। गुसाई विट्ठलनाथ जी व श्री नारायण भट्ट को ही व्रज की सामूहिक यात्रा के आरम्भ का श्रेय है। —सम्पादक

उपासना थी तथा माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत थी। इनमे निवृत्ति की भावना अधिक थी और यह सब सासारिक सुखो को छोड़ कर भगवान् की 'नित्य-लीला' मे सम्मिलित हो जाना ही परम-लक्ष्य समझते थे। वल्लभकुल सम्प्रदाय मे यद्यपि श्री वल्लभाचार्य ने तीन-तीन बार पृथ्वी-परिक्रमा की जिसका उद्देश्य समस्त भारत मे बालरूप कृष्ण की उपासना का प्रचार था। तन-मन-धन समस्त वस्तुओ का, अपने कुटुम्ब सहित, आत्म-समर्पण की भावना भगवान् के प्रति निहित थी किन्तु जिस बीज का रोपण श्री वल्लभाचार्य ने किया उसको वृक्ष रूप देने का श्रेय श्री गुसाई विट्ठल-नाथ जी को था। इन्होने बार-बार राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र की यात्रा की, वहाँ की जनता को अपने सिद्धान्तो को समझा कर अपने सम्प्रदाय मे दीक्षित किया। उनका मार्ग प्रवृत्ति-मार्ग होने के कारण लोग सहज ही मे इनके मत की ओर आकृष्ट हो गये और आज समस्त गुजरात और सौराष्ट्र इनके सेवक हैं। इस प्रकार इन दोनो का क्षेत्र एक प्रकार से विभाजित हो गया, गौडिया सम्प्रदाय वाले पूर्व की, तथा वल्लभकुल सम्प्रदाय वाले पश्चिम की ओर अपना-अपना क्षेत्र बना कर कार्य करने लगे। ब्रज का पवित्र क्षेत्र उनका केन्द्र-बिन्दु था जहाँ प्रत्येक वैष्णव आकर अपने को धन्य मानता है।

इन प्रवचनो के साथ-साथ इन लोगो ने अपने-अपने उपास्य देवो के विग्रहो को भी ब्रज मे स्थापित किया जिनकी सेवा वे अपनी-अपनी प्रणाली द्वारा करते थे। दोनो के उपास्य श्री गोवर्धन मे विराजते थे। एक मे जहाँ नाम-सकीर्तन होता था वहाँ श्री नाथ जी के मन्दिर मे अष्ट-सखाओ की वाणी का ध्रुपद प्रणाली मे कीर्तन होता था जो उस समय का सर्वोत्कृष्ट शास्त्रीय-सगीत माना जाता था।

इस प्रकार सिद्धान्तो के पृष्ठ-पोषण करने को वे लोग विभिन्न ग्रथो की रचना करते थे, जो लोगो को स्वाध्याय और चिंतन के लिए ज्ञान का अटूट श्रोत थे। गौडिया सम्प्रदाय की जितनी भी रचनाएँ हुई वे प्राय सस्कृत और बगला साहित्य की अमूल्य थाती हैं। कुछ रचनाएँ बगला लिपि मे लिखी जाकर ब्रजभाषा मे रची गई जो अभी 'ब्रज बुलि' नाम से प्रकाश मे आई है। वल्लभ कुल सम्प्रदाय मे जो रचनाएँ हुई वे सस्कृत तथा ब्रजभाषा मे रची गई। गुजराती भाषा मे भी अनेक ग्रथो की रचना उनके सम्प्रदाय वालो ने की। इस प्रकार के साहित्य का यदि एक पुस्तकालय के रूप मे सग्रह किया जाय तो एक बहुत ही विशाल पुस्तकालय बन जायगा। अन्तिम उपाय जो इन महात्माओ ने किया वह भगवान् के लीला सम्बन्धी प्रदर्शनो का था। इसी के लिए रास का पुनरुद्धार किया गया और उसके लिए विविध पद्य-मय लीलाओ की रचना हुई। पीछे से बगाल मे भी रासलीला आरम्भ हुई। यह रासलीला वहाँ 'जात्रा' कहलाती है। इसकी वेष-भूषा आदि ब्रज की रास-लीला से पृथक् रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक यात्राओ के साथ इसका सम्बन्ध होने के कारण ही इसका नाम 'जात्रा' पड़ गया। आज भी ब्रज-यात्राओ मे रास-मण्डली यात्रा का एक आवश्यक अग मानी जाती है।[१]

१ धर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों में आज भी इन्हीं चार उपायों का प्रयोग किया जाता है। इससे प्रकट होता है कि उस समय इन लोगों की कितनी दिव्य दृष्टि थी तथा वे लोग अपने कार्य के प्रति कितने जागरूक थे।

वल्लभाचार्य की तीनो ब्रज-यात्राओ के पश्चात् जिनकी अन्तिम यात्रा स० १५६८ वि० को समाप्त हो जाती है, उन्होने कोई यात्रा नही की। उनका 'नित्य-लीला' प्रवेश स० १५८७ वि० मे हो गया था। इनके दो पुत्र थे श्री गोपीनाथ और गुसाईं विट्ठल नाथ। इसमें गोपीनाथ जी तथा उनके पुत्र पुरुषोत्तम जी का अल्प आयु मे ही लीला-सवरण हो गया। इसके पश्चात् श्री विट्ठल नाथ जी ने श्री नाथ जी की सेवा आरम्भ की।

गुसाईं विट्ठल नाथ जी की ब्रज-यात्रा

स० १६०० वि० भाद्र कृष्ण मे गुसाईं जी ने अपनी मातृ श्री को साथ लेकर ब्रज चौरासी कोस की यात्रा की और वहाँ पर उजागर चौवे शर्मा को अपना पुरोहित बनाया। इसका वृतिपत्र उनके हस्ताक्षरो का लिखा हुआ अद्य विद्यमान है।

इस यात्रा का पूरा विवरण नही मिलता किन्तु जब उन्होंने दूसरी बार ब्रज-यात्रा स० १६२४ मे की तो उसका छन्दोवद्ध वर्णन कवि जगतनन्द ने किया है। यह यात्रा भादो वदी १२ सोमवार स० १६२४ वि० को उठाई गई तथा ११ दिन मे पूर्ण हुई है। ग्रथ मे इस यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

भादों कृष्णा १२—गोकुल मे आज्ञा ली और मथुरा चले आये।

भादों कृष्णा १३—द्वादशी की रात को मथुरा मे रह कर त्रयोदशी के प्रात काल विश्रान्त घाट पर स्नान कर उजागर चौवे से नियम लेकर सकल्प किया और यहाँ से जन्म-भूमि पर आकर भूतेश्वर पर आये। उजागर चौवे ने भूतेश्वर को 'दिव्य दृष्टि का भूप बताया'। आपने कहा कि हमे जो आज्ञा लेनी थी, ले ली। अब आप पधारो हम अकेले ही जायेंगे। यहाँ से आप मधुवन पधारे, जहाँ आपने पाक किया। फिर तालवन और कुमुदवन गये।

भादो कृष्णा १४—इस दिन आप सातन कुण्ड, गन्धेसरा (गन्धर्व कुण्ड) और बहुलावन गये। फिर आरठ, राधा-कृष्ण कुण्ड, स्याम वट, कुसुम सरोवर, नारद-कुण्ड और वहाँ से श्री नाथद्वारा अर्थात् गिर्राज जी आ गये।

भादों कृष्णा १५—इस दिन हरदेव जी, चक्रतीर्थ, मानसी गगा, ब्रह्म कुण्ड, दानी केशोराय, सन्कर्षन कुण्ड, गोविण्द कुण्ड से गाधर्व कुण्ड मे स्नान करके गोविन्द राय के दर्शन करके, अप्सरा कुण्ड और रुद्र कुण्ड पर अपने मन्दिर मे आकर प्रसाद लिया तथा उसी रात को गांठोली चले गये।

भादों सुदी १—इस दिन आदि वद्री, हिंडोला, इन्द्रोली मे इन्द्र कुण्ड होते हुए कामवन पहुँचे और धर्म कुण्ड पर डेरा डाला।

भादों सुदी २—धर्म कुण्ड मे स्नान किया, कामा की प्रदक्षिणा की। विमल कुण्ड, कामना कुण्ड, महोदधि, रत्नाकर, कालिरव, आँख-मिचौंनी, अन्धकूप वट, सुरभि गुफा, खिसलनी सिला, थार-कटोरी चिन्ह, से चलकर चौरासी कुण्ड पर स्नान वदना की। फिर डेरा पर आकर नन्दगांव मे दर्शन किये।

भादों सुदी ३—यहाँ सुनहरा गाँव मे डेरा दिया। आँढेर देख कर देह कुण्ड पर न्हाये। यहाँ वल्देव और रेवती जी के दर्शन है। साँकरी खोरि जा कर, चिकसोली होते हुए भानपुर गए। यहाँ से मान-दान-गढ़ मे दर्शन कर दान घाटी चढ़े। रतनकुण्ड

में आचमन लेकर, नौवारी, चौवारी, पीरी पोखर, सकेत, रास-चौंतारा होकर विघुला कुण्ड मे स्नान किया। यहाँ नन्द-यशोदा के दर्शन करके मधुवन कुण्ड मे दर्शन किये और जसोदा कुण्ड मे स्नान किये। यहाँ नन्द-यशोदा, राम और कृष्ण का स्वरूप है। फिर ललिता कुण्ड, वजवारी, छछहारी कुण्ड देखते हुए दामोदरा और गोपेश्वरा पधारे। जहाँ अक्रूर उतरे थे फिर उस स्थान का दर्शन किया। पीछे ईसरा की पोखर देखी। फिर वह स्थान देखा (उद्धव-क्यारी) जहाँ उद्धव ने गोपियो को ज्ञान दिया था। फिर मधुसूदन कुण्ड पर दर्शन किये जहाँ भगवान् ने जल-विहार किया था। यहाँ से कदम खण्डी होते हुए मानसरोवर पर पाक अपने हाथ से किया। फिर खिदरवन आकर रात भर रहे।

भादो सुदी ४—फिर अनेक कुण्डो में स्नान करते हुए नागवल्ली का दान कर पिसोरा गये। फिर करहला, अजनोख, महराना होते हुए मुरवारी ताल गये जिस स्थान पर मुक्ता उत्पन्न हुए थे। फिर उस विलास वट के दर्शन किये जहाँ पक्षियो का भी प्रवेश नहीं है। फिर नन्द-यशोदा के साथ जहाँ भगवान् गाय देखने पधारे थे उस स्थान वठैन को गये। यहाँ वलभद्र कुण्ड, चरण पहाड़ी, शखचूड़ वध-स्थल देख कर वच्छवन आये और रात भर विश्राम किया।

भादों सुदी ५—रासोली, वट वक्ष, भूमि के ईसानकोण में नन्द घाट पधारे, फिर खिदरवन होकर रामघाट आये, जहाँ वलराम जी ने प्रलवासुर का वध किया था तथा श्री यमुना जी को खीचा था। फिर कात्यायनी देवी का दर्शन करके, चीर-घाट होते हुए नन्दघाट पर यमुना जी पार की। भद्रवन देख कर, मधुसूदन कुण्ड में स्नान करते हुए, भाडीरवन होते हुए खिजाली गाँव आये। भाडीर कूप देख कर अक्षय वट के दर्शन कर भोजन किये और वहाँ से वेलवन आ गये।

भादो सुदी ६—पिछली रात उठ कर मानसरोवर होते हुए माणिक शिला देखी। फिर पिपरोली गाँव मे वह वट-वृक्ष देखा जहाँ श्री कृष्ण ने रास किया था। फिर लोहवन होते हुए ब्रह्माण्ड मे नहाए जहाँ भगवान् ने यमलार्जुन की लीला की थी। मथुरा नाथ के दर्शन किये। नन्द कूप, श्याम और रोहिणी का मन्दिर देखा। सप्त-समुद्री का कूआ देखा। श्री यमुना जी मे स्नान कर उत्तर घाट होते हुए आप गोकुल पधारे और भोजन किया और रात को आप मथुरा पधारे।

भादों सुदी ७—प्रात समय आप दशाश्वमेघ घाट पर गये। वहाँ से अक्रूर स्थल (अक्रूर घाट), काली दह, निस्कन्ध होकर मदन मोहन चीर घाट, वशीवट और धर्म कुण्ड देखा तथा वेणु कूप और गोविन्द देव जी के दर्शन कर आप फिर मथुरा आ गये। इस प्रकार आपने ११ दिन मे व्रज चौरासी कोस की यात्रा पूर्ण की।

इन दोनो व्रज-यात्राओ मे जो वल्लभाचार्य और श्री गुसाई विट्ठल नाथ जी ने की उसमे एक मौलिक अन्तर यह है कि वल्लभाचार्य की यात्रा मे जहाँ थोड़े से स्थलो (व्रज के वनो) का वर्णन आया है वहाँ श्री गुसाई जी की यात्रा मे वहुत-से स्थलो (उपवनो) का उल्लेख है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि गुसाई जी की यह यात्रा वल्लभाचार्य से लगभग ३५ वर्ष पीछे हुई। इसी वीच मे और अनेक स्थलो को खोज निकाला गया। इसमे वल्लभ-कुल सम्प्रदाय का हाथ अधिक या अथवा गोडिया

सम्प्रदाय का, यह कहना कठिन है किन्तु गौड़िया सम्प्रदाय वालो का कहना है कि इसका श्रेय श्री नारायण भट्ट को है जिन्होने दक्षिण से आकर ब्रज के समस्त तीर्थों का उद्धार किया और 'ब्रज-भक्ति विलास' जैसे ब्रज-यात्रा के अपूर्व ग्रथ का निर्माण किया। यह आज के लोगो का एक दृष्टिकोण हो सकता है जो अपने को ऊँचा दिखाने की चेष्टा करते हैं किन्तु श्री गुसाई जी तथा श्री नारायण भट्ट मे इस प्रकार की कोई भावना नही थी। उन दोनो का एक ही उद्देश्य था कि कृष्ण-भक्ति द्वारा ब्रज-भक्ति का व्यापक प्रचार हो। गौड़िया सम्प्रदाय के ग्रथो से तो इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता कि नारायण भट्ट और गुसाई विट्ठल नाथ जी की कभी भेंट हुई हो किन्तु वल्लभ-कुल सम्प्रदाय के ग्रथो से पता चलता है कि स० १५६० वि० मे गोपीनाथ जी तथा विट्ठल नाथ जी ने नारायण भट्ट से लेकर श्री मदन मोहन जी का स्वरूप कार्तिक शु० ६ के दिन बगालियो को सेवार्थ प्रदान कर दिया और उनसे श्री नाथ जी की सेवा छोड देने का आग्रह किया।[1] इस प्रकार इन दोनो महानुभावो की विचारधारा का महज ही अध्ययन किया जा सकता है।

श्री नारायण भट्ट और ब्रज-यात्रा

कहा जाता है कि जब श्री नारायण भट्ट ब्रज में गोवर्धन के समीप राधा-कुण्ड पधारे तो श्री मदन मोहन जी ने प्रत्यक्ष होकर इन्हें दर्शन दिये तथा विग्रह के सेवक श्री ब्रह्मचारी को बताया कि श्री नारायण भट्ट नारद जी के अवतार हैं। सायंकाल तक यह बात सब स्थानो पर प्रसारित हो गई कि नारद के अवतार श्री नारायण भट्ट ब्रज मे पधारे हैं। सभी ग्रामीण वहाँ उपस्थित होकर उनसे कुछ सेवा करने के लिए आज्ञा माँगने लगे। तब उन्होने कहा कि यहाँ पर राधा कुण्ड है और लोगो के अविश्वास करने पर उन्हें चिह्न बता कर लोगो से खुदवा कर राधा कुण्ड प्रकट किया।[2] इसी प्रकार श्याम कुण्ड तथा दोनो कुण्डो का सगम स्थान प्रकट किया। इसके पश्चात् आपने मानसी गगा, कुसुम सरोवर, गोविन्द कुण्ड, चन्द्र सरोवर तथा अन्यान्य कृष्ण-क्रीडा सम्बन्धित समस्त भू-कुण्डो का प्राकट्य किया।

आगे मथुरा पुरी मे जाकर श्री कृष्ण जन्म-स्थान, वसुदेव जी का मन्दिर, कस कारागृह, रग-भूमि, कस बध-स्थान, उग्रसेन का राज्य प्राप्ति स्थान, बलि महाराज का तपस्या स्थल, सप्त सामुद्रिक कूप, महा विष्णु, गतश्रम नारायण, दीर्घ विष्णु, वाराह मूर्ति, भूतेश्वर, गर्त्तेश्वर, महाविद्या देवी, सिन्दूर कुण्ड तथा अन्य-अन्य कुण्डो का उद्धार किया तथा बहुत काल से छिपे हुए ब्रज देवताओ को भी प्रकट किया।

---

१ काकरोली का इतिहास, पृ० ८६।

२ श्री चैतन्य चरितामृत में महाप्रभु कृष्ण चैतन्य द्वारा राधा कुण्ड को प्रकट किये जाने का उल्लेख है—

राधाकुण्ड अरिष्ट की पूछी लोगन बात। कोऊ कहे न जानही सोऊ सग द्विज जात॥
तीरथ लोपत जान प्रभु सबके ज्ञाता आहि। बोये धान के खेत में कछु जल न्हाये ताहि॥
लखिकें ग्रामी-जननि के मन अचरज अधिकाय। स्तवन जु राधा कुण्ड कौ करें सु प्रभु भरिमाय॥

—कवि सुबल श्याम कृत श्री चैतन्य चरितामृत का अनुवाद, पृष्ठ १५५

मथुरा से महावन पधार कर आपने नन्द-यशोदा के निवास-स्थान, श्री कृष्ण के बाल-क्रीड़ा स्थल, यमलार्जुन-गति स्थान, ब्रह्माण्ड घाट, रमणवन, गोपियो का गृह समूह, श्री कृष्ण चौर्य लीला स्थान, दधि-वर्तन फोड़ने के स्थान, ऊखल-बन्धन-स्थान और श्री कृष्ण-बल्देव तथा गोपियो की क्रीड़ा-स्थली का उद्धार किया।

यहाँ से आप वृन्दावन पधारे और वशीवट मे स्थित कृष्ण-रास-स्थली को प्रकट किया। कालिय-दमन, बकासुर, अघासुर, केशी-वध स्थान, ब्रह्मा द्वारा गो-वत्स-गोपन स्थान, श्री कृष्ण द्वारा गो-वत्स स्वरूप धारण स्थान, ब्रह्मा-स्तुति स्थान, नन्द-घाट, चीर घाट, दुर्वासा स्थान, यज्ञ पत्नियो द्वारा श्री कृष्ण भोजन-स्थान, अरिष्टा-सुर बध-स्थल, शखचूड़ वध-स्थान का निर्धारण किया।

पच योजन विस्तीर्ण श्री वृन्दावन क्षेत्र मे श्री हरि ने गो-गोपी बालको के साथ विविध लीलाएँ की हैं। जहाँ गोवर्द्धन पर्वत, ब्रह्मगिरि (बरसाना), रुद्रगिरि (नन्दगाँव), वज्र कीलक, कामसेन पर्वत, सुवर्णाचल, विदम्ब पर्वत, अरोरा पर्वत, सखी गिरि (ललिता का जन्म-स्थान) तथा अन्यान्य पवित्र पर्वत विराजमान हैं और भी जहाँ-जहाँ नन्दादि गोपो का वास, स्थान, गोप और गोपियो के जन्म-स्थान के ग्राम, चारो ओर सकेतादि सोलह वट, बल्देव जी का रास-स्थल, विहार, वन, वन-उपवनो मे श्री कृष्ण के रास-स्थल, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष नाम के वनो, प्रतिवनो, अधिवनो मे श्री कृष्ण के रास-स्थल तथा अनेक कुज-निकुंजो का उद्धार किया और भी आपने चरण पहाड़ी, पावन सरोवर, मुक्तारोपण स्थल, हाऊस्थान, दधि-मथन स्थान, अक्रूर आगमन स्थान, उद्धव वचन, गो-दोहन स्थान, और बाल-क्रीड़ा स्थान समूह को प्रकट किया।

बरसाने मे वृषभानु सरोवर, कीर्तिदा सरोवर, प्रिया कुण्ड, दोहनी कुण्ड, चिकित्सावन, दानलीला, मानलीला, विलास गढ़, साँकरी खोरि, गह्वरवन आपने पुन. स्थापित किये।

ऊँचा ग्राम मे देह कुण्ड, श्याम कुण्ड, प्रिया कुण्ड, गोपी पोखरा, सखी कूप, खिसलनी शिला, चरणचिह्न, सकेत स्थान, कृष्ण कुण्ड, विह्वला देवी, त्रिवेणी, ललिता, विवाहादिक स्थान खोजे।

कामवन मे काशी कुण्ड, गया कुण्ड, विमल सरोवर, भोजन थाली, चरण पहाडी, वाराह कुण्ड, अयोध्या कुण्ड, कुरुक्षेत्र, पचतीर्थ, यज्ञ कुण्ड, धर्म कुण्ड, गरुड़ सरोवर, गोपाल कुण्ड, लका कुण्ड आदिक कुण्ड समूह, आदि बद्री, व्यास सिंहासन, नर नारायण, गगा, अलकनन्दा, चतुर्भुजादि मूर्ति, वाराहादिक मूर्ति, धर्मराज आदि देवमूर्ति, पच-पाण्डवो की मूर्ति, मनसा देवी, कामेश्वर पुनर्स्थापित किये।

वृन्दावन में गोपेश्वर, और **गोवर्धन** मे चकलेश्वर (चक्रेश्वर) बल्देवादि

नोट—श्री नारायण भट्ट द्वारा कथित ब्रज-मण्डल की भूमि इक्कीस योजन की है। दक्षिण तथा उत्तर के मध्य यमुना बहती है। यमुना जी की दोनों दिशाओं में ढाई हजार तीर्थ मौजूद हैं।

भट्ट जी ने टोडरमल से समस्त स्थल जो प्रकट किये थे उनके जीवनोद्धार कराने के लिए टोडरमल से कहा और उन्होंने वैसा ही किया।

विग्रह जो वज्रनाभ के द्वारा स्थापित हुए थे तथा बहु वर्षों से आच्छिन्न होकर लुप्त हो गये थे, उन सब का प्राकट्य करने लगे।

श्री वल्लभाचार्य की यात्राओं से प्रतीत होता है कि उन्होंने जितनी बार पृथ्वी की परिक्रमा की उतनी ही बार उन्होंने ब्रज की भी यात्रा की थी तथा गुसाईं विट्ठल नाथ जी ने जितनी बार गुजरात यात्रा की उतनी ही बार ब्रज-यात्रा भी की प्रतीत होती है क्योंकि जो भी उल्लेख मिले हैं उनसे यही बात प्रकट होती है कि ब्रज-यात्रा करने के पश्चात् ही वह अपनी गुजरात और सौराष्ट्र की यात्रा पर निकला करते थे। उनके साथ उनके कितने शिष्य वर्ग अथवा सेवक होते थे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी यह निश्चय है कि इस प्रकार उनके साथ अनेक सेवक जो ब्रज-यात्रा की सुन कर इस अवसर से लाभ उठाना चाहते थे अवश्य आ जाते थे और उनके साथ यात्रा करते थे। दूसरी ओर श्री नारायण भट्ट अपने शिष्य वर्ग को लेकर निकलते तथा भगवत् नाम के कीर्तन तथा स्वरचित ब्रज विलास की कथाएँ कहते समस्त ब्रज की यात्रा करते थे। इस प्रकार ब्रज मे यात्राएँ चल पडी जिसमें एक के संचालक थे नारायण भट्ट तथा उनकी परम्परा तथा दूसरे के थे श्री गुसाईं जी व उनकी वश परम्परा। आज भी ब्रज मे दोनो यात्रायें चालू है। श्री नारायण भट्ट वाली यात्रा बगालियो की यात्रा कहलाती है किन्तु आज-कल उसमे थोडे से विरक्त बगाली वैष्णव भाग लेते हैं। वल्लभ कुल सम्प्रदाय द्वारा सचालित यात्राएँ अत्यन्त विशद् और महत्त्वपूर्ण होती हैं जो कि ब्रज के जन-जीवन पर अपना व्यापक प्रभाव रखती हैं। इसी विषय पर हम यहाँ प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

श्री वल्लभाचार्य का मार्ग प्रवृत्ति मार्ग है। उसकी साधना घर मे बैठ कर ही की जा सकती है किन्तु उसमे समर्पण की भावना निहित है। हमारा जो कुछ भी है वह सभी प्रभु के अर्पण है। वह तन, मन और धन को सब प्रभु का ही समझ कर उसमे अर्पण कर देता है। यह भावना गृहस्थो के इतने निकट है कि यदि वे इस पर आचरण करें तो पारिवारिक क्लेशो से सदा के लिए मुक्ति मिल सकती है। इस प्रकार इस धर्म का जन-जीवन मे साधारणीकरण हो गया और इस सम्प्रदाय के प्रवर्तको के वशजो मे जहाँ वृद्धि हुई उसके अनुपात से इनके अनुयायियो की वृद्धि भी अत्यधिक बढ़ गई। गुरु परिवार को मथुरा का सतधरा छोड़ कर अपनी-अपनी निधियों सहित राजस्थान तथा गुजरात और सौराष्ट्र में अनेक स्थानो पर हवेलियाँ स्थापित कर वहाँ स्थापित होना पडा। इस लिए यहाँ से एक नवीन मनोरथ के रूप मे ब्रज-यात्रा प्रारम्भ हुई। गुसाईं बालक अपनी-अपनी निधियो को लेकर अपने मनोरथ की पूर्ति के हेतु अपने-अपने सेवको सहित पधारने लगे।

अन्त मे ब्रज-यात्रा की वर्तमान रूपरेखा हमारे सामने आई जिसे गुसाईं श्री गोपाल लाल जी महाराज[१] द्वारा बनाई हुई कही जाती है। इस यात्रा की विशेष बात यह है कि इस यात्रा मे ४५ दिन का समय लगता है। इसमें उन स्थानों का भी

१. गुसाईं विट्ठलनाथ जी ने सामूहिक ब्रज-यात्रा की जो परम्परा स्थापित की थी वह औरगजेब के धर्मान्ध शासन-काल के उतरार्द्ध में बन्द हो गई थी। इसके बाद सवत १८०५ के लगभग मथुरा के गोस्वामी श्री पुरुषोत्तम जी ने इसे पुन चलाया था। इस यात्रा का नवीन क्रम बाँधा गया।

निश्चय हो गया जहाँ-जहाँ यात्रा अपना पड़ाव डालती है। वर्तमान काल मे यात्रा प्राय भाद्र शुक्ल पक्ष की ६ या ७वी को मथुरा में नियम लेती रही है और निम्न स्थानो पर अपना पडाव डाल कर कार्तिक कृष्ण पक्ष को ८वी के दिन पुन मथुरा आ जाती है। वर्तमान समय मे यात्रा प्राय. निम्न स्थानो पर मुकाम डाले जाते हैं—

(१) श्री मथुरा मुकाम ४ दिन, (२) मधुवन, मुकाम २ दिन ; (३) शान्तनु कुण्ड, मुकाम १ दिन ; (४) बहुलावन, मुकाम १ दिन ; (५) अडीग, मुकाम १ दिन , (६) कुसुम सरोवर, मुकाम १ दिन ; (७) चन्द्र सरोवर, मुकाम २ दिन ; (८) जतीपुरा, मुकाम ८ दिन ; (९) डीग, मुकाम १ दिन , (१०) परमदरा या घाटा, मुकाम १ दिन , (११) कामवन, मुकाम ३ दिन , (१२) बरसाना, मुकाम २ दिन , (१३) सकेत, मुकाम १ दिन , (१४) नन्दगाँव, मुकाम ३ दिन , (१५) करहेला, मुकाम १ दिन , (१६) कोकिलावन, मुकाम १ दिन , (१७) कोटवन, मुकाम १ दिन, (१८) कोसी, मुकाम १ दिन , (१९) पैगाँव, मुकाम १ दिन; (२०) शेरगढ, मुकाम १ दिन , (२१) चीरघाट, मुकाम १ दिन (२२) वच्छवन, मुकाम १ दिन ; (२३) वृन्दावन, मुकाम ३ दिन, (२४) लोहवन, मुकाम १ दिन; (२५) दाऊजी, मुकाम १ दिन , (२६) गोकुल, मुकाम २ दिन , (२७) मथुरा, पुन मुकाम २ दिन।

यह कार्य-क्रम प्राय सभी यात्राओ मे एक सा ही होता है किन्तु सुविधानुसार इसमे उलट-फेर कर मुकामो की सख्या तथा मुकामो के ठहरने के काल मे परिवर्तन किया जाता रहा है।

भगवान् श्री कृष्ण के लीला-स्थल भी वन-उपवनों के साथ-साथ गोस्वामी पुरुषोत्तम लाल जी द्वारा ही ब्रज-यात्रा में सम्मिलित किये गये। यह यात्रा ५० दिन की थी। इसी यात्रा की परम्परा अब तक ब्रज में पुष्टि-सम्प्रदाय द्वारा प्रचलित है। बाद में गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल जी के ही वंशज गो० ब्रजनाथ जी ने सं० १९४० के आस-पास ब्रज-यात्रा पर एक पुस्तक भी लिखी थी जिसमें उक्त यात्रा-क्रम का वर्णन है।

- गो० गोपाल लाल जी ने जो गो० पुरुषोत्तम जी के ही भतीजे थे, अपने चाचा जी द्वारा स्थापित यात्रा-क्रम में कुछ परिवर्तन किये और यात्रा का समय भी ४० दिन कर दिया। वल्लभ सम्प्रदाय में यही क्रम निरन्तर चला आ रहा है।

: ३ :

ब्रज-यात्रा के कुछ प्राचीन विवरण

श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

मथुरा-मण्डल—मथुरा-मण्डल या ब्रज-प्रदेश, पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की लीला-भूमि है। श्री कृष्ण अब से करीब ५ हजार वर्ष पहले हुए माने जाते हैं। इतने लम्बे काल मे मथुरा-मण्डल ने बहुत उतार-चढाव देखे है। प्राचीन स्थान व मन्दिर आदि नष्ट होते रहे है कुछ स्थान कहाँ थे वे भूला भी दिए गये पर भक्ति-युग मे इस प्रदेश का कण-कण धर्म और भक्ति की पावन धारा से सम्बन्धित व रससिक्त हो गया। श्री कृष्ण की जीवनी मे जिन-जिन स्थानो या प्रसगो का वर्णन आया, उन सब का प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से जोड दिया गया। इतनी प्राचीन बात के लिए कि कौन सी घटना कब हुई प्रमाण ढूँढना शक्य न था। भक्त महा-पुरुषो ने अपनी अनुभूति या कल्पना से इन स्थानो की उद्भावना की और लीला या किसी प्रसग विशेष से सम्बन्धित होकर यही सामान्य स्थान, तीर्थ के रूप मे लाखो करोड़ो व्यक्तियो के श्रद्धा के केन्द्र बन गये। सैकडो वर्षों से करोडो व्यक्तियो ने भारत के भिन्न-भिन्न स्थानो से आकर ब्रज-यात्रा द्वारा अपने को पवित्र और धन्य माना है और आज भी वही श्रद्धा-परम्परा, भक्ति की पावन धारा लोक-हृदय को धार्मिक भावना से आप्लावित कर रही है, और इसी तरह भविष्य मे भी करती रहेगी। बुद्धिवादी इस युग मे भी ब्रज-यात्रा का महत्त्व बढ ही रहा है यह जानकर अधिक प्रसन्नता होती है।

'मथुरा-महात्म्य'—मथुरा-मण्डल ब्रज-प्रदेश का महात्म्य पुराणो मे भी पाया जाता है। पता नही वे महात्म्य प्राचीन पुराणो मे कब व किसके द्वारा जोडे गये। बीकानेर की अनूप सस्कृत लायब्रेरी मे 'मथुरा-महात्म्य' की दो प्रतियाँ हैं। जिनमें से ७६ पत्रो की प्रथम प्रति सवत् १६६५ मे मथुरा मे ही जहाँगीर के राज्य मे नरसिंह ने लिखी। उसे वाराह पुराण का एक अश होना कहा गया है। दूसरी ५३ पत्रो की प्रति टोडरमल रचित टोडरानन्द का एक अश "मथुरा महात्म्य" के रूप मे है। जयपुर के जैन भडार मे भी ५२ पत्रो की प्रति है। पता नही वह इन दोनो मे से कौन से ग्रथ का अश है या कोई अन्य पुराण का है। बाराह पुराण के मथुरा-महात्म्य की दो हस्त-लिखित प्रतियाँ प्राच्य विद्या मदिर बडौदा व उज्जैन मे भी है, जिनमे से एक सवत् १६८५ लिखित १४५० श्लोक परिमित है और दूसरी ११०० श्लोक परिमित। 'टोडरानद' तो १७वी शताब्दी का ग्रथ है। वाराह पुराण वाला "मथुरा महात्म्य" कितना पुराना है तथा अन्य स्कन्ध आदि पुराणो मे भी मथुरा-महात्म्य का कोई खण्ड हो तो वह अन्वेषणीय है।

मथुरा कल्प—सवत् १३७०-८० के लगभग जैनाचार्य जिन प्रभसूरि ने मथुरा तीर्थ की यात्रा करके "मथुरा कल्प" प्राकृत भाषा मे बनाया । उसमे प्रधान रूप से तो जैनो का जो मथुरा से सम्बन्ध रहा है उसी का वर्णन है फिर भी मथुरा और उसके आस-पास के प्रसिद्ध स्थानो, वनो और लोक-तीर्थो का निम्नोक्त उल्लेख मिलता है—

"तया य महुरा बारह जो अणाइ दीहा, नव जो अणाइ वित्थिण्णा, पासट्ठि अजउणाजलपक्खालियवरप्पायारविमूसिआ धवलहरदेउलवाविकूवपुक्खरिणि-जिणमवणहट्ठोवसोहिआ, पढतविविहचाउव्विज्जविप्पसत्था हुत्या ।"

"इत्य पच थलाइं । तं जहा-अक्कथल नीरथल पउमत्थल कुसत्यल महाथल ।

दुवालसवणाइ । त जहा—लोहजघवण महुवण विल्लवण तालवण कुमुअवणं विंदावण भडीरवण खइखण कामिअवण कोलवण बहुलावण महावण ।"

"इत्य पच लोइअतित्याइ । त जहा—विस्सतिअतित्थ असिकुडतित्य वेकुत-तित्य कालिजरतित्थ चक्कतित्य ।" अ० विविध तीर्थतुल्य

उपरोक्त उद्धरणो मे यहाँ के पाँच स्थल, १२ वन और ५ लौकिक तीर्थों के जो नाम दिए है वे विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

वल्लभीय यात्रा की परम्परा—वल्लभ सम्प्रदाय मे उपलब्ध साहित्य पर आधारित, व्रज-यात्रा सम्बन्धी विवेचन पहले अध्यायो मे हो चुका है, जिसमे आचार्य वल्लभ और गुसाई विट्ठल नाथ जी की यात्राओ की चर्चा विस्तार से हुई है । परन्तु गुसाई जी के बाद भी व्रज-यात्रा की यह परम्परा औरगजेब के समय मे कुछ समय बन्द होकर बाद मे फिर भी कुछ साधारण परिवर्त्तनो के साथ चलती रही जिसका व्योरा 'वल्लभीय सुधा' के व्रज-परिक्रमा अक (वर्ष ७, अक ३-४) के आमुख मे श्री द्वारका दास परीख ने निम्न प्रकार दिया है—

"व्रज परिक्रमा का यह क्रम औरगजेब के समय मे बन्द हो गया था । सं० १७२६ मे जब श्री नाथ जी व्रज से मेवाड पधारे तब श्री केशवराय जी आदि अन्य भी सुप्रसिद्ध भगवद्-विग्रह व्रज से अन्यत्र चले गये थे । इसलिए व्रज मे सामूहिक धार्मिक कार्य सब बन्द हो चुके थे । तब व्रज परिक्रमा भी बन्द हो गई थी । उसके बाद मथुरा के गोस्वामी श्री पुरुषोत्तम जी (स० १८०५) खयाल वालो ने पुनः इस व्रज परिक्रमा को चलाया । आपने परिक्रमा का नवीन क्रम बांधा जिसमे वन-उपवन और सभी प्रमुख-प्रमुख लीला-स्थलों का भी समावेश किया । वह परिक्रमा प्राय: ५० दिनों की थी । वह परिक्रमा गो० श्री पुरुषोत्तम जी के समय से ही पुन प्रति वर्ष आज पर्यन्त वल्लभ सम्प्रदाय मे चलती रही है ।

इन्हीं श्री पुरुषोत्तम जी के वशजो मे गो० विट्ठल नाथ जी हुए हैं । उनके पुत्र गो० व्रजनाथ जी थे, जिन्होंने श्री 'व्रज-परिक्रमा' ग्रन्थ को अपने सेवको के पास लिख-वाया । यह रचना उपर्युक्त "व्रज-परिक्रमांक" मे प्रकाशित है । गो० व्रजनाथ जी का समय १९०३ से १९६० के आस-पास रहा है । अत यह पुस्तक अनुमान से सं० १९४० के आस-पास की लिखी हुई हैं । इसमे श्री पुरुषोत्तम जी द्वारा चलाया

हुआ परिक्रमा का क्रम है। उन्होंने अपने पूर्वजो की प्राचीन परिपाटा के अनुसार पूरे ५० दिनो मे इस परिक्रमा को पूर्ण किया है।

इन्हीं श्री ब्रजनाथ जी के भतीजे गो० श्री गोपाल लाल जी महाराज के आज के जीवों की अल्प सामर्थ्य और समयाभाव को देखकर इस परिक्रमा के क्रम को कुछ सक्षिप्त रूप मे परिवर्तित किया है, जो आज प्रचलित है। इसमे ४० दिन का क्रम है। कुछ स्थानो को छोड दिया है।"

वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त व्रज के अन्य भक्ति सम्प्रदायो के पास भी इस सम्बन्ध मे जो सामग्री हो, प्रचार मे आनी चाहिए।

जगतनन्द का ब्रज-वर्णन—वल्लभ सम्प्रदाय के कवि जगतनन्द ने 'श्री गोस्वामी जी की 'वन-यात्रा', 'ब्रज-वस्तु-वर्णन' और 'ब्रज गाँम वर्णन' नामक तीन रचनाएँ ब्रज के सम्बन्ध मे बनाई है। इनमे से प्रथम मे गोस्वामी विट्ठलेश जी ने स० १६२४ भादो बदी १२ को 'वन-यात्रा' का विचार कर भक्तो के साथ जो यात्रा की थी उसका वर्णन ७६ पद्यो मे किया गया है। दूसरी रचना मे व्रज के ८४ कोस की परिक्रमा मे १२ वन, २४ उपवन, १० वट, ७ चरण चिन्ह, ५ पर्वत, ७ देवी, २ दासी, ८ महादेव, ४ कदम-खण्डी, ७ गुसाई जी की बैठक, ६ बलदेव जी, २ ठकुरानी घाट, २ लीला, ३ हिंडोरा, ७ दानलीला, ४ सरोवर, ६ पोखर, २ ताल, १० कूप, १६ घाट, ७ डोल, १६ मन्दिर, ३३ रास-मण्डल, १५९ कुण्ड और ७५ ठाकुर, आते हैं। उन सबकी नामावली ८७ दोहो मे दी है। इसमे कुल ४३२ ब्रज वस्तुओ की तालिका है। तीसरी रचना "ब्रज-ग्राम वर्णन" ११० दोहो मे है। इस प्रकार ब्रज सम्बन्धी तत्कालीन अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानो व मन्दिरों आदि की जानकारी कवि जगतनन्द के इन तीन ग्रन्थो से मिल जाती है। ये तीनो ग्रथ शुद्धाद्वैत ऐकेडमी, विद्या-विभाग, काकरौली से सवत् २००२ मे प्रकाशित "जगतानन्द" नामक ग्रन्थ मे छप चुके हैं। सम्पादक पो० कठमणि शास्त्री की सूचनानुसार विद्या-विभाग, काकरौली के सग्रह मे ब्रज-यात्रा के एक गद्य वर्णन की भी प्रति है। वह उक्त 'जगतनन्द' के पद्यबद्ध 'वन-यात्रा' के समान ही है। गद्य वर्णन मे सवत् १६२८ की यात्रा का वर्णन है और पद्य-रचना मे सवत् १६२४ की यात्रा का। गद्य वर्णन ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

"सवत् १६२८ फागन् बदी ७ श्री गोकलवास की-यौ, तबउपरांत एक समय भाद्रवा बदी १२ सेन आरती उपरांत श्री गुसाईं जी के प्रिय पुत्र श्री गोकुल नाथ जी को सग लेकें समर्ख के सकोच तें कोउ न जाने मथरा पधारे रात्रि मथुरा जाय रहे।"

बीकानेरी यात्रा-विवरण—वल्लभ सम्प्रदाय के यात्रा-वर्णन विस्तारपूर्वक हैं ऐसा तो नही, पर बीकानेर के एक भक्त महेश्वरी की ब्रज-यात्रा, जो उसने सवत् १७१३ मे की थी, का विवरण २ वर्ष हुए अनूप सस्कृत लायब्रेरी के एक गुटके में मुझे देखने को मिला। मुझे वह विवरण बहुत महत्त्व का लगा। क्योकि सवत् १७२६ में औरगजेब ने मथुरा और ब्रज को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था, उससे यह १३ वर्ष पहले का यात्रा-विवरण है। इससे औरगजेब के नष्ट करने से पहले

गोवर्धन, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन मे कौन-कौन से मन्दिर, कुण्ड आदि यात्रा-स्थल थे तथा उस समय गोवर्धन जी[१] के मन्दिर मे १० वार किस-किस समय व क्या-क्या भोग लगता था, इसका भी अच्छा विवरण मिलता है। १० वार के भोग मे ८ वार दर्शन होते थे, ४ आरतियाँ होती थी। शयन के समय ४ ढोलिये विछाये जाते, पास मे मिठाई व पकवान के झाव व जल की झारी रखी जाती थी। उस समय सस्तापन भी कितना अधिक था कि गोवर्धन नाथ जी की भक्ति भोग के लिए ३-३॥ हजार गायें, ५०० भैंसें थी और रोजाना का खर्च करीव ४० रुपये का था।

यात्रा का विवरण व्रज से आकर कुछ दिनो वाद लिखा गया है। इसीलिए लेखक ने अपनी इस याददाश्त मे कुछ स्थानो के नाम याद न रहने का भी उल्लेख किया है। गोवर्धन नाथ जी की यात्रा स० १७१३ के आसोज सुदी १३ के प्रात काल में दर्शन करने के द्वारा आरम्भ होती है। फिर श्री नाथ जी की परिक्रमा, जो गोवर्धन पर्वत की ८-९ कोस की वड़ी परिक्रमा है उसमे जो मन्दिर, मूर्त्तियाँ, तीर्थ, कुण्ड, स्नान के स्थान आदि थे उन सवकी नामावली दी है और कार्तिक वदी ८ को लाखो आदमियो के आने की वात लिखी है। श्री गोविन्द देव जी के यहाँ मनो सोना दान देने का उल्लेख है और जितने अहनाण (स्मृति चिन्ह) उस समय तक सुरक्षित थे, उन सव का विवरण दिया है। मथुरा के ठाकुर-द्वारे की यात्रा स० १७१३ के आसोज सुदी १५ को की गई। उस समय केशवराय के मन्दिर मे 'मथरामल' जी, उनके दाहिने ओर 'केशवराय' और वायें ओर 'कल्याणराव' की मूर्ति का उल्लेख है। "पायड़ीये राजा वरसग दे रो" लिखा है। इसी प्रकार अक्रूर घाट गोपीनाथ जी के मन्दिर को 'मोहता मधुसूदन' ने वनवाया लिखा है। गगाजी के सोरम घाट की तीर्थ-यात्रा स० १७८३ की कार्तिक वदी ८ को की गई। इससे पूर्व उनके पूर्वज गोपाल जी नरसिंघ के स० १६९५ और स० १७०९ मे हर जी के आने का उल्लेख है। मथुरा और गोकुल के तीर्थ-गुरु के नाम भी इस विवरण मे मिल जाते है। सक्षेप मे यह व्रज-यात्रा विवरण वहुत ही महत्त्व का है। वीकानेरी भाषा में लिखा मूल विवरण आगे दे रहे हैं।

स० १७१३ की व्रज-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण विवरण

श्री गोवरधन नाथ जी रै दुवारे इये[२] जिनस श्री ठाकुरा री आरती दरसण हुवे छै, ने इये जिनस भोग लागे छै।

१. परभात मंगला आरती हुवे, ताहरा मांखण ऽ॥, वूरो से० ५ आरोगे।

स० १७१३ आसोज सुद १३ परभात सुदरसण कीयो।

२. सगार दन[३] घडी चार चढ़िया हुवं, दरसण हुवं, आरती ने न ई ने श्री ठाकुर मेवो पकवान चारोली भोग लागे। मेवो ऽ॥ हेक।

---

१ 'गोवर्धन जी' से लेखक का अभिप्राय भगवान् श्री नाथ जी से है। २. ये। ३ दिन।
—सम्पादक

३ गोपीवल्लभ भोग लागे, पकवान मठडी पूडी आरोगे। दरसण नं हुवे। श्री ठाकुरा नु पकवान झावा[1], २ झाझा[2] भोग लागे।

४ गुवाल रो दरसण हुवे, ने श्री ठाकुर घिरत दूध झुग झुगो आरोगे।

५. राज भोग आरती हुवे, श्री ठाकुरा नु सरव भोजन, छत्तीस भोजन, सगला पकवान खटरस, तीवण[3], खीर, सिखरण, तरकारी अथाणा, घंणा मिष्ठान पकवान भोग लगे।

६ सख नाद उत्थापन दरसण हुवे, श्री ठाकुर मिठाई, लाडूवा, पकवान, मिठडी, सकरपारा आरोगे, से ऽ॥ रे टाणे, झाझा।

७. भोग सरीरो दरसण हुवे। श्री ठाकुर दुध, मिस्री, बूरो आरोगे।

८. सन्ध्या आरती हुवे। श्री ठाकुर दूध पकवान सिखरी आरोगे।

९ गुवाल दरसण न ई। श्री ठाकुर पकवान आरोगे।

१० सेन[4] आरती हुवे। दरसण सीयाते[5] हुवे छै ने उन्हाले[6] नहीं हुव तों। श्री ठाकुर दूध भात खीर आरोगे।

इये जिनस श्री ठाकुरा नु दस बखत भोग लागे छै। ने दरसण बखत आठ[7] (८) हुवे छै। आरती ४ हुवे, १ मगला, १ राज भोग, १ सन्ध्या, १ सेन। पछै श्री ठाकुर पौढे-ताहरा ठोडा ४ ढोलिया बिछाडी जै, पाथरी[8] जे, पाणी जल री झारी भर राखी जे छै। श्री नाथ जी रे गाया हजार ३ त (था) ३॥ छै, भैंस्या सत ५ हेक[9] छै। रोजांनो खर्च रुपया ४०) हेक रो छै।

श्री नाथ परकमा —श्री नाथ जी री परकमा श्री गोवरधन परबत दोली बडी परकमा कोस ८ (आठ) तथा ९ (नव) री छै परकमा माहे इतरा[10] तीरथ कुण्ड छै। इतरा श्री ठाकुरां रा दरसण छै।

१ श्री महादेव जी रगेस्वर गोरा पारवती समेत। मूरत द्रिव्य छै। श्री गोवर्धन पर्वत उपर। श्री नाथ जी रे मन्दिर रे डावे[11] पासे देहरो छै। अद्भुत मुरत छै। परकमा माहे।

१. श्रीदाणाराय जी रो देहरो जठे[12] ठाकुरां गोरस रो दाण लियो छै, तठै छतडी २ छै। घाटी छै ऊपर देहरो।

२. मांनसी—गगा स्नान कीजे, ने ब्रिहम कुण्ड स्नान कीजे। ऊपर ठाकुर दुवारा ३ छै ताहरा दरसण।

१. श्री हरिदेव जी रो आद[13] मूरत। अदभूत श्री नाथ जी सरीखी[14] छै। देहरो बडो छै। कछवाहा रो करायो।

२ माणसी-गगा ब्रह्म कुण्ड ऊपर।

(१) श्री केसोराय जी रो देहरो।

---

१ वढ़िया। २ भरपूर वढिया। ३ शाक। ४ शयन। ५ शीतकाल। ६ ग्रीष्म-काल। ७ भोग को छोड़कर। ८ बिछाना। ९ अनुमान। १०. इतने। ११. बांयें। १२ जहाँ। १३ प्राचीन, आदि रूप। १४ समान।

(२) श्री रसकनाथ जी रो देहरो ।

राधाकुण्ड, किसन कुण्ड २ बड़ा कुण्ड छै । बडी मेहमा छै । उठे सनान कीजे छै । उपर श्री राधाकिसन जी रो देहरो छै, दरसण कीजे, उपर कुंज घणा छै । बड़ी मेहमा कुण्डा री । काती वदी ६ री छै । काती वद ६ आदमी लाखा वन्ध जात आवे छै ।

श्री बलदेव जी रो देहरो ने सकरसण कुण्ड सनान कीजै ऊपर श्री महादेव जी रो पण[1] देहरो छै । श्री गोवद देव जी रो देहरो, श्री ठाकुरो रो दरसण ने गोवद कुण्ड सनान कीजे । अजायब ठौड छै । सोनो मण इठे दान कीजे । अपछर कुण्ड सनान कीजै ।

१ सुरही-कुण्ड सनान कीजे ।

इन्द्र रो गरभ गालियो[2] पछे, इन्द्र श्री ठाकुरो कने[3] आयो, उवा ठौर अद्भुत छै । इतरा अेहनाण[4] सांवता[5] छै ।

श्री ठाकुर जिके[6] सिला ऊपर बैठा हुता, सु[7] सिला श्री ठाकुरां रो चरण

१ बरस ७ तथा ८ (आठ) रे बालक हुवे, तिसडो[8] ।

इन्द्र री खडावे[9] रो पग, हेके पग तणे अस्तुत[10] कीवी छै ।

इन्द्र रे हाथी अैरावत रा पग २ ।

कामधेनु गाय रा खुर २ ।

सुदुर सिला,[11] जठे[12] गोपीयो रे सगार नु सदुर जो इजे[13] पछै सिला म्हा[14] पैदा कियो । सु सिला म्हा सदुर रो रंग नीसरे[15] छै ।

गोरधन पूजा वल इन्द्र नु दीज[16] तो सु श्री ठाकुरां लीयो ।

इये जिनस परवत दोली[17] परक्मा, ते मांहे अे तीरथ दरसण छै ।

मथुरा—श्री मथुरा मांहे इतरा ठोडा तो अद्भुत छै ।

१ श्री जमना जी घाट सनानकर भद्र[18] हुई जे । वीच विसरायत घाट छै ने पसवाड़े २ घाट, २४ बीजा छै । वीच मदनायक विसरायत घाट छै । कस मारनै श्री ठाकुरां विसराम लीयो ते विसरायत कहाणी[19] । बीजाई[20] घाटा २४ रा ही नाम छै पण सिरो विसराय[21] ।

१ श्री ठाकुर दुवारा स० १७१३ आसोज सुद १५ दरसण कीयो ।

१ श्री केसोराय जी रो वडो दुवारो अद्भुत छै । वीच ! ठाकुर श्री मयरामल जी छै । जीवणे[22] पासे श्री केसोराय जी छै, डावे[23] पासे श्री कल्याण राज जी छै । पण[24] देहरो केसोराय जी रो कहावे । पाइदीये राजा वरसगदे रो ।

२ श्री रुघनाथ जी ठोडै[25] २ दुवारा छै । सिखर बध छै ।

---

१ भी । २ गला । ३ पास । ४ चिह्न । ५ साबत, पूरे रूप में विद्यमान । ६ जिस । ७ वही । ८ वैसा । ९ खड़ाऊ । १० स्तुति । ११ सिन्दूर । १२ जहां । १३ देखना । १४ में । १५. निकलता है । १६ नहीं दी । १७ चारों ओर । १८ सिर-मुंडन । १९ कहा गया । २० अन्य भी । २१ भूल गया । २२ दाहिनी ओर । २३ बाँयीं । २४ पर । २५ स्थान पर ।

१ मंदिर छै। बोहत अद्भुत श्री ठाकुर बिराजे छै।

१ नरसघ जी दुवारो वोहत अद्भुत मूरत छै।

१ श्री ठाकर, देवकी, वसदेव, जसोदानन्द, री पाठ से ५ सरव छै।

१ श्री सावलो जी।

१ बीजा मवर ठोडा १० हेक तो श्री ठाकुरा रा दरसण कीया।

× × ×

१ श्री महादेव जी भूतेस्वर अद्भुत देहरो छे ने दरसण छै।

१ श्री महादेव जी भवानीसकर अद्भुत छै।

१ श्री महादेव जी गोकरनेस अद्भुत मूरत दिव[1] छै।
इछना[2] रो पु रणहार, किम्नन गगा उपर देहरो छै।

१ बीजा ही महादेव जी ठोडा ५ तथा ७ दरसण कीया।

१ देवी जी महा विद्या विद्याधरी बडी मेहमा छै।
इये जनस[3] श्री मथरा जी री मेहमा, दरसण छै सखेप सा माडीया[4] छै।

× × ×

१ अकरूर घाट सनान कीजै।

१ श्री गोपीनाथ जी रो दुवारो, अकरुर घाट उपर मुद्दते मवसुदन जी रो करायो श्री ठाकर अद्भुत मुरत छै।

× × ×

तीरथ गुर श्री मथरा जी माहे पूज्य गोपाल जी कचरेजी रा छोरु, दुवारो चोथे हरचन्द जे वृन्द रो छै।

वृन्दावन—श्री वृन्दावन तीरथ ढोडांरी मेहमा।

१ श्री कालिन्द्री सनान जठे कालो नाग नाथीयो[5] तठै।

१ चीर घाट सनान।

१ केसी घाट सनान।

१ ब्रिह्मन कुण्ड सनान।

इतरा[6] श्री ठाकुरा रा दरसण कीया।

१ श्री मदन मोहन जी	१ श्री गोवंद देव जी
१ ,, राधा वलभ जी	१ ,, वांको बिहारी जी
१ ,, गोपी नाथ जी	१ ,, जोडी ठाकुर जी
१ ,, राधा माधव जी	१ ,, किसोर किसोरी जी
१ ,, राधा किसन जी	१ ,, व्यास जी रा ठाकुर जी
१ ,, राधा रमण जी	१ ,, नरसिंघजी
१ ,, राधा मोहन जी	१ ,, रसक रसीलो जी

---

१ दिव्य। २ इच्छा। ३ वस्तुएँ। ४. लिखा गया। ५ नाथ डाल के दमन किया। ६ इतने।

१ मदिर छै। वोहत अद्‌भुत श्री ठाकुर विराजे छै।
१ नरसघ जी दुवारो वोहत अद्‌भुत मूरत छै।
१ श्री ठाकर, देवकी, वसदेव, जसोदानन्द, री पाड से ५ सरव छै।
१ श्री सावलो जी।
१ बीजा मदर ठोडा १० हेक तो श्री ठाकुरा रा दरसण कीया।

× × ×

१ श्री महादेव जी भूतेस्वर अद्‌भुत देहरो छे ने दरसण छै।
१ श्री महादेव जी भवानीसकर अद्‌भुत छै।
१ श्री महादेव जी गोकरनेस अद्‌भुत मूरत दिव[1] छै।
इछना[2] रो पु रणहार, किम्नन गगा उपर देहरो छै।
१ बीजा ही महादेव जी ठोडा ५ तथा ७ दरसण कीया।
१ देवी जी महा विद्या विद्याधरी वडी मेहमा छै।
इये जनस[3] श्री मथरा जी री मेहमा, दरसण छै सखेप सा माडीया[4] छै।

× × ×

१ अकरूर घाट सनान कीजै।
१ श्री गोपीनाथ जी रो दुवारो, अकरुर घाट उपर मुद्दते मदसुदन जी रो करायो श्री ठाकर अद्‌भुत मुरत छै।

× × ×

तीरथ गुर श्री मथरा जी माहे पूज्य गोपाल जी कचरेजी रा छोरु, दुवारो चोवे हरचन्द जे वृन्द रो छै।

वृन्दावन—श्री वृन्दावन तीरथ ढोडारी मेहमा।

१ श्री कालिन्द्री सनान जठे कालो नाग नाथीयो[5] तठै।
१ चीर घाट सनान।
१ केसी घाट सनान।
१ ब्रिह्मन कुण्ड सनान।

इतरा[6] श्री ठाकुरा रा दरसण कीया।

१ श्री मदन मोहन जी	१ श्री गोवद देव जी
१ ,, राधा वलभ जी	१ ,, बांको बिहारी जी
१ ,, गोपी नाथ जी	१ ,, जोडी ठाकुर जी
१ ,, राधा माधव जी	१ ,, किसोर किसोरी जी
१ ,, राधा किसन जी	१ ,, व्यास जी रा ठाकुर जी
१ ,, राधा रमण जी	१ ,, नरसिंघजी
१ ,, राधा मोहन जी	१ ,, रसक रसीलो जी

---

१ दिव्य। २ इच्छा। ३ वस्तुएँ। ४. लिखा गया। ५ नाथ डाल के दमन किया। ६ इतने।

१ श्री गोपी वल्लभ जी	१ श्री चकोर चकोरी जी
१ ,, चिकंनिया ठाकुर	१ ,, मुरली मनोहर जी
१ ,, गोपी वल्लभ जी	१ ,, चीर विहारी जी
१ ,, रसक नाथ जी	१ ,, कुंज विहारी जी
१ ,, काली मरदन जी	१ ,, वन्द्रावन चन्द जी
१ ,, महादेव जी गोपेश्वर	१ ,, जुगल किसोर जी
१ ,, वन्द्रा देवी	

१ वशीवट श्री गोपेश्वर महादेव कनै, १ श्री ठाकुर रा दरसण ५ तथा कुंजा माहे फिरिया दरसण किया। ७ वीजाई[1] कीया। सुं नाम चीत[2] नावैं। बडी ठौड छै श्री ठाकुरां रो नित-वासो[3] उठे[4] छै हीज।

× × ×

गोकुल जी—श्री गोकुल जी ठोडा मेहमा।

१ जसोदा घाट सनान।

१ ठकुराणी घाट संनान।

गोकुल—श्री गोकल जी परे कोसे ४ हेके श्री देवी जी रा देहरा।

१ वंद्री देवी जी।

१ आणदी देवी जी।

श्री गुसाईं जी रे श्री ठाकुर दुवारा दरसण कीया—

१ श्री नवनीत राय जी	१ श्री मथरा नाथ जी
१ श्री गोकल चन्द जी	१ श्री दुवारका नाथ जी
१ श्री गोकल नाथ जी	१ श्री कल्याण राय जी

श्री गंगा जी सोरम घाट तीरथ सं० १७१३ काती वदी ८ पोहता। तीरथ गुरु प्रा० वनमाली जग नायाणी छै। पूज्य गोपाल जी नर संघ स० १६८५ गया हुंता[5], तद[6] कीयो थो। पछे[7] चि० हर जी ई स० १७०६ गया हुंता।

श्री गगा जी सोरम घाट मेहमा[8] अयक है।

१ चक्रघाट संनान नित हुवै। उठे[9] भद्र[10] हुई जे उवे[11] ठोड़ी।

× × ×

वीजा घाट ११ छै, मेहमा उवाई[12] घाटा रा छै संनान री।

१ सूरज घाट	१ गऊ घाट उठे अस्त[13] पडवाई जै
१ कुडल घाट	१ ब्रह्म घाट
१	१ भैरव झाफ घाट
१ रणमोचन घाट	१ भगीरथी री पीपली—कोस १॥ हेके छै।
१ पापमोचन घाट	१ वुढ गंगा भागीरथ री पीपली कहे छै।
१ कुडल वीजोई। उठे सनान कीजै।	
१ रूप घाट।	

१ अन्य भी। २ स्मरण नहीं हो रहा है। ३ नित्य रहना। ४ वहाँ। ५ थे। ६ तब। ७. पीछे। ८ महिमा। ९ वहाँ। १० सिर मुंडन। ११ उसी स्थान। १२. कहा। १३. प्रक्षेपन।

१ श्री गोपी वल्लभ जी	१ श्री चकोर चकोरी जी
१ ,, चिकंनिया ठाकुर	१ ,, मुरली मनोहर जी
१ ,, गोपी वल्लभ जी	१ ,, चीर बिहारी जी
१ ,, रसक नाथ जी	१ ,, कुंज बिहारी जी
१ ,, काली मरदन जी	१ ,, वन्द्रावन चन्द जी
१ ,, महादेव जी गोपेश्वर	१ ,, जुगल किसोर जी
१ ,, चन्द्रा देवी	

१. वंशीवट श्री गोपेश्वर महादेव कनें, १ श्री ठाकुरं रा दरसण ५ तथा कुंजा माहे फिरिया दरसण किया। ७ वीजाई[1] कीया। मुं नाम चीत[2] नावें। वडी ठौड छै श्री ठाकुरा रो नित-वासो[3] उठे[4] छै हीज।

× × ×

गोकुल जी—श्री गोकुल जी ठोडा मेहमा।

१ जसोदा घाट संनान।

१ ठकुराणी घाट संनान।

गोकुल—श्री गोकल जी परे कोसे ४ हेके श्री देवी जी रा देहरा।

१ वंद्री देवी जी।

१ आणदी देवी जी।

श्री गुसाई जी रे श्री ठाकुर दुवारा दरसण कीया—

१ श्री नवनीत राय जी	१ श्री मथरा नाथ जी
१ श्री गोकल चन्द जी	१ श्री दुवारका नाथ जी
१ श्री गोकल नाथ जी	१ श्री कल्याण राय जी

श्री गंगा जी सोरम घाट तीरथ सं० १७१३ काती वदी ८ पोहता। तीरथ गुरु प्रा० वनमाली जग नायाणी छै। पूज्य गोपाल जी नर सघ सं० १६८५ गया हुंता[5], तद[6] कीयो थो। पछै[7] चि० हर जी ई स० १७०६ गया हुंता।

श्री गगा जी सोरम घाट मेहमा[8] अयक है।

१ चक्रघाट सनान नित हुवै। उठे[9] भद्र[10] हुई जे उवे[11] ठोड़ी।

× × ×

वीजा घाट ११ छै, मेहमा उवाई[12] घाटा रा छै संनान री।

१ सूरज घाट	१ गऊ घाट उठे अस्त[13] पडवाई जै
१ कुडल घाट	१ ब्रह्म घाट
१	१ भैरव झाफ घाट
१ रणमोचन घाट	१ भगीरथी री पीपली—कोस १॥ हेके छै।
१ पापमोचन घाट	१ वुठ गंगा भागीरथ री पीपली कहे छै।
१ कुडल वीजोई। उठे संनान कीजे।	
१ रूप घाट।	

१ अन्य भी। २ स्मरण नहीं हो रहा है। ३ नित्य रहना। ४ वहां। ५ थे। ६ तब। ७. पीछे। ८ महिमा। ६ वहां। १०. सिर मुंडन। ११ उसी स्थान। १२. कहीं। १३. प्रक्षेपन।

: ४ :

मथुरा सम्बन्धी रेखाचित्र: वन-यात्रा

स्वर्गीय श्री एफ० एस० गाउस

रूपान्तरकार : कन्हैयालाल 'चचरीक', नई दिल्ली

[एफ० एस० ग्राउस, एम० ए० , बी०, सी०, एस०, ने आज से लगभग ८७ वर्ष पूर्व सन् १८७२ मे 'इण्डियन एन्टीक्वरी' के प्रथम अक मे 'स्केचैज़ ग्रान मथुरा' शीर्षक से 'वन-यात्रा' उपशीर्षक के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण शोध निबन्ध प्रस्तुत किया था। यह लेख ब्रज-यात्रा क्षेत्र के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। उस लम्बे लेख को यहाँ पूरा देना स्थानाभाव के कारण सम्भव नही, अत उसका सक्षिप्त रूपान्तर ही यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। इस लेख से आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व की ब्रज की स्थिति तथा उसके सम्बन्ध मे इस पाश्च्यात विद्वान की जानकारी का रोचक परिचय प्राप्त होता है। — सम्पादक]

ब्रज-मण्डल—चीनी यात्री ह्वेनसाग ने जिसने सातवी शताब्दी मे भारत मे पदार्पण किया था, अपने भ्रमण-वृतान्तो मे मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ९५० मील माना है। उसने लिखा है कि "*यहाँ की मिट्टी बड़ी उपजाऊ थी और विशेषतया अनाज और* कपास की उपज के लिए अच्छी थी। आमो के इतने बाग थे कि ऐसा लगता था जैसे जगल हो। आम दो प्रकार के होते थे एक तो छोटे जो पकने पर पीत वर्ण के हो जाते थे, दूसरे बडे जो सदैव हरे रहते थे।" इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि मथुरा राज्य राजधानी के पूर्व मे मैनपुरी की ओर फैलाव मे अधिक था, क्योकि उधर ही आमो के घने बाग थे। जब कि पश्चिमी मथुरा राज्य में आमो के बगीचे लगाने के लिए विशेष श्रम और सतर्कता की आवश्यकता थी। बौद्ध मठो और स्तूपो के भग्नावशेष भी प्रायश मैनपुरी के आस-पास के गाँवो मे मिलते है। इस बात की बडी सम्भावनाएँ है कि चीनी यात्री के भ्रमण-काल मे मथुरा-राज्य के अन्तर्गत आगरा का कुछ भाग, शिकोहाबाद का पूरा भू-भाग और मैनपुरी का मुस्तफाबाद परगना भी सम्मिलित था।

यमुना के दाहिने किनारे पर कोसी[1] और छाता[2] परगना है और बायी

---

१ 'कोसी' दिल्ली मार्ग पर स्थित इस जन-प्रदेश का प्रमुख 'पशु बाजार' है। यह 'कुशस्थली' का अपभ्र श समझा जाता है।

२ 'छाता' छत्र का अपभ्र श है। ऐसी जनश्रु ति है कि इस स्थल पर श्री कृष्ण ने छत्र-धारण लीला की थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि यहां सरायों की छत्तरियों से छाता बना है।

श्रोर नोहझील[1] श्रोर मॉट[2] तथा महावन का श्राधा परगना श्रोर पूर्व का वह भाग है जहाँ तक कि बल्देव स्थित है। वैसे भी व्रज का क्षेत्रफल ८४ कोस माना गया है। पश्चिम मे चरागाह श्रोर जगली भू-भाग की श्रधिकता थी श्रोर श्रभी तक वहुत से गाँवो मे जगली पेडो की पत्तियाँ फैली हैं जिन्हे श्रामतौर पर—घना, झाडी, वन श्रोर खण्डी श्रादि नामो से पुकारा जाता है। सवत् १८९४ यानी सन् १८३८ मे जो भयकर श्रकाल पडा था उस समय लोगो ने जमीनो पर श्रधिकार छोड़ दिया था श्रोर इधर-उधर लोगो को रोजगार देने के लिए सड़कें वनवाई गई थी। प्राय प्रत्येक स्थान कृष्ण श्रोर राधा की जीवन-लीला से सम्बन्धित है।

१६वीं शताब्दी के श्रन्त तक समस्त व्रज जनपद वजर था श्रोर यत्र-तत्र विखरी हुई झोपड़ियाँ मात्र थी श्रोर श्राने-जाने के लिए केवल एक ही रास्ता था। श्रधिकाश तालाव श्रोर मन्दिर जिनके कि पीछे वैभवमयी गाथाश्रो की रोचक पृष्ठ-भूमि है वरसाने के श्री रूपराम ने १७४० के श्रास-पास निर्मित कराये है श्रथवा श्रभी हाल के वनाए हुए हैं। व्रज के पेडो मे पीलू, वेर, छोकर, कदम्व, पर्सेंडू, पापरी श्रोर श्रन्य प्रकार की झाड़ियाँ, करील श्रादि प्रमुख हैं।

वन-यात्रा—समस्त जनपद मे १२ वन श्रोर २४ उपवन माने गये हैं। वारह वन हैं—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, वहुलावन, कामवन, खदिरवन, वृन्दावन, भद्र-वन, भाडीरवन, वेलवन, लोहवन एव महावन।

चौवीस उपवन हैं—गोकुल, गोवर्धन, वरसाना, नन्दगाँव, सकेत, परमार्द्र, श्रड़ीग, शेषसाई, माँट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्री कुण्ड, गन्धर्ववन, पारसोली, विलछू, वच्छवन, श्रादि वदरी, करहला, श्रजनोख, पिसाया, कोकिलावन, दधिगाँव, कोटवन श्रोर रावल।

इनकी निश्चित सख्या के वारे मे वहुत से स्थानीय पण्डितो मे मतभेद है। इन वन-उपवनो मे भी वहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ जगल झाडियो का सर्वथा श्रभाव है श्रोर उनके पीछे 'वन' शव्द सार्थक नही लगता। पहले वनो पर प्रकाश डाला जा रहा है—

(१) मधुवन—मथुरा की दक्षिण-पश्चिम दिशा मे कोई चार-पाँच मील की दूरी पर महोली गाँव के निकट मधुवन स्थित है। पुराणो के श्रनुसार इस जगल मे 'मधु' दैत्य का श्राधिपत्य था। उसी के नाम पर इसका नाम 'मधुवन' प्रसिद्ध था। उसकी मृत्यु होने पर उसके पुत्र 'लवण' ने इस पर श्रपना श्रधिकार जमा लिया। उसने विश्व-विजय की महती श्राकांक्षा मे प्रेरित होकर श्रयोध्या के तत्कालीन

---

१ नोह झील मथुरा से लगभग ३० मील की दूरी पर एक उजाड़ कस्वा है जो ६ मील लम्बी झील के किनारे वसा है, जो किसी वाढ की देन लगती है। जाटों का वनाया उजड़ा हुश्रा किला श्रोर मुसलमानों की टूटी-फूटी दरगाह भी है। टूटे-फूटे मन्दिरों के चिह्न भी हैं।

२ यमुना के वाएँ तट पर छोटा सा गाँव है। कृष्ण ने वचपन में यशोदा के दधि भरे मटकों (माँटों) को जो यत्र-तत्र रखा था उसकी एक स्मृति। वैष्णव पुराणों में वर्णित प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल—भाडीर-वन श्रोर भद्रवन के निकट वसा है।

महाराजा राम से लडाई का प्रस्ताव किया। महाराजा राम ने अपने सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न को लवण दैत्य से युद्ध करने के लिए भेजा। युद्ध मे लवण मारा गया और शत्रुघ्न ने सारे घने जगल को साफ कराया जिसके कि बल पर दैत्य जीत की कामना लिये रहता था। इसी स्थान पर शत्रुघ्न ने 'मधुपुरी' नगरी बसाई। बहुत से स्थानीय विद्वान त्रुटि से मथुरा का दूसरा नाम ही मधुपुरी बताते है, जब कि सत्यता यह है कि मथुरा शुरू से ही यमुना तट पर बसी हुई है और मधुवन यमुना से कई मील दूर है। स्थायी महत्त्व के समस्त सस्कृत साहित्य मे यही भ्रम वर्तमान है।[1] उदाहरण के लिए 'हरिवश पुराण' में भी यही त्रुटि पायी जाती है। हरिवश मे 'तालवन' को गोवर्धन के उत्तर मे स्थित बताया गया है। भागवत मे वृन्दावन के निकट कहा गया है, जब कि वास्तव मे यह गोवर्धन के दक्षिण-पूर्व मे है। इस विवाद मे न पडते हुए, यह सही है कि व्युत्पत्ति के आधार पर और भौगोलिक कारणो से मथुरा और मधुपुरी सदैव अलग-अलग जगहें थी। महोली जो कि मधुवन के निकट प्राचीन और परम्परागत स्थान है सस्कृत 'मधुपुरी' का प्राकृत रूप है। वररुचि (II, २७) के अनुसार 'ह' को 'ध' की जगह उच्चरित किया जाता है। (जैसे बधिर की जगह बहिर या बहिरा=जिसे कम सुनाई दे) अत मधुपुरी प्राकृत मे महुपुरी बोली जायगी। सूत्र II, २ के अनुसार पुरी का 'प' उच्चारण मे आवश्यक नही समझा गया, फलत महुरी बिगडते-बिगडते 'महोली' हो गया। अकबर के राज्य-काल मे और उसके अनन्तर भी यह गाँव अपने क्षेत्र का प्रमुख स्थान था। इस पवित्र वन के निकट 'मधु-कुण्ड' नामक ताल है जहाँ पर कि कृष्ण के नाम पर 'चतुर्भुज-मन्दिर' बना है। यहाँ भादो की कृष्णा एकादशी को मेला जुडता है।

अन्य वन— (२) **ताल वन**—मथुरा से लगभग ६ मील की दूरी पर भरतपुर की सडक पर है। यह तारसी गाँव के निकट है जिसके कि बारे मे कहा जाता है कि उसे ताराचन्द नामक एक कछवाहा ठाकुर ने बसाया था जो कि थोडी दूर पर स्थित सतोहा[2] से आकर यहाँ रहने लगा था। यहाँ भादो की शुक्ला एकादशी को वार्षिक मेला जुडता है। पुराणो मे लिखा है कि इस दिन बलराम ने 'धेनुक' दैत्य का बध किया था जिसने कि गधे का वेष धारण करके कृष्ण और बलराम पर आक्रमण किया था। उसी स्मृति मे यह मेला आयोजित किया जाता है। (३) **कुमुदवन** और (४) **बहुला-वन** करीब-करीब हैं। एक ऊँचागाँव मे और दूसरा बाटी मे, जो कि बहुलाबाटी से मिलता-जुलता है। पहले के साथ कोई गाथाएँ नही जुडी है जब कि दूसरे के साथ गाय और शेर की भिडन्त की गाथा गुँथी हुई है जिसमे गाय जीती थी।

---

१ ग्राउस महोदय को यह भ्रम इसलिए हुआ कि सम्भवत उन्हें समय-समय पर यमुना की बदलती हुई धारा के प्रवाह के सम्बन्ध में जानकारी नहीं थी। —**सम्पादक**

२. 'सतोहा' एक पवित्र सरोवर है। यह महाराजा शान्तनु के नाम पर बनाया गया है। इसे शान्तन कुण्ड' भी कहा जाता है। ऐसी जनश्रुति है कि इस स्थान पर, यहाँ राजा शान्तनु ने पुत्र पाने के लिए घोर तपस्या की थी। अन्त में गगा जी ने उन्हें भीष्म जैसा बलशाली पुत्र दिया जो कि महाभारत के योद्धा थे। हर इतवार को पुत्रोत्पत्ति की कामना करने वाली स्त्रियाँ यहाँ स्नानार्थ आती हैं। भादों की शुक्ल अष्टमी को यहाँ मेला भी जुड़ता है।

यहाँ 'कृष्ण कुण्ड' नाम का एक सरोवर है जिसके किनारे पर 'बहुला गाय' का मन्दिर है ।

(५) काम कस्बे के निकट ही कामवन है। यह मथुरा से ३६ मील दूर भरतपुर राज्य के अन्तर्गत तहसील का केन्द्र है । (६) खादिरवन छाता से लगभग ४ या ५ मील की दूरी पर स्थित है, खैरा गाँव के बाहर बिलकुल सटा हुआ । वररुचि के नियम(II २) के अनुसार 'खादिरवन' के 'द' का उच्चारण नही किया जाता । फलत 'खैरागाँव' उसी का विकसित रूप है । इस वन मे कदम्ब, पीलू, छोकर आदि बहुतायत से हैं । इसके निकट ही 'कृष्ण कुण्ड' नामक विशाल सरोवर है, बल्देव मन्दिर भी है और गोपीनाथ का भी दूसरा मन्दिर है जिसे कि अकबर के राज्य-काल मे टोडरमल ने बनवाया था । (७) भद्रवन यमुना के बाई ओर माँट से तीन मील दूर है । भागवत मे जिस दावानल के बुझाने का जिक्र है वह वन यही है जिसे जिले के नक्शे मे भूल से 'बहादुर वन' लिख दिया गया है । निकटवर्ती गाँव भदम या भद्रपुर कहलाता है । (८) छाहिरी के नगले के पास भांडीरवन है जहाँ पर कि बेर, हीस आदि कँटीली झाडियाँ पाई जाती हैं । बीच मे खुले हुए स्थान मे आधुनिक ढग का एक छोटा सा 'बिहारी जी' का मन्दिर है, कुआँ है और विश्रामालय है । भाडीरवट भी पास ही है । पुराणो के अनुसार एक दिन ग्वाल-बालो ने इस पेड तक दौड बदी । 'प्रलम्ब' दैत्य भेष बदल कर उन मे आ मिला । जिसे द्वद-युद्ध मे बलराम[1] ने मार डाला । (९) बेलवन यमुना के बाईं ओर जहाँगीर पुर गाँव के निकटवर्ती क्षेत्र मे है । (१०) लोहवन, महावन परगने मे मथुरा से लगभग ३ मील यमुना से परे स्थित है । श्री कृष्ण ने इस वन मे 'लोहासुर' को पछाडा था । यात्रीगण भेंट मे भी 'लोहा' चढाते हैं ।

'मथुरा महात्म्य' मे बारहो वनो का उल्लेख है और अधिकाश श्री कृष्ण और बलराम की पौराणिक गाथाओं से सम्बन्धित हैं । महावन यमुना के बाईं ओर स्थित है । वृन्दावन मे कृष्ण ने अपने शैशव के दिन बिताये थे । ग्वाल-बालो के साथ गायें चराई थीं । ब्रज मे जो चार बडे नगर हैं उनमे मथुरा और गोवर्धन के साथ-साथ महावन और वृन्दावन का नाम भी आता है ।

दूसरी ओर चौबीस उपवन राधिका की लीलाओ से अनुप्राणित हैं । इनमे तीन तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं गोकुल, गोवर्धन और राधा कुण्ड । इनमें से गोकुल सारे सस्कृत-साहित्य मे महावन की तरह ही वनो के अन्तर्गत गिना जाता है । राधा-कुण्ड के कारण ही राधा जी की वर्त्तमान प्रतिष्ठा है । सकेत राधा के घर बरसाना और कृष्ण के पालक-पिता नन्द के निवास नन्दगाँव के बीचो-बीच राधा-कृष्ण के 'पुण्य-मिलन' की पवित्र स्थली है । परमार्द्र भरतपुर की पहाड़ियो मे एक उपेक्षित स्थान है । अडींग, मथुरा और डीग की सडक पर बसा हुआ एक छोटा कस्बा है । १८६८ तक यह

---

१ बलराम को ग्रीक और लैटिन इतिहासकारों ने 'बेलुस' के नाम से 'भारतीय हरक्यूलस' कहा है।

तहसीली का मुख्य केन्द्र था और जिले की राजधानी से केवल ६ मील की दूरी पर है। यहाँ पर प्राचीन कुन्जो का अभाव है । किलोल-कुण्ड नामक सरोवर पवित्र स्थान माना जाता है। शेषसाई—कोसी परगना के अन्तर्गत शेषसाय गाँव के निकट है और ऐसा कहा जाता है कि इस जगह कृष्ण और बलराम ने गोपियो को अपना नारायण और शेष का असली ईश्वरीय रूप दिखाया था।

माँट के आस-पास प्राचीन अवशेष नही मिलते। हाँ, भाडीरवन और भद्र-वन दोनो इसकी सीमाओ पर स्थित हैं । ऊँचागाँव एक पुरानी वस्ती है जहाँ 'लाडली जी' का विख्यात मन्दिर है। खेलवन शेरगढ कस्बे के निकट है। राधा कुण्ड जिसे 'श्री कुण्ड' भी कहा जाता है (यानी पवित्र कुण्ड) गोवर्धन के निकट एक कस्बा है जो मथुरा के पश्चिम मे १५ मील की दूरी पर स्थित है। अरिष्ठ दानव को श्री कृष्ण ने यही मारा था। कहा जाता है कि 'गिरिराज' मे ईश्वरीय प्रेरणा से समस्त पवित्र धाराएँ और तीर्थ स्थान अपना शारीरिक रूप धारण करके एकत्रित हुए और इस युद्ध-स्थल को पावन बनाया। तभी कृष्ण कुण्ड तथा राधा कुण्ड का उद्घाटन हुआ। कार्तिक की कृष्णाष्टमी को अभी भी वे पवित्र आत्माएँ इस स्थान पर उतर-कर इसका निरीक्षण करती हैं। यहाँ विशाल और अति सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं। हिन्दुस्तान के दूरस्थ प्रदेशो से यात्री आते है। पूर्व बगाल मे स्थित मणिपुर के राजा ने भी एक मन्दिर की स्थापना कराई है। १८१७ मे लाला बाबू ने पक्के घाट तैयार कराये हैं और वगालियो ने इसे एक उपनगर बनाकर रहना शुरू किया। तेरहवाँ उप-वन गधर्ववन है, जिसके स्थान के बारे मे निश्चय नही है। पारसोली गोवर्द्धन के पास नक्शे मे और मालगुजारी के खातो मे महमूदपुर के नाम से जानी जाती है। इसके एक ओर सीमा-रेखा पर चन्द्र-सरोवर है। इसके घाट पत्थर के हैं। भरतपुर के राजा नाहरसिंह ने इसका निर्माण कराया था। कहते हैं कि कृष्ण ने गोपियो के साथ अपूर्व लास्य का आनन्दोत्सव मनाने के लिए एक रात को छै महीने के बराबर बना दिया था। बिलछू, बच्छवन और आदि वदरी भरतपुर की सीमा पर उपेक्षित और ऊजड बस्तियाँ है। करहला[1] या करहैला छाता परगना के अन्तर्गत है जो अपनी शानदार कदम्ब-खण्डी के लिए प्रसिद्ध है। अनोख, अजोंखरी—अजन-पोखर से बना है। लेकिन गलत लेखन और गलत उच्चारण अजोंख या अजनोख के नाम से चल पड़ा है। इस स्थान पर कृष्ण ने राधिका के काजल लगाया था।

पिसाया[2] भरतपुर सीमा पर है, कामवन के निकट। कोकिलावन भी इसी के निकट है और वन जगली झाड-झखाडो से भरा एक निरा चरागाह मात्र है। दधि-

---

१. 'करहला' कर हिलना से लिया गया है, राम-लीला में हाथ हिलते हैं। 'वरना गाँव के' पास करहला कुण्ड है जिसका तात्पर्य कर्म हिलना या पाप मोचन समझा जाता है। मैनपुरी जिले में एक 'करहल' नामक भारी कस्वा भी है। करीलों की अधिकता भी है।

२ भूखौ पिसायौ या पिसाया—भूखा-प्यासा से तात्पर्य है। आम तौर पर कृष्ण और राधा की स्मृति दिलाता है। एक दिन राधा श्री कृष्ण से मिलीं जो प्यासे थे। इसी स्थल पर राधा ने कृष्ण को एक बूँद से प्यास बुझाई।

गाँव (या दहगाँव) कोसी परगना के अन्तर्गत है। 'दधि' मे वना है। कोटवन कोसी कस्बे के परे है और व्रज की सीमा वनाकर अपना नाम सार्थक करता है। रावल (राज-कुल के लिए प्रयुक्त) कतिपय गाथाओ के आधार पर सम्मानित राधा का जन्म-स्थान है। महावन के परगने मे यह एक छोटा सा गाँव है जिसमे 'लाड़ली जी' का मन्दिर है।

गोवर्धन का शाब्दिक अर्थ 'गायो को देख-भाल' (रक्षा या वृद्धि) से लगाया जाता है। यह मथुरा के पश्चिम मे १५ मील की दूरी पर प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ है। ४-५ मील लम्बी और औसतन कोई १०० फीट ऊँची मिट्टी-पत्थरो की एक पट्टी उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली हुई है। इस पहाड़ी के बारे मे कहा जाता है कि कृष्ण ने इसे सात दिन-रात अपनी उँगली पर धारण किया था—मेघ-राज इन्द्र के प्रकोप से व्रजवासियो की रक्षा करने के लिए। आमतौर पर इसे गिरि-राज पर्वत कहा जाता है, लेकिन प्रारम्भिक साहित्य मे 'अन्नकूट' भी कहा गया है। गोवर्धन लगभग पहाड़ी के बीचो-बीच वसा है। एक ओर एक विशाल तालाव है जिसे 'मानसी गगा' कहा जाता है। इसमे वर्षा का ही पानी आता है। एक जनश्रुति के अनुसार हवीवुल्ला शाह नामक मुस्लिम फकीर के शाप-वश इसका पानी सूख गया था। यहाँ के पवित्र स्थानो मे चक्रेश्वर महादेव का मन्दिर तथा चार ताल—गो-रोचन, धर्म-रोचन, पाप-मोचन और ऋण-मोचन प्रमुख है।

हिन्दू-विश्वास के अनुसार 'वरसाना' कृष्ण-प्रिया राधा का निवास-स्थल है। १८वी शताब्दी के मध्यकाल मे यह कस्वा धन-धान्य से परिपूर्ण था। यह एक छोटी सी सकीर्ण पहाड़ी के नीचे और ढलान पर वसा हुआ है। यहाँ पर 'लाड़ली जी' के बहुत से मन्दिर वने हुए हैं। 'लाडली जी' का यहाँ प्रचलित नाम राधा है जिसका शाब्दिक अर्थ 'प्रिया' है। ये सव मन्दिर पिछले दो-ढाई सौ साल के अन्दर वने हुए है। पुराणो मे अन्तिम 'ब्रह्मवैवर्त्त' पुराण में राधा के सोलह नाम गिनाए गए हैं—

"राधा, रासेश्वरी, रासव्यसनी, रक्तेश्वरी, कृष्ण-पधिका, कृष्ण-प्रिया, कृष्ण-स्वरूपनी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दाविनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता, सत-चन्द्रा, शुभानना, कृष्ण-वामाग-सभूता, परमानन्दरूपिनी।"

नन्दगाँव कृष्ण का पितृ-गृह है, जहाँ उनका पालन हुआ था, वचपन बीता था। यहाँ एक 'नन्दराय जी' का मन्दिर है। वरसाना और नन्दगाँव के वीच की दूरी कुल पाँच मील है। मनसा देवी के मन्दिर को छोड़कर शेष मन्दिरो के नाम इस प्रकार हैं—नरसिंह, गोपीनाथ, नृत्यगोपाल, गिरिधन, नन्दनन्दन, राधामोहन और जसोदा-नन्दन। यहाँ एक पवित्र ताल है 'पान सरोवर'। वडा सुन्दर वना है। वर्द्धवान के राजा ने इसके घाट वनवाए थे। कहते हैं कि यहाँ ५६ कुण्ड थे जो आज दिखाई नही पड़ते।

व्रज की सीमा—'मथुरा-महात्म्य' मे मथुरा-मण्डल का विस्तार २० योजन वताया गया है। एक योजन ७ मील के वरावर होता है और एक कोस १$\frac{3}{4}$ मील। २० योजन लगभग ८४ कोस के वरावर होगा। केन्द्रीय शहर मथुरा उत्तरी सीमा कोटवन से ३० मील की दूरी पर है और दक्षिण मे स्थित तारसी से कोई ६ मील।

'इलियट' ने अपनी 'ग्लौसरी' मे ब्रज की सीमा के सम्बन्ध मे निम्न दोहा उद्धृत किया है—

"इत बरहद[1], उत सोनहद, उत सूरसेन का गांव।
ब्रज चौरासी कोस मे मथुरा मण्डल मांह॥"

अर्थात् ब्रज की सीमा में एक ओर 'बर' है जो आगरा जिले मे है। दूसरी ओर गुडगांव जिले की बरसाती नदी सोन है और तीसरी ओर 'सूरसेन का गांव' यानी बटेश्वर स्थित है जो अपने 'घोड़ो के मेले' के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार मथुरा-मण्डल का विस्तार ८४ कोस है जिसमे राजधानी (मथुरा) केन्द्र मे है।

---

१ यहाँ यह विवादास्पद है कि क्या 'बरहद आगरा जिले में है, जैसा कि ग्राउस महोदय ने 'इण्डियन एण्टीक्वरी' के पृष्ठ १३७ पर प्रथम पंक्ति में लिखा है। वास्तव में 'बरहद' हाथरस-कासगज सड़क पर सलेमपुर के निकट एक गाँव है जो अपने पशु बाजार के लिए ब्रज-मण्डल में विख्यात है। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' में डॉ० दीनदयाल गुप्त की थीसिस 'अष्टछाप' में से 'अलीगढ़ जिले के एक गाँव बरहद को ही एक ओर की सीमा' मानकर उद्धरण दिया है। —रूपान्तरकार

: ५ :

ब्रज-यात्रा क्षेत्र के इतिहास की एक झाँकी

श्री शर्मन लाल अग्रवाल, मथुरा

ज प्रदेश[1] राष्ट्र के इतिहास मे अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण रहा है। यह देश की प्राचीनतम एव पावनतम स्थलियो मे से है। राजनीतिक दृष्टि से उसने अनेक सघर्षो को देखा है। इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण अध्याय इसी की पृष्ठ-भूमि पर लिखे गये हैं। धर्म और दर्शन की दृष्टि से यह भूमि देश मे उठने वाले सभी धार्मिक आन्दोलनो का प्रधान केन्द्र रही है। आकार मे छोटी होते हुए भी इस भूमि ने प्रकाश-स्तम्भ वन कर देश के सभी भागो को प्रकाशित किया है। काव्य, सगीत और कला की तो यह भूमि अक्षय भण्डार रही है।

नाम एवं प्राकृतिक स्वरूप—व्रज-प्रदेश या मथुरा-मण्डल का वर्णन लगभग सभी पुराणो मे मिलता है किन्तु पद्म-पुराण मे इसका विशद् वर्णन हुआ है। मथुरा-मण्डल के सम्वन्ध मे भगवान् कहते हैं—

"तस्मात्त्रैलोक्यमध्येतु पृथ्वीधन्येति विश्रुता।
यस्मान्मायुरकनाम विष्णोरेकातवल्लभम् ॥
स्वस्थानमधिकम नाम ध्येय मायुरमण्डलम्।
विष्णुचक्रपरिणाम द्धाम वैष्णवमद्भुतम् ॥"

—पद्म० पृ० ५८३, श्लो० १२, १३

त्रैलोक्य के मध्य मे स्थित यह मथुरा-मण्डल धन्य है और विष्णु भगवान् का अति प्यारा स्थान है।

इस प्रदेश मे यमुना तथा उसकी दो सहायक नदियाँ है। एक 'पथवह' और दूसरी 'करवन'। इनके अतिरिक्त 'सोनरेखा' नाम की एक तीसरी नदी पिछले दो वर्षो से और प्रकट हुई है। यह नदी लगभग ४० वर्ष पहले वहती थी लेकिन बीच मे लुप्त हो गई थी। इस प्रदेश मे उत्तर-पश्चिम की पहाडियाँ अरवली पर्वत के भाग हैं जो कामवन और उसके आगे तक फैली हुई हैं। यहाँ प्रसिद्ध गोवर्धन पर्वत है जिसे गिरिराज कहते हैं। उसकी लम्बाई लगभग ५ मील है। यह प्रदेश अपने वनो के

---

१ इस लेख में 'ब्रज प्रदेश' के रूप में जिस क्षेत्र का उल्लेख किया गया है, वह ८४ कोस वाला प्राय. वही 'ब्रज-मण्डल' है जो यात्रा का क्षेत्र है; बृहत्तर ब्रज भाषा-भाषी क्षेत्र नहीं।—सम्पादक

लिए प्रसिद्ध है। प्राचीन साहित्य मे १२ वन तथा अनेक उपवनो का वर्णन मिलता है।

वर्तमान समय मे वे वन तो नही रहे किन्तु आज भी महावन, कामवन, वृन्दावन, कुमुदवन आदि उनकी स्मृति दिलाने को पर्याप्त है।

शूरसेन प्रदेश का प्रारम्भिक इतिहास - ब्रज के प्राचीन नाम 'शूरसेन' के नामकरण का इतिहास क्या है, यह विवाद का विषय है। पुराणो की वश-परम्परा के अनुसार कई शूरसेन हुए है किन्तु हरिवश पुराण मे उल्लिखित शत्रुघ्न-पुत्र शूरसेन के साथ इसका सम्बन्ध जोडना अधिक युक्ति-सगत प्रतीत होता है। इस प्रदेश पर अनेक राजवशो ने राज्य किया। उनमे यदुवश प्रमुख था। यादवो ने अपने अनेक केन्द्र स्थापित किये। भीम सात्वत के समय मे मथुरा और द्वारका यादव-शक्ति के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। यादवो मे मधु[1] एक प्रतापी शासक हुआ। इसी के नाम पर यमुना के किनारे 'मधुपुर' या 'मधुपुरी' नगर बसाया गया जो आगे चलकर 'मधुरा' या 'मथुरा' हुआ। मधु का पुत्र लवण अत्याचारी शासक था। श्री राम के लघु-भ्राता श्री शत्रुघ्न ने इसका सहार किया किन्तु थोडे समय पश्चात् ही पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार इस प्रदेश पर यादवो का अधिकार पुन स्थापित हो गया। इस प्रकार यह नगरी अनेक राजाओ से शासित होकर श्री और समृद्धि को प्राप्त होती गई।

कृष्ण कालीन ब्रज—आज ब्रज-प्रदेश का स्मरण भगवान् कृष्ण एव उनकी लीलाओ के साथ ही किया जाता है। ब्रजभूमि और कृष्ण इन दोनो को हम अलग-अलग रख कर किसी प्रश्न पर विचार कर ही नही सकते। ब्रज-प्रदेश के इतिहास मे श्री कृष्ण का समय बडे महत्त्व का है। समस्त ब्रज-जनपद आनन्दकन्द भगवान् कृष्ण की जन्म-स्थली एव लीला-स्थली होने के कारण गौरवान्वित हो गया। कृष्ण और उनके नाम ने धर्म, राजनीति, सगीत और कला मे जो महत्त्वपूर्ण क्रान्ति की, समस्त देश आज भी उससे ओत-प्रोत है। ऐतिहासिक अनुसधानो के आधार पर श्री कृष्ण का जन्म लगभग ई० पू० १५०० माना जाता है। कृष्ण के बाल-जीवन की घटनाएँ जिनका सम्बन्ध ब्रज से है, भागवत् पुराण के दशम् स्कध मे विस्तार से वर्णित है। कृष्ण ने बाल्य-काल मे अनेक असुरो का सहार किया। गोवर्द्धन-पूजा को प्रारम्भ करके ब्रजवासियो को पूजा की नवीन पद्धति प्रदान की। वशी-वादन एव रास के द्वारा समस्त ब्रजवासियो को मोहित कर लिया। अन्त मे अक्रूर के साथ वे मथुरा गए और कस का वध किया, एव मथुरा-मण्डल मे शासन की सुव्यवस्था की। जरासन्ध के आक्रमणो से ब्रज की रक्षा करने के लिए सौराष्ट्र की प्रसिद्ध नगरी द्वारकापुरी को प्रस्थान किया। इसके पश्चात् कृष्ण का राजनीतिक एव दार्शनिक

---

१ मथुरा इसी 'मधु' नरेश ने बसाई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वान् मथुरा बसाने वाले मधु को दैत्य वंशी बताते हैं जिसका पुत्र लवण था।

—**सम्पादक**

जीवन प्रारम्भ होता है और ब्रज के लोक-जीवन पर कृष्ण के इन सभी, रूपो का प्रभाव पड़ा है।

ब्रज प्रदेश और बौद्ध युग—महाभारत के पश्चात् बुद्ध के पूर्व तक ब्रज प्रदेश का क्रमबद्ध इतिहास नही मिलता है। पुराणो से इतना ही ज्ञात होता है कि अर्जुन ने श्री कृष्ण के पौत्र अनुरुद्ध के लड़के वज्रनाभ को शूरसेन जनपद के सिंहासन पर विठाया।

महात्मा बुद्ध के जन्म मे पहले भारत मे सोलह वडे जनपद थे। प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य मे इन्हे "सोलस महा जनपद" के नाम से पुकारा गया है। इनमे शूरसेन का भी प्रमुख स्थान था। 'जातक-साहित्य' तथा कुछ अन्य बौद्ध ग्रन्थो मे मथुरा सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं। सिंहली बौद्ध साहित्य मे मथुरा नगर को अत्यन्त गौरवशाली नगर कहा गया है और इसे एक विशाल राज्य की राजधानी बताया गया है। मौर्य-शासन-काल से तो मथुरा मे बौद्ध धर्म का एक विशाल केन्द्र स्थापित हुआ जो कई शताब्दियो तक विकसित होता रहा। उस काल मे आए हुए यूनानी लेखक मैगस्थनीज़, एरियन, टाल्मी आदि विद्वानो ने मथुरा की प्रशसा की है तथा उसे "देवताओ का नगर" बताया है। ब्रज-प्रदेश मे प्राप्त होने वाले अनेक सिक्के व मूर्तियाँ मथुरा पर बुद्ध-युग के प्रभाव को स्पष्ट प्रकट करते है।

कुषाण-कालीन मथुरा—'शूरसेन जनपद' पर शुङ्ग वश की प्रभुता समाप्त होने के पश्चात् यहाँ शको का आधिपत्य प्रारम्भ हुआ। शको ने शुङ्ग साम्राज्य के पश्चिमी भाग को अपना कर लिया और इस विजित प्रदेश का केन्द्र मथुरा को वनाया जो उस समय उत्तर भारत मे कला, धर्म तथा व्यापार का प्रधान नगर था। मथुरा के शक शासको ने, "महाक्षत्रप" की उपाधि धारण की। इनका शासन ई० पू० १०० से ई० पू० ५७ तक रहा। इस काल के अनेक सिक्के प्राप्त होते हैं जिन पर "महाछत्रपस" तथा 'अप्रतिहत चक्र" आदि उपाधियाँ अंकित मिलती हैं। इस काल मे राज वुल नामक शासक प्रसिद्ध हुआ। इस काल मे कनिंघम के अनुसार मथुरा राज्य की सीमाएँ उत्तर मे दिल्ली, दक्षिण मे ग्वालियर तथा पश्चिम मे अजमेर तक फैल गई थी। राज वुल के पश्चात् मथुरा पर उसके पुत्र शोडाश का शासन हुआ। इस समय के शिलालेखो से ज्ञात होता है कि मथुरा मे उस समय हीनयान तथा महायान दोनो शाखाओ का प्रभाव था। इस समय के अभिलेखो मे सबसे महत्त्वपूर्ण यह अभिलेख है जिसके आधार पर कटरा केशवदेव को भगवान् श्री कृष्ण का जन्म-स्थान माना गया है। वह इस प्रकार है—

"वसुना भगव [तो वासुदे] वस्य महास्थाने [चतु शा] लं तोरणं वे [दिका प्रति] ष्ठापिता प्रीती भ [वतु वासु] देव। स्वामिस्य [महाक्षत्र] पस्य शोडासस्य सम्वर्ते याताम्।

[अर्थात् स्वामी महाक्षत्रप शोडास के शासन-काल मे वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महास्थान (जन्म-स्थान) पर भगवान् वासुदेव के एक चतु शाला मदिर के तोरण (सिरदल से सुसज्जित द्वार) तथा वेदिका की स्थापना की गई।"]

ईसा के लगभग ५७ वर्ष पूर्व उज्जैनी के उत्तर मे मालवो ने अपनी शक्ति

सगठित की तथा उज्जैनी के शको को परास्त किया। शको की इस हार का प्रभाव मथुरा पर भी पडा और यहाँ का क्षत्रप वश समाप्त हो गया। इसके पश्चात् यहाँ पर दत्त वश का राज्य स्थापित हो गया। इस काल के सिक्को पर एक ओर लक्ष्मी की मूर्त्ति मिलती है तथा दूसरी ओर सवार सहित तीन हाथियो की। दत्त वश के पश्चात् शको की एक कुषाण नामक शाखा का देश मे प्रावल्य हुआ। इन्होने धीरे-धीरे अपना प्रभाव पजाव तक स्थापित कर दिया। इस वश का कनिष्क सवसे प्रतापी राजा हुआ। अफगानिस्तान और कश्मीर से लेकर वनारस से कुछ आगे तक उसके शासन का विस्तार था। इसने उत्तर मे पुरुषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया। इसके साथ मध्य मे मथुरा तथा पूर्व मे सारनाथ राज्य के केन्द्र बनाए। इस काल मे मथुरा प्रदेश की वड़ी उन्नति हुई। पडित कृष्णदत्त वाजपेयी के शब्दो मे, "कनिष्क के समय में मथुरा नगर की वहुमुखी उन्नति हुई। यह नगर राजनीतिक केन्द्र होने के साथ-साथ धर्म, कला, साहित्य एव व्यापार का भी केन्द्र वना। कनिष्क वौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके समय मे साम्राज्य के प्रमुख स्थानो के साथ मथुरा मे भी इस धर्म की वड़ी उन्नति हुई और अनेक वौद्ध स्तूपो, सघारामो आदि का निर्माण हुआ। मानुषी रूप मे वुद्ध की प्रतिमा का निर्माण मथुरा मे इसी समय से प्रारम्भ हुआ। महायान धर्म की उन्नति के फलस्वरूप पूजा के निमित्त विविध धार्मिक प्रतिमाओ का निर्माण वडी सख्या मे होने लगा। कनिष्क के समय की वौद्ध प्रतिमाएँ सैकडो की सख्या मे मथुरा और उसके आस-पास से प्राप्त हो चुकी हैं। महायान मत के आचार्य वसुमित्र और 'वुद्धचरित' एव 'सौदरानन्द' आदि ग्रन्थो के रचयिता अश्वघोष कनिष्क की राज-सभा के रत्न थे। इनके अतिरिक्त पार्श्व, चरक, नागार्जुन, सघरक्ष, माठर आदि अन्य कितने ही कवि, कलाकार और विद्वान् कनिष्क की सभा मे विद्यमान थे।"

"पेशावर और तक्षशिला की तरह कनिष्क ने मथुरा मे भी अनेक वौद्ध-स्तूपो और मठो का निर्माण करवाया। उसके समय मे धार्मिक सहिष्णुता वहुत थी, जिसके कारण वौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन तथा हिन्दू धर्म की भी उन्नति हुई। जैनियो के अनेक स्तूपो, आयागपट्टो, तीर्थंकर प्रतिमाओ तथा अन्य विविध कला-कृतियो का निर्माण हुआ। उसी प्रकार विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा, कार्तिकेय आदि हिन्दू देवताओ की भी प्रतिमाएँ इस काल मे निर्मित हुई।"

कनिष्क के पश्चात् वाशिष्क, हुविष्क तथा कनिष्क द्वितीय ने भी मथुरा प्रदेश पर शासन किया। ये सव शासक वौद्ध थे किन्तु इसके पश्चात् वासुदेव के समय के सिक्को से ऐसा प्रतीत होता है कि इसका झुकाव शैव धर्म की ओर था। कुषाण शासन-काल मे मथुरा का वहुत महत्त्व वढा। यहाँ विविध धर्मों का विकास हुआ, इसके साथ स्थापत्य, मूर्त्ति-कला एव व्यापार की वड़ी उन्नति हुई।

गुप्त शासन-काल मे समुद्रगुप्त ने नाग वश के राजा गणपति नाग को परास्त करके मथुरा क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। इस काल मे उज्जैनी, पाटलिपुत्र और अयोध्या की तो वडी उन्नति हुई किन्तु मथुरा प्राय उपेक्षित-सा रहा। केवल चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा मथुरा मे किसी वडे धार्मिक कार्य के सम्पन्न

होने का सकेत मिलता है। यह कार्य सम्भवत श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर एक भव्य मदिर का निर्माण रहा हो। तत्कालीन कवि कालिदास ने रघुवश मे शूरसेन जनपद मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन एव यमुना का वर्णन किया है। इनसे व्रज के तत्कालीन सौन्दर्य का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

विदेशी आक्रमणों के बीच व्रज प्रदेश—गुप्त-काल के पतन के पश्चात् ५०० ई० के लगभग हूणो ने पश्चिमी मध्य-भारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। वे वलख से तक्षशिला आदि विशाल नगरो को उजाडते, राज्यो को पददलित करते हुए मथुरा होकर मध्य भारत तक पहुँच गए थे। मथुरा उस समय वहुत समृद्ध था। यहाँ वौद्ध, जैन एव हिन्दुओ की विशाल इमारतें थीं। हूणो के द्वारा अधिकाश इमारतें जलादी गई तथा मूर्त्तियाँ तोड दी गई। श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर वना हुआ विशाल मदिर भी इनकी क्रूरता का शिकार हुआ।

इस आक्रमण से लेकर ग्यारहवी शती तक इस प्रदेश मे अपेक्षाकृत शाति रही। किन्तु ग्यारहवी शती के प्रारम्भ मे उत्तर-पश्चिम की ओर से मुसलमानी आक्रमण भारत पर होने लगे। १०१७ मे महमूद गजनवी का नया आक्रमण मथुरा पर हुआ। उस समय महावन मे कुल चन्द नामक शासक राज करता था। यह महमूद गजनवी के आक्रमण का धक्का न सह सका और इसे पराजित होना पडा। इसके पश्चात् सुल्तान की फौजें मथुरा पहुँचीं। मथुरा की लूट के सम्बन्ध मे महमूद के मार मुशी उत्वी ने इस प्रकार लिखा है—

"नगर का परकोटा पत्थर का वना हुआ था, उसमे नदी की ओर ऊँचे तथा मजवूत आधार-स्तम्भो पर वने हुए दो दरवाजे स्थित थे। शहर के दोनो ओर हजारो मकान वने हुए थे जिनसे लगे हुए देव-मन्दिर थे। ये सव पत्थर के वने थे और लोहे की छडो द्वारा मजवूत कर दिये गये थे। उनके सामने दूसरी इमारतें वनी थी, जो सुदृढ लकड़ी के खम्भो पर आधारित थीं। शहर के वीच मे सभी मन्दिरो से ऊँचा एव सुन्दर एक मन्दिर था, जिसका पूरा वर्णन न तो चित्र-रचना द्वारा और न लेखनी द्वारा किया जा सकता है। सुल्तान महमूद ने स्वय इस मन्दिर के वारे मे लिखा है कि 'यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार की इमारत वनवाना चाहे तो उसे दस करोड दीनार (सुवर्ण-मुद्रा) से कम न खर्च करने पडेंगे और उसके निर्माण मे २०० वर्ष लगेंगे, चाहे उसमे वहुत हा योग्य तथा अनुभवी कारीगरो को ही क्यो न लगा दिया जावे।' सुलतान ने आज्ञा दी कि सभी मन्दिरो को जला कर उन्हें धराशायी कर दिया जाय। वीस दिनो तक वरावर शहर की लूट होती रही।"

उत्वी के अतिरिक्त वदाँऊनी तथा फरिस्ता ने भी महमूद की लूट का वर्णन किया है। इस आक्रमण के वाद मथुरा को अपनी स्थिति को सँभालने मे वहुत समय लगा।

इसके पश्चात् १२९७-९८ अलाउद्दीन खिलजी के समय मे उलग खाँ ने असकुण्डा घाट के पास किसी हिन्दू मन्दिर को तोड कर एक मस्जिद वनवाई। इन शासको के समय मे मथुरा और वृन्दावन युद्ध-परस्तो का अड्डा माना जाता था। तुगलको के समय मे भी मथुरा पर अनेक अत्याचार हुए। सिकन्दर लोदी के शासन-

काल में मथुरा के मन्दिर पूरी तरह नष्ट किये गए। एक भी धार्मिक स्थान अछूता नही छोडा गया। इसी काल मे श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर राजा विजय पाल देव द्वारा निर्मित कृष्ण मन्दिर को भी नष्ट-भ्रष्ट किया गया।

मुगलकालीन व्रज-प्रदेश—अकवर ने व्रज प्रदेश के सम्वन्ध मे उदार नीति अपनाई। उसने धर्मिक यात्रियो से लिये जाने वाला कर समाप्त कर दिया। १५६४ मे जजिया भी समाप्त कर दिया गया। १५६६ मे अकवर ने श्री विट्ठल नाथ जी के प्रति विशेष अनुराग दिखाया। उसने गोकुल ग्राम इन्हे प्रदान कर दिया, तथा शाही चरागाहो मे उनकी गायो को चरने की आज्ञा प्रदान की। सन् १५७३ मे अकवर स्वय मथुरा तथा वृन्दावन गया और उससे प्रोत्साहन पाकर हिन्दू नरेशो ने मथुरा-वृन्दावन मे अनेक घाट तथा मन्दिर बनवाए। अकवर ने व्रज की शासन-व्यवस्था मे भी सुधार किया। जहाँगीर के समय में भी मथुरा और वृन्दावन मे निरन्तर नये मन्दिर बनते रहे। ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने मथुरा मे केशव देव का सुप्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। यह अपने समय का सबसे अधिक आश्चर्यजनक मन्दिर गिना जाता था। इनके अतिरिक्त शेर सागर और समुद्र सागर नाम के दो तालाव व्रज प्रदेश मे बने। वृन्दावन मे मदन मोहन, जुगुल किशोर और राधा वल्लभ के तीनो मन्दिर जहाँगीर के शासन-काल मे ही वने।

शाहजहाँ के शासन-काल मे इस उदार नीति का अन्त होना प्रारम्भ हुआ। औरगजेव के काल मे कट्टरतापूर्ण धार्मिक नीति अपनायी गई। औरग-जेब ने अब्दुल नबी को मथुरा का शासक नियुक्त किया। उसने दारा शिकोह द्वारा प्रदत्त केशव राय के मन्दिर के कटहरे को वलपूर्वक उखाड़ डाला। नये मन्दिरो के बनने की कड़ी मनाही करवादी। अन्त मे ६ अप्रेल १६६९ को औरगजेव ने आज्ञा दी कि, "काफिरो के सारे मन्दिर, पूजा-गृह तथा पाठशालाएँ तोड़-फोड दी जावें एव उनके धार्मिक पठन-पाठन एव पूजा-पाठ पूरी तरह वन्द कर दी जावें।"

इस अत्याचार के विरुद्ध गोकुला जाट के नेतृत्व मे व्रज की जनता ने विद्रोह किया। अब्दुल नवी वसुरा ग्राम के निकट मारा गया। इसके पश्चात् दूसरे फौजदार हसन अली के साथ गोकुला का भीषण युद्ध हुआ और अन्त मे गोकुला की मृत्यु हुई। इसी समय व्रज की प्रधान मूर्त्तियाँ व्रज से वाहर ले जायी गयी। श्री नाथ जी की मूर्त्ति मेवाड़ मे नाथद्वारा मे स्थापित हुई। गोकुल वाले द्वारकाधीश की मूर्त्ति को भी मेवाड़ ले जाकर काँकरोली मे उसकी प्रतिष्ठा हुई। वृन्दावन मे आमेर के राजा मानसिंह द्वारा निर्मित गोविन्द देव मन्दिर की मूर्त्ति आमेर ले गये। केशव राय का प्रसिद्ध मन्दिर तीसरी वार नष्ट किया गया। मूर्त्तियो को मस्जिद की सीढियो मे लगाया गया। तथा मथुरा और वृन्दावन के नाम भी वदल दिये गये। उन्हें क्रमश "स्लामावाद" और "मोमनावाद" कहा जाने लगा।

इसके पश्चात् नादिरशाह का आक्रमण इस देश पर हुआ और उसका प्रभाव व्रज पर भी पडा। वृन्दावन मे लूट-मार प्रारम्भ हुई। मरहठो ने जनवरी १७५४ मे व्रज पर चढाई की और डीग, भरतपुर तथा कुम्हेर के किलो को घेर लिया। जाट मरहठा सघर्ष मे व्रज-प्रदेश की पर्याप्त हानि हुई और उसके पश्चात् १५ मार्च सन्

१७५७ को अहमदशाह अब्दाली स्वयं मथुरा पहुँचा और मथुरा और वृन्दावन की भारी लूट हुई। इस लूट मे उसे करीब १२ करोड़ रुपये की धन-राशि प्राप्त हुई। इसी वर्ष अब्दाली के सेनापति जहान खाँ ने एक वार व्रज को फिर लूटा और व्रज प्रदेश पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

अंग्रेजी शासन-काल एवं स्वाधीनता प्राप्ति—अंग्रेजी शासन-काल मे जाटो के द्वारा विद्रोह होता रहा। १८ जनवरी सन् १८२६ को भरतपुर का किला अंग्रेजो के अधिकार मे आ गया। इसके पश्चात् १८५७ के स्वाधीनता सग्राम मे व्रज प्रदेश का वड़ा सहयोग रहा। मथुरा, दिल्ली सड़क पर के गाँवो की भारतीय जनता तथा व्रज के अन्य गाँवो के लोग स्वाधीनता की भावना से भरपूर थे। उन्होने सैनिको को दिल्ली की ओर वढने मे और सरकारी इमारते नष्ट करने मे सहयोग दिया। मथुरा और उसके आस-पास कुछ समय के लिए अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया। जनता के सम्मिलित सहयोग ने ही मथुरा और अन्य तीर्थ-स्थानो को वरवादी से वचाया तथा शहर मे लूट-मार की वहुत कम घटनाएँ हुई। अगले वर्षो में व्रज मे राजनैतिक तथा उत्थान के कार्य हुए। पुरातत्त्व सग्रहालय की स्थापना हुई। ऋषि दयानन्द ने यही पर गुरु विरजानन्द के सामने देश-सेवा का व्रत लिया।

आज स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् व्रज का नव निर्माण हो रहा है। कटरा केशवदेव के पुनरुद्धार का कार्य चल रहा है। उस स्थान पर एक विशाल मन्दिर व सास्कृतिक केन्द्र की रूप-रेखा वन चुकी है। व्रज की प्राचीन कदम-खण्डियो का सरक्षण एव गोवर्धन पर्वत के चारो ओर यात्रा-पथ को पुष्प वृक्षावलियो से शोभित करने का कार्य तेजी से चल रहा है। सूरदास की पावन-स्थली 'रेणुका-क्षेत्र' के पास 'सूरवन' के नाम से एक विशाल वन-खण्ड वनाया जा रहा है। सेठ गोविन्द दास जी द्वारा प्रस्तावित सास्कृतिक व्रज-यात्रा एव कृष्ण-धाम की स्थापना का प्रयत्न भी व्रज की प्रगति के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण पग हैं।

व्रज का धर्म और दर्शन—धार्मिक दृष्टि से व्रज का इतिहास वड़ा महत्वपूर्ण है। इस भूमि को जैन, वौद्ध, भागवत्, शैव, शाक्त आदि भारत के सभी प्राचीन मतो की विकास-भूमि होने का गौरव प्राप्त है। इस जनपद मे भी प्रारम्भ काल मे वैदिक कर्मकाण्ड का प्राधान्य रहा। श्री कृष्ण के अवतार के पश्चात् एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। उन्होने प्रचलित दार्शनिक मान्यताओ मे समन्वय स्थापित करके निष्काम भाव से कर्मवाद का मार्ग प्रशस्त किया। उनके द्वारा स्थापित भागवत धर्म ने सात्विक भक्ति के माध्यम से कोटि-कोटि भक्त-मानसो को तरंगित किया।

बुद्ध धर्म—वुद्ध के समकालीन मथुरा के शासक अवन्ति पुत्र का उल्लेख वौद्ध साहित्य मे मिलता है। महात्मा वुद्ध ने अनेक यक्षो को वुद्ध धर्म मे दीक्षित किया। वौद्ध धर्म के प्रचारको मे प्रमुख आचार्य उपगुप्त ने मथुरा में भी यमुना तट पर विशाल स्तूप वनवाए। शुङ्गकाल मे भी कई गुहा विहार तथा स्तूप वनाए गये। मथुरा मे वौद्ध धर्म की सभी शाखाओ के अनुयायी जैसे "सर्वास्ति वादियो", "सम्मितीय", "महासन्घिक" आदि का उल्लेख मिलता है। पुरातत्व विभाग द्वारा

खुदाई मे प्राप्त अनेक मूर्त्तियाँ एव अभिलेख ब्रज प्रदेश पर बौद्ध धर्म के प्रभाव की साक्षी देते हैं।

जैन धर्म—इसी काल मे मथुरा नगर जैन धर्म का भी एक प्रमुख केन्द्र बना। जैन साहित्य मे शूरसेन जनपद तथा मथुरा नगर के सम्बन्ध मे अनेक उल्लेख मिलते है। ककाली टीला की खुदाई से अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्री के साथ एक लेख भी मिला है जिससे इस टीले पर एक स्तूप का उल्लेख मिलता है। जैन ग्रन्थो के अनुसार अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वय मथुरा आये थे। वर्त्तमान चौरासी नामक स्थान को जम्बू स्वामी का तपस्या और निर्वाण-स्थल माना जाता है। जैनो के २३वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ तो ब्रजवासी यदुवशी ही थे। शक कुषाण काल मे यहाँ जैन मत का विशेष विकास हुआ। पुरातत्व सग्रहालय मे सग्रहीत मूर्त्तियाँ इसकी प्रमाण हैं।

भागवत् धर्म—भक्ति-प्रधान भागवत् धर्म के उदय एव विकास का श्रेय ब्रज-प्रदेश को प्राप्त है। २०० ई० से १४०० ई० तक के दीर्घ काल में ब्रज मे भागवत धर्म की शाखा-प्रशाखाएँ फैलती गई एव वे पल्लवित तथा पुष्पित हुई। १४वी शताब्दी तक का समय भागवत धर्म की विभिन्न शाखाओ के विकास का काल है। दक्षिण और उत्तर भारत मे वैष्णव भक्ति के जो आन्दोलन हुए उन सबका प्रभाव ब्रज पर पडा। १४वी शती के अन्त तक चार प्रमुख वैष्णव सम्प्रदाय अस्तित्व मे आ गये। निम्बार्क, श्री, माध्व, तथा विष्णु स्वामी इन सम्प्रदायो के आचार्यों ने भक्ति और कर्म का क्रियात्मक सामजस्य उपस्थित किया। पूर्व मे बगाल भक्ति-उत्थान का केन्द्र बना। उत्तर भारत मे राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति की लहरें साथ-साथ बही।

वल्लभ सम्प्रदाय और ब्रज—आचार्य वल्लभ का सम्प्रदाय शुद्धाद्वैत-मूलक पुष्टि सम्प्रदाय है। ब्रज, राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र मे इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र बने। ब्रज मे गोकुल, गोवर्धन, जतीपुरा, कामवन आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र हो गए। इस सम्प्रदाय के द्वारा ही ब्रज मे साहित्य और सगीत की अविरल धारा वही। 'अष्ट छाप' के रूप मे जिन कवियो और साधको ने अपनी अमर वाणी द्वारा जिन रचनाओ को जन्म दिया वे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ब्रज और वल्लभ सम्प्रदाय इनका ऐसा सम्बन्ध है कि एक पर विचार किए बिना हम दूसरे पर विचार कर ही नही सकते।

ब्रज की कला—धर्म-दर्शन और साहित्य के साथ-साथ ब्रज-प्रदेश विभिन्न कलाओ की जननी रहा है। प्राचीन स्थापत्य कला के नमूने आज नही मिलते किन्तु ध्वसावशेषो के रूप मे जो कुछ सामग्री मिली है उससे पता चलता है कि यहाँ के भवन कई तलो के होते थे। सोपान मार्ग, वेदिका स्तम्भ तथा गवाक्ष यथा स्थान लगाये जाते थे। स्वागत-कक्ष, शयन-गृह, शृगार-कक्ष, भोजन-गृह, स्नानागार अलग-अलग होते थे। चौखट, द्वार, स्तम्भ आदि लताओ पशु-पक्षी, मगल-घट एव चित्रो से चित्रित किए जाते थे। आज भी जो मन्दिर बुर्ज या स्मारक देखने को मिलते हैं वे ब्रज की कला के स्पष्ट द्योतक हैं। जैन और बौद्ध काल मे मूर्त्ति-कला मे भी ब्रज

ने बहुत उन्नति की। पत्थर के साथ-साथ मिट्टी की मूर्त्तियाँ ब्रज की विशेषता थीं। गुप्तकालीन मिट्टी की कुछ बडी मूर्त्तियाँ मथुरा कला की उत्कृष्ट कृतियाँ है। चित्र-कला के रूप मे ब्रज राजस्थान की शैली से बहुत प्रभावित है। कतिपय चित्र बुन्देलखण्ड शैली के भी मिलते हैं। साँझी कला ब्रज की अपनी विशेषता है।

सगीत का तो ब्रज अटूट भण्डार है। स्वामी हरिदास के अतिरिक्त, तानसेन, बैजू बावरा तथा गोपाल राम आदि प्रसिद्ध गायक हुए। इस काल मे गोविन्द स्वामी, कृष्णदास तथा सूरदास आदि ऐसे कवि थे जो कविता के साथ सगीत के भी धुरधर थे। १६वी शती मे ब्रज के सगीतज्ञो मे ध्रुपद शैली का ही विशेष प्रचार था। शास्त्रीय-सगीत के अतिरिक्त ब्रज का लोक-सगीत इस जनपद की अपनी विशेषता है। तान, भजन तथा रसिया आदि ऐसे गायन है जिनका सम्बन्ध ब्रज के लोक-जीवन से है। यहाँ की तानें अपना एक विशेष स्थान रखती है। रसिया तो ब्रज के लोक-जीवन का प्राण है। सगीत के अतिरिक्त नृत्य, वाद्य और अभिनय-कला मे भी ब्रज ने उन्नति की। अनेक प्रकार के वाद्य केवल ब्रज मे ही प्रचलित हैं। ब्रज का रास स्वय अपनी एक विशेषता है।

: ६ :

ब्रज-मण्डल का तीर्थ-परिचय[1]

ब्रज और ब्रज-यात्रा की परम्परा पर उक्त विवेचन के उपरान्त अब यह उचित होगा कि 'ब्रज-मण्डल' के ८४ कोस के यात्रा क्षेत्र मे स्थित तीर्थों का भी अलग-अलग उल्लेख कर दिया जाय। अत इस अध्याय मे हम यात्रा-मार्ग तथा उसके निकटवर्ती तीर्थों का सक्षिप्त परिचय उपस्थित कर रहे है।

मथुरा

मथुरा भारतवर्ष की सब से प्राचीनतम नगरियो मे से एक रही है। अतीत मे यह साहित्य, दर्शन, कला और व्यवसाय का केन्द्र थी और शूरसेन-जनपद की राजधानी होने का इसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मथुरा का वर्णन जगह-जगह पर यथेष्ट रूप मे हो चुकने के कारण अब यहाँ पर उसके बारे मे अधिक कुछ न लिख कर हम केवल वर्तमान मथुरा का ही सक्षिप्त परिचय देते हैं।

मथुरा नगर ब्रज का केन्द्र है और यह पवित्र यमुना नदी के तट पर बसा है। नगर के चारो ओर मिट्टी की एक चौडी नगर दीवाल थी, जिसके भग्नावशेष अब भी दिखाई पडते हैं, इसे 'धूल-कोट' कहते है। इसके बाहर चल कर नगर की परिक्रमा दी जाती है। जो 'पचकोसी' परिक्रमा कहलाती है। यह परिक्रमा प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को लगती है। देवोत्थानी एकादशी (कार्तिक शु० ११) को लोग मथुरा के साथ वृन्दावन की भी परिक्रमा करते हैं। अक्षय-नौमी (कार्तिक शु० ६) की परिक्रमा भी बडे जन-समुदाय द्वारा लगाई जाती है। नगर परिक्रमा मे सभी मुख्य स्थान, मदिर, कुण्ड, तपोभूमि आदि आ जाते हैं।

मथुरा मे वल्लभ सम्प्रदाय का द्वारकाधीश का मदिर बहुत प्रसिद्ध है। यह शहर के मध्य मे असकुण्डा बाजार मे स्थित है। यहाँ बराबर उत्सव होते हैं। श्रावण मे झूला तथा जन्माष्टमी के अवसर पर विशेष रूप से आयोजन किए जाते हैं।

मथुरा के अन्य बडे मन्दिर गोवर्द्धन नाथ, दाऊ जी, मदन मोहन, वराह जी, श्री राम मन्दिर, दीर्घ विष्णु, भैरव नाथ, महा विद्या, ककाली, चामुण्डा आदि हैं। इनके अतिरिक्त राधा-कृष्ण, गोपीनाथ, वीर भद्रेश्वर, किशोरी रमण, एक देह दो प्राण,

---

१ प्रस्तुत लेख सर्व श्री बाल मुकुन्द चतुर्वेदी, रामेश्वर दयाल उपाध्याय, कृष्ण गोपाल चतुर्वेदी, श्याम सुन्दर चतुर्वेदी, विट्ठल नाथ चतुर्वेदी, कृष्ण गोपाल, ब्रजेश तथा बाबा कृष्ण दास जी (कुसुम सरोवर) द्वारा प्रेषित सामग्री पर आधारित है।

: ६ :

ब्रज-मण्डल का तीर्थ-परिचय[1]

ब्रज और ब्रज-यात्रा की परम्परा पर उक्त विवेचन के उपरान्त अब यह उचित होगा कि 'ब्रज-मण्डल' के ८४ कोस के यात्रा क्षेत्र मे स्थित तीर्थों का भी अलग-अलग उल्लेख कर दिया जाय। अत इस अध्याय मे हम यात्रा-मार्ग तथा उसके निकटवर्ती तीर्थों का सक्षिप्त परिचय उपस्थित कर रहे है।

मथुरा

मथुरा भारतवर्ष की सब से प्राचीनतम नगरियो मे से एक रही है। अतीत मे यह साहित्य, दर्शन, कला और व्यवसाय का केन्द्र थी और शूरसेन-जनपद की राजधानी होने का इसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मथुरा का वर्णन जगह-जगह पर यथेष्ट रूप मे हो चुकने के कारण अब यहाँ पर उसके बारे मे अधिक कुछ न लिख कर हम केवल वर्तमान मथुरा का ही सक्षिप्त परिचय देते हैं।

मथुरा नगर ब्रज का केन्द्र है और यह पवित्र यमुना नदी के तट पर बसा है। नगर के चारो ओर मिट्टी की एक चौडी नगर दीवाल थी, जिसके भग्नावशेष अब भी दिखाई पड़ते हैं, इसे 'धूल-कोट' कहते है। इसके बाहर चल कर नगर की परिक्रमा दी जाती है। जो 'पचकोसी' परिक्रमा कहलाती है। यह परिक्रमा प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को लगती है। देवोत्थानी एकादशी (कार्तिक शु० ११) को लोग मथुरा के साथ वृन्दावन की भी परिक्रमा करते है। अक्षय-नौमी (कार्तिक शु० ९) की परिक्रमा भी वडे जन-समुदाय द्वारा लगाई जाती है। नगर परिक्रमा मे सभी मुख्य स्थान, मदिर, कुण्ड, तपोभूमि आदि आ जाते हैं।

मथुरा मे वल्लभ सम्प्रदाय का द्वारकाधीश का मदिर बहुत प्रसिद्ध है। यह शहर के मध्य मे असकुण्डा बाजार मे स्थित है। यहाँ बरावर उत्सव होते हैं। श्रावण मे झूला तथा जन्माष्टमी के अवसर पर विशेष रूप से आयोजन किए जाते हैं।

मथुरा के अन्य बडे मन्दिर गोवर्द्धन नाथ, दाऊ जी, मदन मोहन, वराह जी, श्री राम मन्दिर, दीर्घ विष्णु, भैरव नाथ, महा विद्या, ककाली, चामुण्डा आदि हैं। इनके अतिरिक्त राधा-कृष्ण, गोपीनाथ, वीर भद्रेश्वर, किशोरी रमण, एक देह दो प्राण,

---

१ प्रस्तुत लेख सर्व श्री बाल मुकुन्द चतुर्वेदी, रामेश्वर दयाल उपाध्याय, कृष्ण गोपाल चतुर्वेदी, श्याम सुन्दर चतुर्वेदी, विट्ठल नाथ चतुर्वेदी, कृष्ण गोपाल, ब्रजेश तथा बाबा कृष्ण दास जी (कुसुम सरोवर) द्वारा प्रेषित सामग्री पर आधारित है।

देवकी नन्दन, श्री नाथ, मथुरा नाथ जी तथा पद्मनाभ के मन्दिर भी दर्शनीय हैं, मथुरा मे शिव जी के चार प्रधान मन्दिर हैं— रगेश्वर, पिप्लेश्वर, गोकरणेश्वर तथा भूतेश्वर। मथुरा का प्रधान घाट विश्राम घाट शहर के बीचो-बीच स्थित है। यहाँ प्रात:-सायं यमुना जी की आरती का दृश्य बड़ा सुहावना होता है। मथुरा के अन्य ऐतिहासिक एव सास्कृतिक प्रमुख स्थान ये है—

श्री कृष्ण जन्मभूमि — यह स्थान कटरा केशवदेव या केशवपुरा मुहल्ला में है। यहाँ समय-समय पर भारतीय शासको एव जनता ने अपने पूज्य केशव की महानता के अनुरूप विशाल मन्दिर खडे किये। अन्तिम मन्दिर ओरछा के राजा वीरसिंह देव ने सत्रहवी शताब्दी में बनाया, जिसकी टूटी-फूटी चौकी और इमारती पत्थरो के कुछ टुकडे मात्र इस समय बचे है।

पोतरा कुण्ड — यह चौकोर विशाल कुण्ड जन्म-स्थान के समीप है। घने पेडो से आच्छादित कुण्ड का दृश्य आकर्षक है। भग्न दीवालो पर अब भी कही-कही चित्रकारी दिखाई देती है।

कस किला—यह किला यमुना तट पर स्वामी घाट के उत्तर मे है। इसे अकबर के समकालीन (जयपुर) के राजा मानसिंह ने बनवाया था। उनके वशज सवाई जयसिंह ने यहाँ ज्योतिष की वेधशाला बनवाई, जो नष्ट हो गई है।

सती बुर्ज—५५ फुट ऊँचा यह चौखण्डा बुर्ज विश्राम घाट के समीप बना है। इस स्थान पर जयपुर के राजा विहारमल की रानी सती हुई थी। उनके बेटे भगवान दास ने इस घटना की स्मृति मे यह बुर्ज बनवाया। औरगजेब ने इसके ऊपर का शिखर तुडवा दिया।

शिवताल—यह रमणीक सरोवर शहर के दक्षिण-पश्चिम मे दिल्ली तथा वृन्दावन जाने वाली रेलवे लाइनो के बीच मे है। इसे १८०७ ई० मे बनारस के राजा पटनीमल ने बनवाया था।

पुरातत्त्व संग्रहालय— यह इमारत भगतसिंह पार्क मे है। इसमे ब्रज के विभिन्न भागो से प्राप्त पुरानी मूर्त्तियाँ आदि प्रदर्शित हैं, जिन्हे देख कर ब्रज की पुरानी कला, धार्मिक भावना, वेष-भूषा आदि का पता चलता है।

गायत्री तपोभूमि —यहाँ पर गायत्री माता का मन्दिर हाल ही में स्थापित हुआ है और गत वर्ष यहाँ गायत्री महायज्ञ का आयोजन किया गया था।

गीता मन्दिर—मथुरा से लगभग तीन मील दूर वृन्दावन मार्ग पर, इस नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ है। चक्रधारी श्री कृष्ण के दर्शन हैं। मन्दिर के प्रागण मे गीता स्तम्भ है जिस पर सम्पूर्ण गीता उत्कीर्ण है। मन्दिर की दीवारें अनेको वाक्यामृत एव कलापूर्ण चित्रो से सुसज्जित हैं। गीता मन्दिर से आगे राजा महेन्द्र प्रताप जी द्वारा स्थापित प्रेम महाविद्यालय एव 'हासानन्द-गोचर-भूमि' उल्लेखनीय हैं।

२. मधुवन

"तत्ताल गच्छ भद्रं ते, यमुनायास्तट शुचि।
पुण्य मधुवन यत्र, सानिध्य नित्यदाहरे ॥" —भा० च० ८।४२

यह स्थल वर्त्तमान मथुरा से लगभग ४ मील दूर नैऋतकोण दिशा मे स्थित है। मधुवन की गणना ब्रज के बारह वनो मे सर्व प्रथम की जाती है। किसी समय जमुना का प्रवाह यहाँ होकर प्रवाहित था और यह स्थल बहुत श्री-सम्पन्न था। कुछ इतिहासकारो के अनुसार 'मधु' द्वारा स्थापित प्राचीन 'मधुरा पुरी' (मथुरा) यही स्थल है। मधुवन को राजा उत्तानपात के पुत्र बालक 'ध्रुव' की तपस्या-भूमि भी कहा जाता है।

मधुवन भगवान् श्री कृष्ण की गौ-चारण-लीला की भूमि माना जाता है। वैशाख पूर्णिमा को यहाँ भगवान् ने गोपिकाओ के साथ रास-लीला भी की थी, ऐसा उल्लेख गर्ग सहिता मे हुआ है। कहा जाता है कि यहाँ बलदेव जी ने मधु-पान करके उन्मत्त भाव से नृत्य किया था।

वर्त्तमान मधुवन एक छोटा सा गाँव है जिसका पुरातत्त्व और पौराणिक दृष्टि से अधिक महत्त्व है। यहाँ के दर्शनीय स्थलो मे ध्रुव-टीला, चतुर्भुजराय जी (मधुवनियाँ ठाकुर) का मन्दिर, कृष्ण कुण्ड, (मधु कुण्ड), लवणासुर की गुफा तथा महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक उल्लेखनीय है। भाद्रपद कृष्णा एकादशी को मधुवन मे प्रतिवर्ष मेला लगता है और इस वन की परिक्रमा की जाती है।

तालवन

"अथ तालाहृय देवि, द्वितीय वन मुत्तमम्।
यत्र स्नातो नरो भक्तया कृतकृत्य प्रजायते ॥"—नारद पु० ७९।७

मथुरा से दक्षिण और मधुवन से नैऋतकोण मे लगभग ३ मील की दूरी पर तालवन स्थित है। यह वन भी ब्रज के १२ वनो मे से है और भगवान् बलराम ने कस द्वारा भेजे गये 'धेनुकासुर' का यही वध किया था, ऐसा कहा जाता है। यहाँ बल्देव जी का मन्दिर और 'बलभद्र-कुण्ड' है। इस कुण्ड को ब्रज-भक्ति विलास मे 'सकर्षण-कुण्ड' कहा गया है। आजकल इस स्थल को 'तारसी' गाँव भी कहते हैं।

गौ-चारण के समय एक बार भगवान ने अपनी भूखी सखा-मण्डली को ताल-वन के सुस्वाद फल खिलाकर तृप्त किया था ऐसा ब्रह्मवैवर्त्त पुराणकार का कथन है।[1]

कुमुदवन

"गिरधर हलधर नेह अति, लिये गोपाल समाज।
हार बनावत कुमुद के, देखि 'कुमुदवन' आज ॥" —जगत नन्द

कुमुदवन जिसे अब कुदरवन कहा जाने लगा है, तालवन से लगभग २ मील पश्चिम मे स्थित है। किसी समय यहाँ के सरोवर मे ऐसे सुन्दर कमल खिलते थे जिनकी ख्याति के कारण ही इस स्थल का नाम 'कुमोदवन' हो गया। यहाँ के सरोवर

---

१ एकया राधिकानाथो, बलेन सह बालकैः।
जगाम तत्तालवन परिपक्व फलान्वितम् ॥ —ब्रह्मवैवर्त कृ० ज० ख० २२।१

को यद्यपि अब 'विहार कुण्ड' कहा जाता है परन्तु नारायण भट्ट जी ने उसका उल्लेख 'व्रजभक्ति विलास' मे 'पद्मकुण्ड' के नाम से ही किया है।[1]

कुमुदवन प्राचीन तपोभूमि है और यहाँ किसी युग मे कपिल मुनि ने भी तपस्या की थी और भगवान् वाराह की मूर्त्ति स्थापित की थी, ऐसा वाराह पुराण मे उल्लेख है।[2] भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि की दृष्टि से कुमुदवन व्रज के १२ वनो मे से है और यहाँ भगवान् ने रासोत्सव के अवसर पर श्री हस्त से राधिका जी का शृंगार किया था—

"तत कुमुद्वन प्राप्तो लतावृन्द मनोहर।
भ्रमरध्वनि सयुक्त चक्रे रास सखी जनै॥
राधा तत्रैव शृ गार, श्री कृष्णस्य चकारह।
पुष्पैर्न्तनाविधं दिव्यं पश्यन्तीनाम्बुजौकसाम्॥"—गर्ग० स० १७।२९, ३०

कुमुदवन के वर्त्तमान स्थलो मे कपिलदेव जी का मन्दिर, कुण्ड और महाप्रभु जी व गुसाईं जी की बैठक उल्लेखनीय है।

अबिकावन

यह स्थल मथुरा से पश्चिम दिशा मे लगभग २ मील है। कहा जाता है कि यहाँ होकर किसी युग मे सरस्वती प्रवाहित होती थी। आजकल यहाँ 'अबिका देवी' तथा महादेव जी का मन्दिर भर है। कहा जाता है कि नन्दराय जी का पाँव पकड़ने वाले अजगर को शाप-मुक्त करके भगवान् श्री कृष्ण ने उसे यहीं सुदर्शन विद्याधर की पूर्व योनि प्रदान की थी। यह स्थल यात्रा-मार्ग मे नही आता।

दतिहा

इस स्थल को कुछ लोग 'दतिया' भी कहते हैं। यह मथुरा से लगभग ६ मील पश्चिम मे है। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् कृष्ण ने 'दतवक्र' का वध किया था। पद्म पुराण से ज्ञात होता है कि शिशुपाल-वध के अनन्तर द्वारका से भगवान् श्री कृष्ण यहाँ पधारे थे और यमुना पार करके व्रजवासियों से मिले थे। यहाँ महादेव जी का एक चतुर्भुजी विग्रह दर्शनीय है।

गरुड-गोविन्द (छटीकरा)

"लागत मोकों नीक अति, राज करो सुख इद।
देखो गाम छटीकरा, जहाँ गरुड-गोविन्द॥"—जगतनन्द

यह मन्दिर मथुरा से पश्चिम वायुकोण मे लगभग ५ मील है। इस मन्दिर के सम्बन्ध मे व्रज मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि "आठ हाथ को मन्दिर और बाहर हाथ को ठाकुर" इस मन्दिर मे भगवान् गोविन्द की गरुड पर आसीन १२ भुजी मूर्त्ति है। इस देव-विग्रह की व्रज मे बडी मान्यता है, और मागलिक अवसरो पर दूर-

१ इन्द्रादिदेवगधर्वैराकीर्ण विमलार्थिने।
पद्म कुण्डाय ते तुभ्य नानासौख्य प्रदायिने।—व्रज-भक्ति विलास

२ मनसा निर्मितातेन, वाराही प्रतिमा शुभा।
कपिलोध्यायते नित्य, मर्चतिस्म दिने दिने॥

दूर से ब्रजवासी आकर यहाँ दर्शन करते हैं और मनौती मानते हैं। कहा जाता है कि छटीकरा गाँव जिसके निकट 'गरुड़-गोविन्द' जी का यह मन्दिर गोविन्द कुण्ड के तट पर बना हुआ है कुछ समय नन्दराय जी की निवास-भूमि रहा है। कस के भय से गोकुल त्यागने के बाद नन्द जी ने अपने सकटो (गाड़ाओ) को अर्द्ध-चन्द्राकार घेर कर यहाँ वास किया था। इस गाँव का पुराना नाम 'सट्टीकरा' कहा जाता है।

सतोहा (शान्तनु कुण्ड)

"मया तत्र तपस्याप्त, पुत्रार्थं तु वसुन्धरे।
देवकी गर्भ सभूतेन, वसुदेव गृहे शुभे॥" —म० भा० ६।४४

यह गाँव मथुरा-गोवर्द्धन मार्ग पर, मथुरा से लगभग ४ मील पश्चिम मे है। कहा जाता है कि यहाँ महाराज शान्तनु ने सन्तान की कामना से सूर्य देव की उपासना करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। आज भी पुत्र-कामना के लिए यहाँ के कुण्ड मे स्नान करने तथा मनौती मानने, दूर-दूर से ब्रजवासी आते है और यहाँ भाद्रपद शुक्ला ७ को मेला लगता है। कहा जाता है कि यहाँ स्वय भगवान् श्री कृष्ण ने भी योग्य पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से तप किया था।

वर्त्तमान मे सतोहा एक छोटा सा गाँव है, जहाँ 'शान्तनु कुण्ड' के अतिरिक्त राजा शान्तनु, गिरधारी जी तथा बल्देव जी के मन्दिर और गुसाई जी की बैठक है। मधुवन से शान्तनु कुण्ड आने पर मार्ग मे 'गिरधर पुर' गाँव भी पड़ता है, जहाँ चामुण्डा देवी का मन्दिर है। इसे चर्चिका देवी भी कहा जाता है। यह ब्रज की लोक-देवी है।

गरोसरा

"नाम्ना गन्धर्वकुडन्तु, तीर्थाना तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नातो नरो देवि, गन्धर्वैं सह मोदते॥"

यह स्थान शान्तनु कुण्ड से ईशानकोण मे लगभग १ मील है। इस गाँव का प्राचीन नाम 'धगेश्वरा' था, इससे प्रतीत होता है कि किसी समय यहाँ सुगधित पुष्पावली का आधिक्य रहा होगा और भगवान् ब्रजराज के श्री अगो मे वह सुशोभित होती होगी। यहाँ 'गन्धर्व कुण्ड' नाम का एक कुण्ड भी है। इसी के पास एक दूसरा गाँव 'खेंचरी' है। वहाँ भी एक कुण्ड है। कहा जाता है कि 'खेंचरी' गाँव पूतना का गाँव है, जिसने भगवान् को अपने स्तनों का विष-मिश्रित दुग्ध पिलाकर भी उनसे माता की सी सद्गति प्राप्त की थी।

बहुलावन (बाटी ग्राम)

"गाय चरावत कृष्ण जू, तिन मे बहुला गाय।
भयौ सु ताके नाम सो, बहुलावन सरसाय॥" —जगतनन्द

यह स्थल मथुरा से साढे तीन कोस दूर है। कहा जाता है कि यहाँ बहुला नाम की एक गाय को सिंह ने घेर लिया था और उसका वध करना चाहा था, परन्तु गाय ने अपने बछड़े को दूध पिला देने का अवसर देने की सिंह से प्रार्थना की। सिंह

ने गाय को चले जाने दिया। गाय अपने वचन के अनुसार अपने बछडे को दूध पिला कर लौट आयी। सिंह गाय के इस दृढ व्रत से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उसे छोड़ दिया। इस विवरण से ज्ञात होता है कि किसी समय इस वन मे हिंस्र पशु निवास करते थे।

वहुलावन की गणना व्रज के द्वादश वनो मे हैं। गर्ग सहिता के अनुसार यहाँ भगवान् श्री कृष्ण ने वशी मे मेघ मल्हार राग वजा कर वर्षा कराई थी—

"प्रपयो वहुला वनं लता जालं समन्वितम्।
तत्र स्वेद समायुक्त, वीक्ष्य सर्वं सखी जनम्॥
रागं तु मेघ मल्लार जगौ वशीधर. स्वयम्।
सद्यस्त त्रं ववृषु मेघा अवुकणास्तथा॥" —गर्ग०, वृ० १६।२५।१७।

आजकल वहुलावन ग्राम 'वाटी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे 'वलराम कुण्ड' तथा 'मान सरोवर' नामक दो वृहत तालाव है। 'मान सरोवर' के विषय मे यह विश्वास किया जाता है, कि उसमें स्नान करने से जीवो को मनोवाछित योनि प्राप्त होती है। गाँव मे 'वहुला-विहारी' जी का प्राचीन मन्दिर है तथा वहुला गौ और सिंह के दर्शन हैं। यहाँ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की वैठक भी है।

रार

वहुलावन अर्थात् 'वाटी' के पास ही एक अन्य ग्राम है 'रार'। प्राय रार-वाटी साथ-साथ ही उच्चरित होते है। रार का शब्दार्थ 'झगड़ा' होता है। कहा जाता है कि गौ और 'सिंह' की 'रार' (झगड़ा) यहाँ समाप्त हुई थी, अत इसका नाम 'रार' पड़ा। यहाँ 'देवकी कुण्ड', 'वलभद्र कुण्ड' और वल्देव जी की गौर वर्ण मूर्ति है। इस गाँव के पास एक प्राचीन 'कदम खण्डी' भी है।[1]

मयूर ग्राम

यह स्थल वाटी से लगभग २ मील नैऋत्यकोण मे स्थित है। कहते हैं किसी समय यहाँ मयूरो (मोरो) का आधिक्य था इसी से यह नाम पड़ा। यहाँ 'मयूर कुण्ड' है और छोटे महावीर जी के दर्शन हैं। वर्त्तमान नाम 'मोरा' है।

तोषवन

यह ग्राम वाटी से नैऋत्य दक्षिण मे लगभग ढाई मील दूर स्थित है। भगवान् के प्रिय सखा 'तोष' का यह स्थल है। इसी सखा से भगवान् ने नृत्य की शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ 'तोष कुण्ड' नामक तालाव है।

यक्षधन गाँव

वर्तमान नाम जिखिन गाँव है जो तोष गाँव से लगभग पश्चिम-दक्षिण मे लगभग चार मील दूर है। कहा जाता है कि यहाँ सौराष्ट्र के यक्षधन नामक धनुर्धर नरेश ने तपस्या की थी और वलराम जी को प्रसन्न किया था। यहाँ रेवती जी व वलभद्र जी के कुण्ड तथा वल्देव जी का मन्दिर है।

---

१ लाधन के पास है, कदमखण्डि सुख रूप।
वन विहार लीला करें, गोपी गोकुल-भूप॥" —अज्ञात

जसुमति (जसोदी)

यह गाँव रार-वाटी से लगभग तीन मील नैऋत्यकोण मे स्थित है। यहाँ जसुमती नामक, भगवान् कृष्ण की एक सखी ने सूर्य की आराधना की थी, ऐसी अनुश्रुति है कि कहा जाता है। माता जसोदा ने भी कृष्ण जैसा पुत्र पाने की इच्छा से यहीं, सूर्योपासना की थी। इस ग्राम मे 'सूर्य कुण्ड' है।

वसति (बसोती)

यह ग्राम जसोंदी के निकट ही है और भगवान् कृष्ण की एक प्रिय सखी वसुमति का स्थल है। कहा जाता है कि उक्त सखी ने वसन्त-पचमी के शुभ दिन, भगवान् को यहाँ पधराया था। यहाँ 'वसन्त कुण्ड' है और 'राज कदम्ब' वृक्ष मे मुकुट का चिन्ह वतलाया जाता है। लोक-विश्वास है कि यहाँ वृषभानु जी ने भी कुछ समय निवास किया था।

अरिगृह (अडीग गाँव)

"तथापि रभसास्तास्तु, सपत्तान रोहिणी सुत।
अहन्यारि घमुध्यस्य, पशूनिव मृगाधिप॥" —भाग० द० ४४।४१

तोष ग्राम से अग्निकोण मे लगभग ४ मील दूर यह गाँव मथुरा-गोवर्धन मार्ग पर स्थित है। यह गाँव बल्देव जी से विशेष रूप से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि कस-वध के उपरान्त, भगवान् वल्देव ने कस के समर्थक उसके आठ भाइयो को यही घेर कर, पराक्रमपूर्वक मारा था। वल्लभाचार्य जी के अनुसार यहाँ पर भगवान् कृष्ण ने अड कर गोपिकाओ से दान प्राप्त किया था। इस ग्राम मे 'किलोल-बिहारी' जी का मन्दिर और 'किलोल कुण्ड' है।

अठारहवी शताब्दी मे, इस स्थान पर भरतपुर-नरेशो का मराठो के साथ एक भयकर युद्ध भी हुआ था जिसमे कई हजार जाट और गूजर काम आये।

अरौठ

"आरुठ को सहार कर, कृष्ण देव बल जोर।
न्हावे कों प्रभुजू करी, कृष्ण-कुण्ड तिहि ठौर॥" —जगतनन्द

यहाँ अरिष्ठासुर का सहार किया गया था अत इसका नाम आरिट ग्राम पडा। इसी घटना के कारण 'राधा कुण्ड' का आविर्भाव हुआ।

मुखराई

इस स्थल का नाम कुछ व्यक्ति प्राचीन 'मोक्षराज' तीर्थ कहते हैं। यह स्थल राधा कुण्ड से दक्षिण मे लगभग १ मील है। इस गाँव को 'मुखरा' नाम के किसी गोप का निवास-स्थल वतलाया जाता है जो नारद जी के उपदेश से मुक्त हुआ था। कुछ व्यक्ति इस स्थल को राधिका रानी की मातामही 'मुखरा' जी का स्थान वतलाते है। 'यहाँ मुखरा देवी' का मन्दिर, एक कुण्ड और एक 'वजनी शिला' है।

रत्न सिंहासन

यह स्थल गोवर्धन से ईषानकोण मे और कुसुम सरोवर के दक्षिण मे है। यह भगवान् कृष्ण के गौ-चारण का स्थल है[1] जहाँ बैठे-बैठे वे अपने सखाओ का मार्ग-दर्शन करते थे। कहा जाता है कि यह भगवान् कृष्ण की फाग-लीला से भी सम्बन्धित है। सम्भवत. यहीं 'शखचूड़' दैत्य का वध हुआ था। चैतन्य महाप्रभु ने भी गोवर्धन आकर इस स्थल पर विश्राम किया था ऐसा वतलाया जाता है।

राधा कुण्ड

"आदौ स्नान तु राधाया' कुण्डे सवार्थदायकम्।
ततस्तु कृष्ण कुण्डे तु सर्व पाप प्रणाशनम्॥
विमलौ सर्व पापघ्नौ ब्रह्म-हत्या विघातकौ।
वृष हत्यादि पापानि प्रणश्यन्ति प्रभावत.॥
धन धान्य सुतोत्पत्तिश्चिराय सुख माप्नुयात्।"—ब्रज-भक्ति विलास

राधा कुण्ड मुखराई गाँव से उत्तर मे एक मील की दूरी पर है। गोस्वामीवर्य श्री यदुनाथ जी के सुपुत्र श्री वल्लभ जी महाराज ने अपने "व्रज-कमल भावना" नामक निवन्ध मे गिरिराज के समीपवर्ती स्थलो का शोड्ष दल कमल रूप मे वर्णन किया है जिसमे श्री राधा कुण्ड को प्रथम दल निरूपित किया गया है। राधा कुण्ड को 'श्री कुण्ड' भी कहा जाता है। इसके आस-पास के वन का नाम 'अरिष्ट वन' है। कहा जाता है कि कस के भेजे हुए 'अरिष्टासुर' नामक वृष देहधारी असुर को मारने के कारण गोपो ने कृष्ण को वृष-हत्या का दोष लगाया और इस लोक-लाछना से प्रभावित होकर श्री राधा जी ने भी उनसे ससर्ग विच्छेद कर दिया—

"ततस्तु राधिकात्यक्तो ललितामोहन स्तदा।
अस्माक नैव ससर्गो वृष हत्या समन्वित॥"—ब्रज-भक्ति विलास

इससे व्याकुल होकर कृष्ण ने एक दिन राधा जी को राह मे रोक लिया और हाथ पकड कर खडे हो गये, तव अपनी विवशता देख राधा जी ने वहाँ दो युगल कुण्ड प्रगट किये जिनमे स्नान करके भगवान् दोष-मुक्त हुए।

राधा-कृष्ण कुण्ड वडे ही रमणीक हैं किन्तु गिरिराज पर्वत का निचला भू-भाग होने के कारण यहाँ जमीन मे गीलापन, मच्छरो और मलेरिया का प्रकोप विशेष रहता है। प्राय वर्षा अधिक होने पर यहाँ चारो ओर जल भी पर्याप्त मात्रा मे भर जाता है। श्री नारायण भट्ट गोस्वामी के अनुसार राधा कुण्ड कृष्ण जी का रास-स्थल भी है।[2]

यहाँ के प्रधान तीर्थों मे—(१) ककण कुण्ड (यह राधा कुण्ड के अन्दर जल मे है), (२) वज्रनाभ कुण्ड (यह कृष्ण कुण्ड के अन्दर जल मे है), (३) अरिष्टवन,

---

१ "गाय चरावत कृष्ण जू देखौ उत्तम ठाम।
लक्ष्मीनाथ विराजहीं, मधि सिंहासन गाम॥"—जगतनन्द।

२. यत्र राधा करोद्रास कृष्णेन सह विह्वला।
सप्त वर्ष स्वरूपेण सखिभिर्वहुधा सुखम्॥"—श्री नारायण भट्ट गोस्वामी

(४) ललिता कुण्ड, (५) विशाखा कुण्ड, (६) गोपी कूप, (७) गिरिराज जी की जिह्वा, (८) राज कदम्ब मे मुकुट का चिन्ह, (९) हिंडोला वट और (१०) पाँचो पाण्डवो के वृक्ष प्रसिद्ध हैं।

दर्शनीय देव विग्रहो मे यहाँ के ठाकुर गोविन्द जी और राधा वल्लभ जी हैं। यहाँ श्री वल्लभाचार्य जी की बैठक भी कुण्ड के ऊपर तथा चैतन्य महाप्रभु का स्थल 'तमाल लता' नाम से प्रसिद्ध है।

जिस प्रकार जतीपुरा भक्ति-युग मे वल्लभ सम्प्रदाय का केन्द्र था उसी के समानान्तर बगाली साधुओ ने राधा कुण्ड को विशेष महत्त्व दिया और चैतन्य महाप्रभु के साथियो और अनुयायियो से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण स्थल राधा कुण्ड मे है। इन स्थलो मे नित्यानन्द प्रभु की पत्नी श्रीमती जाह्नवी माता ठकुरानी जी का स्थान जाह्नवी घाट, रघुनाथ दास गोस्वामी जी की भजन कुटी व समाधि, श्री जीव गोस्वामी की बैठक, 'तमाल लता', तथा नारायण भट्ट जी द्वारा निर्मित श्री कृष्ण दास ब्रह्मचारी की समाधि और श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी की भजन कुटी उल्लेखनीय हैं। गाँव से बाहर श्री राजेन्द्र गोस्वामी की समाधि है जिन्होने भगवान् कृष्ण के विरह में प्राण त्याग दिये थे।

पर्व—राधा कुण्ड मे कार्तिक कृष्णा ८ को स्नान का विशेष महात्म्य है—इस दिन रात्रि के १२ बजे इन दोनो कुण्डो मे स्नान करने को हजारो नर-नारी आते हैं। ऐसी मान्यता है कि इस रात्रि मे इन दोनो कुण्डो मे दूध की धारा प्रकट होती है और इस पवित्र काल मे यहाँ स्नान करने से स्त्री-पुरुषो के अनेको उपसर्ग-जन्य अपुत्रा, मृत वत्सा, प्रमाद आदि दोष दूर हो जाते हैं।

वर्तमान समय मे, राधा कुण्ड एक उन्नतिशील टाउन एरिया है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार इस कस्बे की जनसख्या २,१०२ थी।

माल्याहारि कुण्ड

यह स्थल राधा कुण्ड से पश्चिम मे है। दास गोस्वामी ने अपने 'मुक्ता-चरित' ग्रन्थ मे यहाँ की गई राधा-कृष्ण की लीला का बड़ा सरस वर्णन किया है। दीपोत्सव के अवसर पर शृगार के लिए जब राधिका रानी ने भगवान् को मोती प्रदान नही किये तो भगवान् ने इस स्थान पर मोतियो की खेती करके उन्हे उगाया था, ऐसा कहा जाता है।

कुसुम सरोवर

"यत्रैव ललिद्यास्ता. सख्यो गोप्यस्तथा खिला.।
रचयेयुर्मनोर्येस्तु रम्य पुष्प वन शुभम् ॥" —पद्मपुराण

कुसुमसरोवर को 'पुष्पवन' भी कहा गया है, यहाँ पुष्प-चयन करके राधा जी की सखियो ने युगलबिहारी भगवान् का शृगार किया है।

कुसुमसरोवर ब्रज का एक बहुत ही विशाल है और स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। इसके चारो ओर सुन्दर लता वृक्ष और घाट छतरी बुर्ज इत्यादि

की रम्यता दर्शनीय है। भागवत मे इस वन का वर्णन बड़ा ही प्रभावोत्पादक है[1]।

प्राचीन ग्रन्थो मे कुसुमवन को वृन्दावन भी कहा गया है। ऐसा वर्णन है कि यहाँ कृष्ण जी के पोते वज्रनाभ जी ने महात्मा उद्धव के उपदेश से एक महीने तक भागवत की कथा और हरि-कीर्तन का महान् आयोजन किया था जिसमे भक्ति-रस की धारा प्रवाह के साथ भगवान् कृष्ण साक्षात् रूप से लीला करते इस वन-स्थली मे दृष्टिगोचर हुए थे। यहाँ के महात्म्य के विषय मे लिखा है—

"यत्र स्थान समुद्भूतै पुष्प रम्यर्चन हरे।
कुरुते सर्वदा सौख्य नित्यमेव वरं लभेत्॥" — स्कन्द पुराण

कुसुम सरोवर के निकट ही 'नारद कुण्ड' और 'उद्धव कुण्ड' नामक महत्वपूर्ण कुण्ड हैं। यहाँ वीर भरतपुर नरेशो की छत्री भी बड़ी आकर्षक और वास्तु-कला की सुन्दर कृति है। कहा जाता है कि महाराजा जवाहर सिंह ने 'दिल्ली-विजय' मे जो धन प्राप्त किया उसका यहाँ सदुपयोग किया गया था।

भरतपुर के जाट नरेश जवाहर सिंह ने जब दिल्ली की लूट की उस समय के सारे धन को उन्होने व्रज मे लगा दिया। दीग के भवन तथा कुसुम सरोवर उसी द्रव्य से निर्मित जाट शाही पराक्रम के कीर्ति-चिह्न हैं। इसमे से कुसुम सरोवर की छत्री जो जाट राजा सूरज मल की स्मृति मे निर्मित की गई है, व्रज की स्थापत्य कला की एक अनमोल निधि है।

गोवर्धन

कुसुम सरोवर से ग्वाल पोखरा जिसका शास्त्रीय नाम 'ग्वाल पुष्करिणी' है होकर गोवर्धन है, जो गिरिराज पर्वत के ऊपर बसा हुआ कस्बा है। इसकी जनसख्या लगभग छ-सात हजार है। टाउन एरिया की प्रशासन-व्यवस्था है। पोस्ट आफिस, पुलिस स्टेशन तथा माध्यमिक स्तर तक शिक्षण-सस्थाओ आदि की सभी आधुनिक साज-सज्जाओ से परिपूर्ण है। यहाँ गिरिराज पर्वत जमीन के नीचे समाये हुए है और गाँव के बाहर ही उनके दर्शन पर्वत रूप मे होते हैं तथा मानसी गगा और दान घाटी के बीच मे भी उनका कुछ स्वरूप देखा जा सकता है।

मानसी गगा—मानसी गगा गिरिराज पर्वत की गोद मे बनाया गया एक विशाल जलाशय है जिसके चारो ओर पक्के घाट तथा गोवर्धन की बस्ती बसी हुई है। यहाँ आसाढ मे मुड़िया पूनो तथा कार्तिक मे दीप-मालिका का उत्सव होता है। मानसी गगा कृष्ण के मन से प्रगट हुई है ऐसा शास्त्रकारो का मत है, दिवाली के दिन वह दुग्धमयी हो जाती है ऐसा भी व्रज के लोगो का विश्वास है—

"गगे दुग्ध मये देवि भगवन्मानसोद्भवे।
नम कैवल्य रूपाढ्ये मुक्ति दे मुक्ति भागिनी॥" —व्रज-भक्ति विलास

---

१ तन्माधवो वेणु मुहीरयन् वृतो,
गोपैर्गणद्भि स्वयशो बलान्वित॥
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्,
विहर्तु काम कुसुमाकर वनम्॥ —श्री मद्भागवत स्क० १० अ० १५ श्लोक २

गिरिराज—गोवर्धन के तीर्थों मे—(१) ब्रह्मकुण्ड, (२) चक्रतीर्थ, (३) चक्रेश्वर शिव, (४) हरिदेव जी, (५) मनसा देवी, (६) लक्ष्मी नारायण जी, (७) गिरिराज जी का मदिर, (८) दानघाटी, (९) दान घाटी के गिर्राज जी, (१०) चार कुण्ड (धर्मरोचन, पापमोचन, ऋणमोचन, गोरोचन) प्रसिद्ध है। गोवर्धन मे ही मनसा देवी के निकट मानसी गगा के तट पर किसी समय अष्टछाप के सुविख्यात कवि नन्ददास जी निवास किया करते थे।

ब्रज मे गिरिराज जी और श्री यमुना जी की मान्यता विशेष है। कृष्णावतार के समय की ये दो वस्तुएँ ही प्रत्यक्ष प्रमाणित, परम पवित्र, भगवद्रूप और परम पूजनीय मानी जाती हैं।

श्री गिरिराज

गिरि गोवर्धन वही पर्वत है जिसे श्री कृष्ण ने इन्द्र की प्रलयकारी वर्षा से ब्रज को बचाने के लिए अँगुली पर धारण किया था। गिरि गोवर्धन को ही 'गिरिराज' पर्वत कहते है। भागवत के अनुसार इस पर्वत की पूजा के समय कृष्ण ने ही गिरिराज पर्वत पर प्रत्यक्ष देव रूप धारण कर पूजा ग्रहण की थी इसीलिये इस पर्वत को साक्षात् कृष्ण का ही रूप मान कर पूजा जाता है। भागवतकार कहते हैं—

"कृष्णस्त्वन्यतम रूप गो विश्रम्भण गतः।
शैलो स्मीति ब्रुवन भूरि बलि मावद्वृहद्वपु ॥"

—श्रीमद्भागवत स्क० १०, अ० २४, श्लोक ३५

गिरिराज गोवर्धन के चमत्कारी प्रभाव का वर्णन करते हुए स्वय श्री कृष्ण कहते हैं—

"एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी बनौकस.।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामो शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥" —१०।२४।३७

गिरिराज को ब्रज-मण्डल का 'छत्र' या रक्षक भी इसी कारण कहा गया है—

"गोवर्धन वनाधीश नाथ वन्दे जगद्गुरुम्।
सप्ताब्द रूपिणं कृष्ण बनयात्रा शुभम् भवेत ॥" —कौशिकोपनिषद्

गोवर्धन ब्रज के समस्त वनो के अधिनायक देव हैं, वे ही जगद्गुरु श्री कृष्ण का रूप भी धारण करने वाले हैं, जो सात दिन तक स्थिर रहा था। उन्ही की कृपा से ब्रज की 'वन-यात्रा' कल्याणकारी होती है। सन्त-शिरोमणि सूरदास जी के शब्दो मे—

"गिरिवर श्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकई सहस भुजा पसारि ॥
नन्द के कर गहें ठाडौ यहै गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं कहत यहै स्वरूप ॥
यहै कुण्डल यहै माला यहै पीत पिछौर।
शिखर शोभा श्याम की छबि श्याम छवि गिरि जोर ॥

नारि बदरौला रही वृषभान घर रखबारि।
तहाँ ते वह भौन भ्ररपत लियौ भुजा पसारि॥
राधिका छबि देख भूली श्याम निरखी ताहि।
सूर प्रभु बस भई प्यारी चकोर लोचन चाहि॥"

गिरिराज पर्वत की परिक्रमा भी दी जाती है। हजारो श्रद्धालु यात्री प्रति-वर्ष गिरिराज की परिक्रमा देने आते है। खास कर अधिक पुरुषोत्तम मास मे तथा प्रति मास की पूर्णिमा को गिरिराज की परिक्रमा जो सात कोस की है लगाई जाती है। इनमे से कोई-कोई दूध की धारा देते हुए एव कोई दडवत करते हुए भी इस पवित्र परिक्रमा का अनुष्ठान सम्पन्न करते है।

गिरिराज की उत्पत्ति पुराणो के अनुसार द्रोणाचल पर्वत से है और व्रज में उन्हें पुलस्त्य ऋषि लेकर आये है ऐसा 'गर्ग सहिता' के गिरिराज खण्ड मे उल्लेख है। गिरिराज जी ने उनसे वचन लिया था कि वे जहाँ भी उन्हें रख देंगे वहाँ से फिर वे नही विचलित होगे। वे उन्हे काशीपुरी ले जाना चाहते थे और मार्ग मे ही व्रज-भूमि के सौन्दर्य और कृष्णावतार की अपनी सेवाओ का स्मरण कर श्री गिरिराज ने प्रभु को स्मरण किया और उन्होने मुनि को लघुशका के वेग से आकुल कर दिया। मुनि ने सहसा गिरिराज को उनके वर्तमान स्थान पर रख दिया, जहाँ वे अभी तक स्थित हैं।

वाराह पुराण के अनुसार वानर राज हनुमान सेतुबन्ध के समय उत्तराखण्ड से इन्हें ला रहे थे उस समय "सेतु बँध चुका है जो पर्वत जहाँ लिये हो वही रख दें" ऐसी राम जी की आज्ञा सुनकर हनुमान ने गिरिराज पर्वत को व्रज मे ही छोड़ दिया, यथा—

"देवताकाश वाक्यैस्तु सेतु पूर्णस्तु जायते।
इति वाक्यं समाकर्ण्य प्रक्षिप्त अवनी तले॥" —वाराह पुराण

गिरिराज पर्वत के महात्म्य के विषय मे लिखा है—

"गोवर्धन गिरिवर लोकानभय दायक।
तस्य दर्शन मात्रेण मुक्तिभागी भवेन्नर॥"—मथुरा व्रज प्रकाश

कहते हैं इन्द्र के शाप से गिरिराज पर्वत एक तिल नित्य जमीन मे धँस जाते हैं, और उनके लोप हो जाने पर इस पृथ्वी पर घोर कलियुग का साम्राज्य हो जायगा। श्री गिरिराज की परिक्रमा मे आने वाले मुख्य स्थल तीर्थ और देवता निम्न प्रकार है—

मानसी गंगा—दानघाटी, लक्ष्मी नारायण मन्दिर, आन्यौर, सकर्षण कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, गोविन्द जी का मन्दिर, श्री नाथ जी, पूँछरी, पूँछरी का लौठा, नवल कुण्ड, अप्सरा कुण्ड, अप्सरा विहारी, रामदास की गुफा, दूँका बल्देव, सुरभी कुण्ड, सुरभी कुण्ड का मन्दिर, जतीपुरा, और जान-अजान् वृक्ष आदि, आदि, और राधा-कुण्ड की परिक्रमा मे उद्धव कुण्ड, नारद कुण्ड, उद्धव दर्शन, राधा-कृष्ण कुण्ड, कुसम सरोवर, दाऊ जी के दर्शन प्रसिद्ध हैं।

गोवर्धन ग्राम से एक मील दूरी पर 'यावक कुण्ड' है जिसका वर्तमान नाम 'महेन्द्र कुण्ड' है।

जमनावतौ

जमनावतौ अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कुंभन दास जी का गाँव है। यहाँ किसी समय यमुना की धारा गिरिराज पर्वत के समीप बहती थी जिसके प्रमाण स्वरूप अब भी कहीं-कहीं कुआँ आदि खोदने से यमुना की रेणुका निकल आती है।

जमुनावतौ ही अष्टछाप के दो महत्वपूर्ण महाकवि और निस्पृही भक्त कुंभन दास जी और उनके पुत्र चतुर्भुज दास की निवास-भूमि है, जिसके कारण यह साहित्यकारों के लिये एक महत्वपूर्ण तीर्थ माना जाना चाहिए। यहाँ कुंभन दास जी का "खिरक" "कुंभन तलाई" और श्यामा गाय की बैठक है। कहा जाता है कि इसी गाँव के एक पीपल के वृक्ष के नीचे जो आज भी विद्यमान है स्वयं श्री नाथ जी पधार कर कुंभन दास जी के साथ मनोविनोद किया करते थे।

इन्द्रध्वज वेदी

यह स्थान गोवर्धन की पूर्व दिशा में है। यहाँ नन्दराय इन्द्र की पूजा किया करते थे, परन्तु भगवान् श्री कृष्ण ने इन्द्र का मान-मर्दन करके गोवर्धन पूजा की थी। इन्द्रध्वज वेदी के पास ही 'ऋण-मोचन' और 'पाप-मोचन' कुण्ड हैं।

परासौली और चन्द्र सरोवर

यह ग्राम और सरोवर गोवर्धन से १। मील पूर्व मे स्थित हैं। चन्द्र सरोवर अति सुन्दर पक्का बना हुआ सरोवर है। इसी के निकट की बस्ती का नाम परासौली गाँव है। वैष्णव ग्रन्थो के अनुसार यहाँ श्री कृष्ण ने महारास के उपक्रम मे छ महीने की रात्रि का आविर्भाव कर लोकोत्तर आनन्ददायिनी नृत्य-क्रीड़ा की हैं। अष्ट पहल पक्का सुरम्य सरोवर इसी रास-रचना की स्मृति का चिह्न है। चन्द्र सरोवर के निकट ही शृंगार मन्दिर तथा रास-मण्डल है। दूसरी ओर बल्देव मन्दिर तथा संकर्षण कुण्ड है। यहाँ पर श्री नाथ जी का जलघड़ा और इन्द्र के औंधे नगाडे पड़े बताये जाते हैं। यहाँ दो बडे और भारी, दुन्दुभी के आकार के पत्थर है, जिन पर चोट देने से नगाडो की सी आवाज निकलती है। यही पर 'देवला कुण्ड' और 'मोह कुण्ड' हैं। यहाँ ब्रज साहित्य के सूर्य महात्मा सूर का निवास-स्थल भी है और उनके लीला-प्रवेश के स्थान पर ब्रज साहित्य मण्डल के प्रयत्न से यू० पी० सरकार द्वारा हाल मे ही एक सूर-स्मारक बनाया गया है। महात्मा महाकवि सूरदास का काव्य-साधना स्थल होने के कारण यह स्थान साहित्यिक तीर्थ-स्थल भी है। यहाँ वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य एवं अन्य गोस्वामी महानुभावो की बैठकें उनकी स्मृति मे बनाई हुई है।

परासौली का प्राचीन नाम परस्पर वन है,[1] यहाँ राधा-कृष्ण की परस्पर

---

१ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'परासौली' पलाश+अवली का तद्भव रूप है। उनके अनुसार यहाँ कभी पलास वृक्षों का विशाल वन रहा होगा। —सम्पादक

प्रीति रास नृत्य मे प्रगट हुई है, यथा—

"परस्परोद्भुवा प्रीति राधा कृष्ण विहारिणे ॥"

पैठागाँव

परासौली के दक्षिण मे दो मील दूर यह ग्राम है। कहा जाता है कि सखाओ ने भगवान् की परीक्षा लेनी चाही ताकि उन्हें विश्वास हो सके कि वे गिरिराज कों उँगली पर धारण कर भी सकेंगे या नही, तव श्री कृष्ण ने एक कदम वृक्ष को हाथ से ऐंठ दिया। अव भी यहाँ ऐंठा कदम वृक्ष है और तदनुसार इसका नाम 'ऐंठा गाम' 'पैठा गाम' पड़ गया। दूसरी किंवदन्ति यह भी है कि वसन्त रास के समय जब श्री कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये, तव गोपिकाओ सहित राधा जी उन्हें खोजने चली और अकस्मात वे सफल भी हो गई। उस समय भगवान् चतुर्भुज स्वरूप मे थे। किन्तु राधा जी के सम्मुख उन्हें अपना चतुर्भुज रूप त्यागना ही पड़ा और तव उनके दो हाथ सकुचित होकर शरीर मे पैठ गये। यह घटना इसी स्थल की है अत इसका नाम 'पैठा' पड़ गया।

यहाँ चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन हैं। तथा भगवान् श्री कृष्ण के वैठने की गुफा है। 'क्षीर-सागर', 'नारायण-सर' तथा 'वलभद्र कुण्ड' और 'लक्ष्मी कूप' है, जहाँ कि लक्ष्मी जी प्रभु के दर्शन हेतु व्रज मे पधारी थीं।

वछगाँव

पैठा के तीन मील दक्षिण मे वछगाम या वढ़गाम है। असुर द्वारा वछड़े चुराने की घटना यही घटी थी। अत वछगाँव नाम पड़ा। दर्शनीय स्थल हैं—'कनक सागर', 'सहस्र कुण्ड', 'राम कुण्ड', 'रावरी कुण्ड', 'माखन चोर ठाकुर' और 'वत्स विहारी ठाकुर।'

गौरी तीर्थ

यह स्थान आन्यौर के पूर्व मे थोडी सी दूरी पर ही है। यहाँ पर 'नीप वृक्ष' और 'नीप कुण्ड' है। कहा जाता है कि यहाँ पर चन्द्रावली जी गौरी पूजा के वहाने आकर सखियो सहित श्री कृष्ण से मिलती थी।

आन्यौर

"श्री गोवर्धन उद्धरन, खेलत व्रज की खोर।
इन्द्र-गर्व कों दूरि करि, फिर चितवत आन्यौर ॥" —जगतनन्द

गोवर्धन ग्राम से दो मील दक्षिण, परिक्रमा के मार्ग मे गिरिराज की तलहटी मे, आन्यौर ग्राम वसा हुआ है। कहा जाता है कि जव भगवान् कृष्ण के उपदेशानुसार गोपी-गोपिकाओं ने इन्द्रदेव के निमित्त सग्रहीत द्रव्यो से गिरिराज की पूजा की, तो श्री कृष्ण गिरिराज रूप मे प्रकट होकर समस्त भोजन-सामग्री को ग्रहण करने लगे, साथ ही कहते जाते थे "आन और, आनि और" अर्थात् व्रज भक्तो से हाथ पसार कर सामग्री माँगी। अत इस स्थल का नाम आन्यौर पड गया।

अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कुंभन दास जी का भी आन्यौर गाँव से घनिष्ट सम्वन्ध था। इसी गाँव मे उनके खेत थे और यही राजा मानसिंह उनके दर्शनार्थ

आये थे, ऐसा वार्त्ता साहित्य मे उल्लेख है। कुंभन दास जी ने अपना शरीर भी यही त्यागा था। यहाँ उस महाकवि की समाधि एक छोटे से चबूतरे के रूप मे उपेक्षित और अरक्षित पडी है। यहाँ पास ही मे 'गौरी कुण्ड' है और दही-कटोरा, टोपी, मोजा आदिक अनेक चिह्न गिरिराज के ऊपर देखने मे आते हैं। यहाँ पर सकर्षण कुण्ड तथा बल्देव जी का मन्दिर है। यही पर 'बाजनी शिला' है जिस पर प्रहार करने से मधुर आवाज निकलती है।

अन्नकूट स्थान—आन्यौर मे ही यह स्थान है। यहाँ पर अन्नो का कूट अर्थात् राशि पर्वताकार मे रखा गया था, अत इस स्थान का नाम 'अन्नकूट' पडा। यहाँ पर महाप्रभु वल्लभाचार्य के परम भक्त 'सद्दू पाण्डे' का घर है जिसमे महाप्रभु की बैठक और श्री कृष्ण के दही-कटोरा और कमल का चिह्न है।

गोविन्द कुण्ड

"सुरभी, सुरपति संग लिये, निरखि कृष्ण मुख इन्दु ।
कियौ राज अभिषेक तँह, भयौ कुण्ड गोविन्द ॥" —जगतनन्द

यहाँ इन्द्र ने अपराध-भय से, समस्त तीर्थों के जल तथा विविध द्रव्यो से सुरभी के द्वारा भगवान् श्री कृष्ण का अभिषेक करा कर 'गोविन्द' नाम रखा था। वही जल इस कुण्ड मे आया अत 'गोविन्द कुण्ड' नाम पडा। यहाँ ठाकुर जी के छाक खाने और खेलने का स्थान है। श्री राधा जी का "रास-चौंतरा" है। गोविन्द देव जी के दर्शन है। गिरिराज जी के ऊपर गोविन्द घाटी है जहाँ श्री आचार्य जी की गुप्त बैठक है। कहा जाता है कि वहाँ श्री स्वामिनी जी और ठाकुर जी के हस्ताक्षर हैं। यहाँ पर एक वृक्ष के नीचे गोपाल जी ने श्री माधवेन्द्र पुरी जी को गोप-बालक रूप मे दर्शन दिये थे और उन्हें स्वप्न मे अपने प्रागट्य का आदेश दिया था। श्री माधवेन्द्र जी ने ग्राम-वासियो की सहायता से गोपाल जी की मूर्त्ति धरती में से निकाली और गोपाल मन्दिर की स्थापना की। आजकल यह गोपाल जी नाथ द्वारे में विराजमान हैं।

अप्सरा कुण्ड

"आइ अप्सरा कुण्ड पै, सखन सहित हरिराय ।
गोपिन कौ गायन सुन्यों, मन मे अति सुख पाय ॥" —जगतनन्द

गोविन्द कुण्ड के समीप ही 'अप्सरा कुण्ड' है। यहाँ गोपिकाओ की निकुंज थी। कहा जाता है कि जब भगवान् ने गोपिकाओ को नृत्य-गायन के हेतु बुलाया तब वे इन कलाओ मे अकुशल थी। 'अप्सरा कुण्ड' मे स्नान करने के पश्चात् वे नृत्य एव गायन मे पारगत हो गई। यही पर राजा का बनवाया हुआ नवल कुण्ड है।

यह स्थान अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि छीत स्वामी का भी वास-स्थान है।

पूँछरी

गोविन्द कुण्ड से कुछ ही फर्लांग की दूरी पर पूँछरी नामक स्थान है। यहाँ गिरिराज पर्वत का पिछला किनारा है जिसे 'पूँछरी' या 'पूँछड़ी' कहते हैं। ऐसा ब्रज-भक्तो का विश्वास है कि श्री गिरिराज जी गौ स्वरूप है—उनका मुख

जिह्वा के दर्शन राधा कुण्ड मे तथा पूँछ पूँछरी गाँव मे है। इसी स्थान पर मथुरा जिले की सीमा तथा उत्तर प्रदेश राज्य की सीमा भी समाप्त हो जाती है और राजस्थान राज्य की भूमि आरम्भ हो जाती है। इस प्रकार यह स्थल राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य का सीमावर्ती स्थान है। यहाँ सघन लता कुंज वडी ही मनोरम हैं तथा लता-कुंजो मे ही श्री राधा विहारी जी का दर्शन, नृसिंह भगवान् का दर्शन, और नवल अप्सरा विहारी जी के दर्शन भी है। यहाँ नवल कुण्ड, अप्सरा कुण्ड के नाम से दो अत्यन्त शीतल जल वाले सुरम्य सरोवर हैं जहाँ सर्वैव मोर मधुर ध्वनि से शब्द किया करते हैं। कहा जाता है कि यहाँ गोवर्धन-पूजन के समय कृष्ण के नवल स्वरूप की छटा देखने को स्वर्ग से अप्सराओ का दल एकत्र हुआ था और उन्होने कृष्ण के रूप पर मोहित हो 'नवल किशोर' नाम रख कर कृष्ण का यश गान किया था।

यहीं समीप ही मे एक अति प्राचीन पहलवान जैसी मूर्ति है जिसे "पूँछरी का लौठा" कहा जाता है। पूँछरी का लौठा ब्रज में वहुत प्रसिद्ध है। इसके विषय मे एक अत्यन्त मनोरंजक लोक गीत है जो व्रज के गाँव-गाँव मे गाया जाता है—

"धनि तोईयै पूँछरी के लौठा।
अन्न खाइ नहीं पानी पीवै, अरे तोऊ तूतो परयौ है सिलौटा।
दूध न छोड़ै दहीऊ न छोडै, अरै तू तौ पी गयौ छाछ कठौता॥"

ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह देव-मूर्त्ति प्राचीन किसी वुद्ध प्रतिमा का परिवर्तित स्वरूप है। कुछ भी हो परन्तु निश्चय ही यह भव्य सिंदूर-चर्चित मल्ह-प्रतिमा व्रज के लोगो के मनोरंजन और उल्लास की उत्तम सामग्री है। प्राचीन ग्रन्थो मे इसे ठाकुर जी के खिरक का रखवारा कहा गया है। कोई इसे हनुमान का ग्वारिया भेष भी कहते हैं। समीप ही एक गुफा है और इस गुफा के सामने ही गोवर्धन के ऊपर श्री कृष्ण के मुकुट-चिह्न है।

पूँछरी पर ही वह कूप भी है जहाँ श्रीनाथ जी के अधिकारी और अष्टछाप के भक्त कवि कृष्ण दास जी गिर गये थे और उनकी इसी दुर्घटना से मृत्यु हो गयी थी।

श्याम ढाक

"शक्राय देव देवाय वृत्रघ्ने शर्मदायिने।
कजली वन सज्ञाय नमस्ते करिदायिने॥"[१] —लिंग पुराण

यहाँ से दो मील के करीव श्याम ढाक नामक वन है जहाँ 'श्याम तलाई' है। यहाँ गोपाल कृष्ण गाय चराने आते थे तव ग्वाल-मण्डल के वीच कदम्व के दोंनाओ मे दही भर कर छाक भोजन करते थे। इस वन मे अभी भी कदम्व वृक्षो मे स्वत वने हुए प्राकृतिक दोना उत्पन्न होते हैं। यहाँ सघन वन है जिसे कजली वन कहा गया है, कहा जाता है कि यह इन्द्र के प्रिय, ऐरावत हाथी का विचरण स्थल है।

---

१ हे वृत्र हन्ता देवाधिदेव इन्द्र स्वरूपी वरदाता कजली वन! आप हाथी देने वाले हो, अत आपको मेरा नमस्कार है।

लिंग पुराण के अनुसार यहाँ के सरोवर का नाम 'पुंडरीक सरोवर' है और यहाँ गज दान का विशेष महात्म्य है।

गोपाल पुर (जतीपुरा)

जतीपुरा का प्राचीन नाम गोपालपुर है। यह गोवर्धन पर्वत के दूसरी ओर के सामने बसा है। किसी समय यही गिरिराज पर्वत के शिखिर पर बडी धज से भगवान् श्री नाथ जी विराजते थे और यह स्थल पुष्टि सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र के रूप मे सर्वमान्य था। यही भक्ति-युग मे अष्टछाप के अष्ट महाकवि, श्री नाथ जी के मन्दिर मे बारी-बारी से अपनी सरस काव्य-सगीत लहरी से उन्हे विमोहित करते थे; जिनकी वाणी की मधुर झकार आज तक हिन्दी क्षेत्र मे गूँज रही है।

यद्यपि जतीपुरा का वह वैभव अब नही रहा फिर भी उसके अवशेष यहाँ अभी विद्यमान है। इस समय जतीपुरा पुष्टि मार्गीय वैष्णवो का एक कस्बा है। इसी गाँव मे श्री गिरिराज जी का मुखारविन्द माना जाता है।

जतीपुरा मे गिरिराज जी की 'शृगार-शिला', जिसे 'भोग-शिला' भी कहते है, का दर्शन है, जहाँ प्रतिदिन बहुत सा दूध भक्तो द्वारा चढाया जाता है। यही समय-समय पर वल्लभ-कुल के गोस्वामि वर्ग तथा उनके शिष्य-सेवको द्वारा अन्नकूट, कुन-वाडा, छप्पन-भोग आदि उत्सव भी किये जाते है जिनमे अनेक प्रकार के पकवान व्यजन श्री गिरिराज को भोग लगाये जाते हैं। यहाँ गिरिराज जी का सायकाल के समय अत्यन्त ही भव्य दर्शनीय शृगार किया जाता है जिसे अवलोकन कर चित्त ब्रज की शृगार-सज्जा कला पर मुग्ध हो जाता है। जतीपुरा मे गाँव के समीप ही 'हरजी कुण्ड' है जो हरजी, ग्वाल का बनाया हुआ है जो श्री नाथ जी का प्रसिद्ध भक्त था।

जतीपुरा मे डडौती शिला, मथुरेश जी का दर्शन (जो अभी-अभी कोटा से पुन यहाँ पधारे हैं), मदन मोहन जी, नन्द-यशोदा, दाऊ जी के दर्शन तथा श्री नाथ जी के मन्दिर मुख्य हैं। 'हौं तो मुगलानी, हिन्दुवानी ह्वै रहौंगी मैं,' की टेक लेने वाली कवयित्री ताज ने भी यही श्री नाथ जी के सान्निध्य मे अपना यह पचभौतिक शरीर त्याग कर उनकी नित्य-लीला मे स्थान प्राप्त किया था।

सुरभी कुण्ड—यहाँ से लौट कर आते वक्त गिरिराज पर्वत की तरहटी मे प्रसिद्ध 'सुरभी कुण्ड', 'सुरभी गौ का स्थान', 'ढूँका दाऊ जी', 'सुरभी गाय के खुर-चिह्न', 'ऐरावत हाथी के चरण-चिह्न' आदि स्थान दर्शनीय हैं। सुरभी कुण्ड पर ही अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि परमानन्द दास जी का निवास-स्थान था और यही उन्होने अपने अधिकाश साहित्य की रचना की जो परिमाण मे वहुत अधिक है। अत यह स्थान साहित्य-साधना का सिद्ध पीठ भी समझा जाना चाहिए।

ऐरावत कुण्ड—कुछ ही दूर पर राजकीय वन खण्ड को पार करने पर वृक्षो के वीच मे वहुत गहरा टूटा-फूटा ऐरावत कुण्ड है। यह स्थान वहुत ही भव्य है जो अपने इस खण्डहर रूप मे भी लुभावना है। यही वह स्थल है जहाँ ब्रज के प्रसिद्ध सगीतज्ञ और अष्टछाप के भक्त-कवि गोविन्द दास जी साहित्य और सगीत की अमृत

धारा प्रवाहित करते हुए निवास करते थे। इसीलिए इसे गोविन्द स्वामी की कदम्ब खण्डी कहा जाता है।

रुद्र कुण्ड—ऐरावत कुण्ड के वायुकोण मे यह कुण्ड है। यहाँ पर महादेव जी श्री कृष्ण के ध्यान मे मग्न हो गये थे। यहाँ 'बूढे बाबू' महादेव जी का मन्दिर है। श्री कृष्ण यहाँ गेंद-बच्ची खेला करते थे। यहाँ पर राधिका जी की बैठक और पूजनी-शिला हैं। यहाँ भगवान् के अन्तर्ध्यान होने पर ब्रजवासियो ने रुदन किया इस कारण इसको 'रुदन कुण्ड' भी कहते हैं। यहीं पर यादवेन्द्र दास का अपने हाथो द्वारा खोदा हुआ कुआँ है। अष्टछाप के कवि चतुर्भुजदास जी ने भी इसी कुण्ड के निकट एक प्राचीन इमली के वृक्ष के नीचे अपना शरीर त्यागा था, अत यह साहित्यकारो के लिए भी महत्वपूर्ण है।

ब्रह्म कुण्ड—कहा जाता है कि यहाँ पर ब्रह्माजी ने श्री कृष्ण की स्तुति की थी और श्री कृष्ण ने उन्हें क्षमा दान किया था। इसके पूर्व मे इन्द्र[1] तीर्थ, दक्षिण मे यम तीर्थ, पश्चिम मे वरुण तीर्थ और उत्तर मे कुवेर तीर्थ हैं।

विलक्षण वन (बिलछू वन)—यहाँ से थोड़ी दूर पर ही बिलछूवन है जहाँ 'बिलछू विहारी' के दर्शन तथा 'बिलछू कुण्ड' है। कहा जाता है कि यहाँ राधा जी के पग के बिछुआ जल मे खो गये तब श्याम सुन्दर ने उन्हें निकाल कर पहिनाया था। बिलछू वन को प्राचीन ग्रन्थो मे 'विलक्षण वन' कहा गया है। यह अष्ट-छाप के कवि कृष्णदास जी का स्थल है।

जान-अजान—जतीपुरा के पास ही गिरिराज जी की तरहटी मे ही जान-अजान नाम के दो प्राचीन वृक्ष हैं। कहते है ये दोनों श्री राधिका जी की प्रिय सहचरी सखी हैं जो वृक्ष रूप से इस स्थल पर निवास करती हैं। यहाँ श्री राधिका जी कृष्ण जी को पहिचान कर भी अनजान बन गई और तब कृष्ण जी के अन्तर्ध्यान हो जाने पर सखियो से पश्चात्ताप करने लगी—

"सखी री हौं जान अजान भई।
सन्मुख प्रगट भये मनमोहन मो मति मोहि लई॥
देखत हू जु भई अनदेखनी बैरिन है रसना जु गई।
का विध मिलै प्रान प्यारौ वह कर कछु जुगत नई॥"

राधा जी की आतुरता देख दोनो सखी श्याम सुन्दर को बुला लाई सो दशा देख माधव बोले—"हे सखियौ, तुम्हारे देखते हमारौ रहस्य मिलन न होइगौ"। यह सुन प्रभु की इच्छा जान वे दोनो वही जड वृक्ष रूप हो गई। वार्ता ग्रन्थो के अनुसार यह स्थल श्री नाथ जी को बहुत प्रिय है और वे यहाँ एकत्रित होने वाली ग्वालो की मण्डली को जतीपुरा के पर्वत-शिखर के मन्दिर मे से खिडकी मे से देखते रहते हैं। ऐसा उल्लेख है कि एक समय ग्रीष्म ऋतु मे उस खिड़की मे से तेज धूप मन्दिर मे आने लगी तब गोस्वामी गोकुल नाथ जी ने उस खिडकी के अगाड़ी एक अटारी बनवा

१. "ब्रह्मादिनिर्मितस्तीर्थं शुद्ध कृष्णाभिषेचन।
नम कैवल्यनाथाय देवाना मुक्तिकारक॥"

दी। उस अटारी के बनने से श्री नाथ जी को बिलछू तथा जान-अजान का स्थल दीखना बन्द हो गया—इससे असन्तुष्ट हो श्री नाथ जी ने गोकुल नाथ जी को मोहना भगी द्वारा अटारी तुडवा डालने की आज्ञा की और वह तुडवा दी गई।

गुलाल कुण्ड—जतीपुरा के समीप ही 'गुलाल कुण्ड' नामक स्थल है जो कृष्ण जी के होरी खेलने का स्थान है। यहाँ गुलाल से जमीन लाल हो गई थी इसी से इसका नाम गुलाल कुण्ड प्रसिद्ध हुआ। इस स्थान के आस-पास ही श्री नाथ जी की गायो के खिरक थे, जिनमे श्री नाथ जी की सहस्रो गायें रहती थी। इन गायो की देख-भाल कुभन दास जी का बेटा कृष्ण दास, गोपीनाथ ग्वाल, गोपाल ग्वाल और गगा ग्वाल नाम के चार प्रमुख ग्वारिया करते थे। यहाँ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक भी है।

गाँठोली

गाँठोली सडक किनारे गाँव है। ऐसा उल्लेख है कि यहाँ श्री राधा जी का कृष्ण जी के साथ गाँठ बाँध कर विवाह का उपक्रम सखियो ने किया है। गाँठोली की एक पाथो गूजरी प्रसिद्ध है, जिसकी रोटी श्री नाथ जी लूट कर खा गये थे। यही एक पखावजी 'श्याम पखावजी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है जो पखावज बजाने मे बहुत कुशल था तथा उसकी पुत्री ललिता बीन बहुत अच्छी बजाती थी जिसे सुनने को श्री नाथ जी भी उत्सुक रहते थे। वार्ता मे वर्णन है कि—"जहाँ अष्टछाप गावें, तहाँ ललिता बीन तथा श्याम मृदग बजावें। एक बार श्री नाथ जी इनके घर भी यन्त्र-वादन सुनने पधारे थे।"

टौड को घनो

यहाँ से आगे 'टौड का घना' नामक वन है। यहाँ की प्राकृतिक शोभा दर्शनीय है। यहाँ श्री नाथ जी को भी औरगजेब के शासन-काल मे कुछ दिनों के लिए पधरा दिया गया था। कहा जाता है उसी अवसर पर भक्त कुभन दास जी ने भगवान् श्रीनाथ जी से परिहास करते हुए यह पद गाया था—

"भावति तोहि टौड को घनो।
काँटा लगे गोखरू टूटे, फाट्यौ है सब तन्यो॥
सिहहि कहा लोमडी को डर, यह कहा बानिक बन्यौ।
'कुभनदास' तुम गोवर्धनधर, वह तौ नींच ढेडनी जन्यौ॥"

नीम गाँव

"गोपिका रमणोल्लास सौरम्य सुख दायिने।
कृष्ण कैवल्य सज्ञाय निम्वनाम्ने नमोस्तुते॥" —पद्मपुराण

नीम गाँव श्री निम्बार्काचार्य का साधना-स्थल है। ब्रज मे यह स्थल निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ-स्थल है। नीम गाँव का प्राचीन नाम 'निम्व वन' है।

यहाँ 'गोपी कूप' तथा 'धेनु कुण्ड', 'कुवेर कुण्ड' का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो मे पाया जाता है।

पाडर गाँव

इसे पाढर वन भी कहते हैं। इसे पुण्डरीक वन की सीमा का गाँव कहा जाता है। यहाँ 'गोपिका कुण्ड' प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यहाँ किसी समय सुवर्ण कमलो का वन था।

डीग नगर

डीग का प्राचीन नाम 'दीर्घ नगर' है जो भरतपुर के वीर जाट नरेशों के दुलार से सजाया-सँवारा गया एक नगर है। इस नगर की भूमि पर लडाइयाँ लडी जाती रही हैं।[१] यहाँ महाराज जवाहर सिंह जी के वनवाए हुए भवन दर्शनीय हैं जो 'डीग के भवन' कहे जाते है। यह भवन राजा जवाहर सिंह ने दिल्ली की लूट की स्मृति मे निर्मित कराये थे। दिल्ली की लूट से वनाये इन भवनो मे 'नन्द भवन' और 'गोपाल भवन' दो भवन प्रमुख हैं। यहाँ दिल्ली के मुगल वादशाह के स्नान का वहुत वड़ा तख्त जो एक ही काले कसौटी के पत्थर का वना हुआ है, रखा हुआ है। मुगल शाहशाह की वेगम का भूला भी उल्लेखनीय है।

डीग मे दो विशाल सुन्दर सरोवर भी है जिनके नाम 'रूप सागर' और 'गोपाल सागर' है। वास्तव मे डीग भरतपुर नरेशो की कला-प्रियता और शूरता का स्मारक है।

यहाँ का फव्वारो का हौज तथा फव्वारो की निर्माण-शैली भी अद्भुत है। दीग मे यात्रा आने पर यहाँ फव्वारो का मेला दर्शनीय होता है। यहाँ का वाग तो व्रज मे अपनी जोड़ ही नही रखता।

परमदरा

परमदरा का प्राचीन नाम 'परम भद्र' है। कहा जाता है कि यह सुदामा जी का गाँव है जो भगवान् कृष्ण के सहपाठी व परम स्नेही सखा थे। यहाँ 'साक्षी गोपाल' जी के दर्शन, सुदामा जी की बैठक, तथा 'कृष्ण कुण्ड', श्री दामा जी का मन्दिर और ग्राम के पूर्व मे 'चरण कुण्ड' है।

सेतुकन्दरा (आदि वद्री)

"नारायण सुखावास परमात्म स्वरूपिणे।
नमो नारायणाख्याय वनाय सुख दायिने॥" —आदि पुराण

कहा जाता है आदि वद्री वद्री नारायण भगवान् का आदि स्थान है। यहीं से भगवान् नर नारायण ऋषि को दर्शन देने उत्तरा खण्ड पधारे थे। यहाँ के समीप का वन 'वद्री खण्डवन' है जहाँ आज भी वेर के फल आकार मे वहुत ही वडे और मधुर स्वाद वाले होते है। दीग के वेर के नाम से यह प्रसिद्ध फल यहाँ की प्रसिद्ध मेवा है।

गम्या प्रास (सेऊ गाँव)

सेतु कन्दरा के निकट पश्चिम में आधा मील की दूरी पर 'सुशोभनु' तथा

१. विशेष विवरण के लिए देखिए 'व्रज का इतिहास', प्रकाशक व्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।

'गन्ध शिला' है। अब इस ग्राम का नाम 'सेऊ' है। यहाँ पर 'नयन सरोवर', 'तप्त कुण्ड' भी है। इसका प्राचीन नाम शम्याप्रास है। कहा जाता है कि यही व्यास मुनि ने भागवत् शास्त्र की रचना की थी।

यहाँ 'अलखनन्दा' नाम का कच्चा सरोवर है इसे 'अलख गगा' भी कहा जाता है। यह व्रज की ४ गगाओ मे से एक है। श्री वल्लभाचार्य जी इसका महात्म्य इस प्रकार लिखते है—

"अत्र स्नानादिकं विधाय, बद्रीनाथ दर्शनं।
सुवर्णमय मन्दिर विष्णु प्रतिमा सहित दानं दद्यात्, गांच दद्यात् ॥"
—व्रज मथुरा तीर्थ प्रकाश (वल्लभाचार्य)

बूढे बद्री

जहाँ आदि बद्री भगवान् का प्राचीन मन्दिर है वहाँ से आगे सघन वन तथा पहाड़ो मे बूढे बद्री नारायण है। इस पर्वत माला को 'गन्धमादन पर्वत खण्ड' प्राचीन ग्रन्थो मे कहा गया है। यहाँ हरिद्वार, कनखल क्षेत्र, लछमन झूला, ऋषिकेश आदि तीर्थ हैं जिनका मार्ग कठिन और दुर्गम है। यहाँ अनेक प्राचीन दर्शनीय स्थल हैं।

साड राशिखर

यह पर्वत धवल वर्ण का है। कहा जाता है कि राधा-कृष्ण ने यहाँ अनेक लीलायें की थी और श्रावण मे यहाँ १३ दिन हिंडोला भी झूले थे। पास ही मे नील पर्वत और आनन्दाद्रि (घाटी) है। यहाँ पर पहाड़ मे गौडीय गोस्वामियो ने अथक परिश्रम करके जगह-जगह पर शिलाओ पर व्रज-मण्डल के स्थानो की एक दूसरे से दूरी अंकित करदी है।

इन्द्रौली (घाटा)

"श्रेष्ठ इन्द्रवनं धीमन् परमानदक यथा।" —शक्तयामल (तंत्र)

परमदरा से कामवन के मार्ग मे 'आनन्दाद्रि' जिसे घाटा भी कहते हैं परम रमणीक स्थान है। यहाँ पहाडो के बीच मे कामवन के गोस्वामी श्री देवकी-नन्दन जी महाराज का बगीचा है। यहाँ से चलकर इन्द्रवन 'इन्द्रौली' गाँव आता है। यहाँ 'इन्द्र कूप' नामक कुआ है। कहा जाता है यही से इन्द्र ने व्रज पर आक्रमण करने के लिए मोर्चेबन्दी की थी।

गोदृष्टि वन (गुहाना)

यह परमदरा से एक मील है। आजकल इसे गुहाना कहते हैं। इस स्थल को गोपाल कृष्ण का चरागाह माना जाता है। इसके आस-पास ऊँचे-ऊँचे टीले है जिन पर से गायें आसानी से दिखाई दे सकती है। यहाँ पर 'श्याम कुण्ड' और 'गोपाल कुण्ड' नामक दो कुण्ड है।

कामवन

"यतो कामवनं नाम विख्यातं पृथिवी तले।
मोहिता देवता सर्वा कामसन्तप्त मानस ॥" —व्रज-भक्ति विलास

यह डीग से सात कोस की दूरी पर पश्चिम दिशा मे है। राजस्थान की सीमा मे भरतपुर राज्यान्तर्गत कामवन ब्रज के महत्त्वपूर्ण स्थलो मे से एक है।

कामवन प्राचीन महाभारतकालीन 'काम्यक वन' ही है, जहाँ पाण्डवो ने जुआ मे पराजित होकर अज्ञात वास किया था। कामवन तन्त्र विद्या के पारगत सिद्धजनो के साधना-सरक्षक कामसेन राजा का सिद्धिस्थल रहा है। यहाँ कामसेन राजा के प्राचीन किले का अवशेष मौजूद है। एक पौराणिक मत के अनुसार कामवन ही कृष्णकालीन वृन्दावन है, जहाँ वृन्दा देवी विराजती हैं। आजकल कामवन पुष्टि-सम्प्रदाय का व्रज मे एक प्रमुख केन्द्र है।

कामवन मे अनेक तीर्थ है। कहा जाता है कि यहाँ पर देवता, ऋषि मुनि, तपस्वी सब की मन कामना सिद्ध होती है, अत' इस स्थान का नाम कामवन है। इसकी सात कोस की परिक्रमा है। कामवन के अधीश्वर श्री गोपीनाथ जी है। विष्णु पुराण के अनुसार कामवन मे ८४ तीर्थ, ८४ मन्दिर और ८४ खम्भ हैं, जो कि राजा कामसेन द्वारा बनवाये गये है। यहाँ धर्मराज के सिंहासन के दर्शन हैं। यहाँ कुण्डों की सख्या बहुत अधिक है।

कामवन मे सात दरवाजे है जिनसे होकर जगह-जगह को मार्ग गये हैं। (१) दीग दरवाजा—भरतपुर जाने का रास्ता, (२) लका दरवाजा—यह 'सेतुबन्धु कुण्ड' की ओर का रास्ता है, (३) आमेर दरवाजा—'चरण पहाड़ी' का रास्ता; (४) देवी दरवाजा—पजाब जाने का रास्ता, (५) दिल्ली दरवाजा—दिल्ली जाने का रास्ता, (६) राम जी दरवाजा—नन्दग्राम जाने का रास्ता, और (७) मथुरा दरवाजा—यह बरसाना होकर मथुरा जाने का रास्ता है।

कामवन के मुख्य दर्शनीय स्थल निम्न है—

धर्म कुण्ड—यह कुण्ड पूर्व दिशा मे है, यहाँ पर श्री नारायण धर्मरूप में विराजमान है। निकट ही विशाखा नामक देवी है। कहा जाता है वनवास काल में महाराज युधिष्ठिर यहीं रहते थे।

विमल कुण्ड—यह कुण्ड कामवन का परम प्रसिद्ध कुण्ड है। यह कामवन के दक्षिण-पश्चिम कोण में लगभग दो फर्लांग की दूरी पर है। इसके चारो ओर दाऊजी, सूर्यदेव, नीलकठेश्वर महादेव, गोवर्धन नाथ, मदन गोपाल तथा काम्यवन-विहारी, विमल-विहारी, विमला देवी, मुरली मनोहर, गंगा जी, गोपाल जी क्रमश विराजमान हैं। इस कुण्ड मे स्नान करके चतुर्भुज भगवान् के दर्शन करने का विशेष महात्म्य है।[1]

व्योमासुर गुफा—(चौर्य्य-क्रीड़ा स्थल) कहा जाता है यहाँ पर श्री कृष्ण ने व्योमासुर को मार कर पर्वत की गुफा से व्योमासुर द्वारा रुद्ध मेष रूपी सखाओ (बालको) का उद्धार किया।

भोजन थाली—व्योमासुर गुफा के निकट ही 'भोजन थाली' नामक वह स्थान है जहाँ पर श्री कृष्ण ने गौ-चारण के समय अपने सखाओ सहित शिलाखण्डो के

१. "कैवल्यरूपणे तुभ्य नमस्ते जलशायिने।
केशवाय नमस्तुभ्य तीर्थराज नमोऽस्तुते॥" —व्रज-भक्ति विलास

ऊपर भोजन किया था। इन शिलाओं के ऊपर थाल-कटोराओं के आकार के चिह्न पाये जाते हैं। यहीं पर एक 'बजनी शिला' भी है जिसको बजाने से नाना प्रकार के वाद्य-स्वर निकलते हैं।

कामेश्वर महादेव—इनका मन्दिर कामवन के उत्तर-पूर्व कोण में ग्राम के बाहर है। यह कामवन के क्षेत्रपाल कहलाते हैं।[1]

मोहिनी कुण्ड—कहा जाता है यहाँ भगवान् ने मोहिनी रूप धारण करके देवताओं को सुधा बाँटी थी। यहीं पर गो-दोहन लीला का भी स्थान है। यहाँ 'मोहिनी कुण्ड' से लगा हुआ ही 'दोहनी कुण्ड' भी है। ये दोनों कुण्ड अँगरावली ग्राम के दूसरी ओर हैं।

सेतुबन्धु सरोवर (लंका कुण्ड)—कहा जाता है यहाँ पर श्री कृष्ण ने गोपियों के सामने राम-वेष में बन्दरों की सहायता द्वारा सेतु बाँध कर बतलाया था। अभी भी सरोवर के बीच में यह सेतु बँधा है। सेतु के उत्तर में 'रामेश्वर महादेव' जी हैं जिनकी स्थापना रामवेषी श्री कृष्ण ने की थी। दक्षिण में एक बड़ा टीला है जिसे लंकापुरी कहा जाता है।

यशोदा कुण्ड—यहाँ यशोदा जी के दही बिलोने के समय कृष्ण माखन चुरा कर खा जाते थे।

लुक-लुक कुण्ड, लुकन-कंदरा—यह गोपाल कृष्ण के आँख-मिचौनी खेलने का स्थान है। खेल में यहाँ कंदरा में छिप कर चरण पहाड़ी पर भगवान् कृष्ण खेल में ही प्रगट हुए थे।

चरण पहाडी—यह काफी ऊँची पहाडी टेकरी है, यहाँ एक चरण से खडे होकर कृष्ण जी ने वेणुनाद किया था।

रत्नाकर महोदधि कुण्ड—यहाँ 'रत्नाकर' समुद्र ने आकर कृष्ण जी के चरण धोये हैं।

नन्द बैठक—यहाँ नन्द जी वन में आकर बैठते थे और सब ग्वारिया वन में गायों को चराते फिरते थे।

गरुड कुण्ड—यहाँ गरुड़ जी ने तप कर सेवक पद पाया है।

देवी कुण्ड—यशोदा ने यहाँ दुर्गा जी का पूजन किया है।

गया कुण्ड—यहाँ पिंड श्राद्ध करने से गया श्राद्ध का फल प्राप्त होता है।

यहाँ निम्न स्थान भी बडे ही रमणीक एवं दर्शनीय हैं—गदाधर भगवान् का दर्शन गोपीनाथ जी का दर्शन। वाराह भगवान् का दर्शन। चौरासी खम्भा एक प्राचीन इमारत है। मदन मोहन जी का मन्दिर। गोकुल चन्द्रमा जी का मन्दिर। गोविन्द जी का मन्दिर। चित्रगुप्त धर्मराज। श्वेत वाराह। सूर्य कुण्ड। गोपाल कुण्ड। शीतला कुण्ड, शीतला देवी। श्री कुण्ड। श्री वल्लभाचार्य की बैठक। कृष्ण-बलराम खिसलनी शिला। भोजन थाली। दही कटोरा। गरुड़ कुण्ड। राम कुण्ड।

---

१ "कामेश्वराय देवाय कामनार्थ प्रदायिने।
महादेवाय ते तुभ्य नमस्ते मुक्तिदो भव॥"

चन्द्रभागा सरोवर। चन्द्रेश्वर महादेव। पाँचो पाण्डवो के दर्शन। वाराह अवतार दर्शन। चारो युग के महादेव। पचतीर्थ कुण्ड। दशावतार तीर्थ। यज्ञ कुण्ड। मनोकामना कुण्ड। मणिकर्णिका कुण्ड। काशी विश्वेश्वर शिव।

कनवारौ

यह गाँव 'कण्व मुनि' का तपस्या-स्थान है। यहाँ पर 'काशी कुण्ड', 'सुनहरा की कदम खण्डी', 'पनहारी कुण्ड', 'कृष्ण कुण्ड', ठाकुर जी की वैठक और काका वल्लभ जी की वैठक है।

कनवारौ गाँव श्री वलराम जी और कृष्ण जी के कर्ण-छेदन का स्थल है ऐसा प्राचीन ग्रन्थो मे उल्लेख है। इसका प्राचीन नाम 'कर्ण प्रतिवन' है, अत इसकी गणना प्रतिवनो मे आती है। इसके अधिपति देवता कमलाकर भगवान् है। यहाँ 'कर्ण कुण्ड' नामक कच्चा तालाव है जहाँ सुवर्ण दान एव कर्ण-भूषणो का दान किया जाता है। यहाँ काका वल्लभ जी की वैठक भी है।

सुनेहरा की कदम्ब खण्डी

"ध्यायेत् स्वर्णवनाधीश राधा कृष्ण विहारिणम्।"—कौण्डिन्य सहिता

कनवारे से आगे चलकर व्रज की सुन्दर सुहावनी कदम्ब खण्डी 'सुनेहरा की कदम खण्डी' आती है। इस कदम खण्डी मे जाने के लिए पहिले दो पहाडो के वीच मे से 'सुनेहरा की घाटी' पार करनी पड़ती है। सुनेहरा उपवनो मे से है और इसका नाम स्वर्णोपवन है। इसके विहारी जी देवता हैं। यहाँ की रमणीयता नयनाभिराम है।

यहाँ के प्रसिद्ध कुण्ड 'कृष्ण कुण्ड' और 'पनिहारी कुण्ड' है। पक्का वना हुआ हिंडोला का स्थल भी है। कदम खण्डी से थोड़ी दूर चल कर 'हरसुख का नगला' और फिर सुनेहरा गाँव है।

स्वर्णहार (सुनेहरा ग्राम)

"स्वर्णपुरे समाख्याते पश्चिमस्यां विशस्यिते।
गोरभानुर्सहागोपस्तस्य भार्य्या कलावती॥" —व्रज चन्द्रिका

यह ग्राम कामवन से चार मील और वजेरा से दो मील पूर्व मे सुवर्णाचल पर्वत के ऊपर वसा हुआ है। यहाँ पर कदम खण्डी, रत्न कुण्ड और रास-मण्डल हैं। कहा जाता है यहाँ श्री राधिका जी ने महादेव जी को सोने का हार पहनाया था।

सखीगिरि पर्वत

श्री कृष्ण के गुणो पर मुग्ध होकर ललिता आदि सव सखियो ने इस पर्वत पर क्रीड़ा की थी, अत इसका नाम सखीगिरि पर्वत कहलाता है।[1]

---

१. "यत्र गोपसुता सर्वा ललितादिप्रभृतय।
क्रीडां चक्र. समासेन श्री कृष्णसहमोदिता।
यस्मात्सखीगिरिर्नाम वभूव व्रजमण्डले।" —'व्रज-भक्ति विलास'

चित्रविचित्र शिला—आगे पहाड के किनारे एक पक्की छतरी मे चित्र-विचित्र शिला है। यह शिला कई रगो के चित्राकन से युक्त है जिसे जल से भीगा कपडा फिराने से भली प्रकार स्पष्ट चिह्नो मे देखा जा सकता है। कहा जाता है कि यहाँ राधा जी ने अपने हाथो मे मेहदी की चित्रकारी बनवाने को उसका नमूना सखियो को शिला पर अकित करके बतलाया था।

ललिता विवाह-स्थल—यहाँ श्री कृष्ण ने सात वर्ष की उम्र मे ललिता जी से विवाह किया बतलाते है। यहाँ पर एक छत्री व चबूतरा बना है।

त्रिवेणी कूप—यह कूप नारायण भट्ट जी द्वारा स्थापित है। कहा जाता है इस कूप मे बलदेव जी और ललिता जी नित्य स्नान किया करते थे।[1]

देह कुण्ड

इस कुण्ड मे स्नान करके सोना दान करने का महात्म्य है। कहते है ऐसा करने से कोढी भी रोग से मुक्ति पाता है। यहाँ पर 'वेणीशकर महादेव' जी का मन्दिर है जिसकी स्थापना गोपियो ने की है। कहते हैं एक बार यहाँ पर राधा-कृष्ण दोनो स्नान कर रहे थे उसी समय वहाँ पर एक दीन ब्राह्मण के आकर याचना करने पर श्री कृष्ण ने राधा जी को ही दान मे देने को कहा किन्तु बाद मे राधा जी के बराबर सुवर्ण दान किया, अत इसका नाम 'देह कुण्ड' पडा।

उच्च ग्राम (ऊँचा गाँव)

यह ग्राम स्वर्णहार से तीन मील पूर्व अथवा बरसाने से एक मील पश्चिम मे है। यह ललिता जी का गाँव माना जाता है। इसको बल्देव स्थल भी कहते है। यहाँ पर पूर्व मे बल्देव मन्दिर, नैऋतकोण मे श्री नारायण भट्ट जी की समाधि, उत्तर मे त्रिवेणी कूप, आयता पहाड़ी अथवा चित्रशिला आदि हैं।

धूलेडा ग्राम

यहाँ पर गौ-चारण के समय गौ-चरणो की रज से सारा आकाश-मण्डल भर उठा था। अत इस ग्राम का नाम धूलेड़ा ग्राम पड़ा। इसी के निकट ऊँचा ग्राम है।

आहोर

कहा जाता है यहाँ श्री कृष्ण ने आठ पहर क्रीडा की थी। अत इस-का नाम 'आठ पहर' से आहोर पड गया।

बजेरा

यह ग्राम कामवन से दो मील पूर्व में बसा हुआ है। यहाँ पर 'रगदेवी' और सुदेवी यमजभगिनि का जन्म हुआ था।

---

१ "कृष्णाश्वासप्रवर्त्तिन्यै त्रिवेण्यै सतत नम ।
परम मोक्ष पद देहि धनधान्य प्रवर्द्धिनि ॥"

डभारौ गाँव

यहाँ से समीप ही डभारौ गाँव है जहाँ की भूमि डाभ (कुश स्थली) होने के कारण अत्यन्त पवित्र मानी जाती थी। डाभ या दर्वी देव और पितृ कार्यों में परम पवित्र होने के कारण तपस्वियो को बहुत मान्य है अत यह दर्वीवन ही कालान्तर मे डभारौ नाम से प्रसिद्ध हो गया।

यह ग्राम बरसाने से दो मील दक्षिण मे है। कुछ का यह भी कथन है कि यह तुंगविद्या सखी का जन्म-स्थल है। कहते हैं यहाँ पर प्रेमातिरेक मे राधा-कृष्ण दोनो के नेत्र आँसुओ से भर आये थे अत इसका नाम डभराऐ (अश्रुयुक्त नेत्र) पड़ा।

वृषभानुपुर (बरसाना)

"जिय अरसानौ जिन रहे, तरसानों पिय नाँउ।
सब ते सरसानौ यहैं, श्री बरसानौ गाँउ॥" —जगनन्द

यह गोवर्धन से पश्चिम मे सात कोस और कामवन से पूर्व मे तीन कोस पर बसा हुआ है। बरसाना श्री राधा जी के पिता वृषभान जी तथा माता कीर्तिदेवी का निवास स्थान है। यहाँ पहाड़ के ऊपर श्री लाडिली जी का मन्दिर तथा जयपुर-नरेश का बनाया राधा-गोपाल का मन्दिर अति सुन्दर तथा दर्शनीय हैं। नीचे पहाड़ की तलहटी मे बरसाना गाँव बसा हुआ है। मन्दिर के ऊपर से देखने मे ग्राम का दृश्य बडा ही नयनाभिराम है। यहाँ पर्वत के ऊपर से व्रज की भूमि का दृश्य दूर-दूर मीलो तक बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता है। इस पर्वत से कामवन की पहाड़ी नन्दगाँव आदि बडे ही सुन्दर दिखलाई देते हैं। बरसाने का शास्त्रीय नाम 'वृषभानुपुर' है। यहाँ दो पर्वतो की घाटी मे उतरने पर नीचे अति रमणीक 'गहवर वन' जो 'गह्वरवन' का अपभ्रंश है मिलता है। यह स्थान अत्यन्त सघन वृक्षावली से युक्त तथा शान्त साधनानुकूल तप-स्थल सा प्रतीत होता है। ऊपर पर्वत के शिखरो पर दानगढ, मानगढ, मोरकुटी, विलासगढ नामक चार गिरि शृंग हैं जहाँ तद्विषयक देव दर्शन हैं।[1] यहीं गौर श्याम दो पर्वतो के बीच साहित्य-प्रसिद्ध 'साँकरी खोर' है। जब राधिका जी अपनी सखियो के साथ दही की मटकी लेकर इधर से निकलती थी तो श्री कृष्ण जी इस सकड़ी गली मे उनकी राह रोक उनका गोरस लूट खाते थे। साँकरी खोर के विषय मे अनेक सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, यथा—

घेर लई आये नन्दराय के कुमर कान्ह, मारत मधुर मुसकाई नेह काँकरी।
मुरि मुख आँचर दै रसिक रसीली राधे, ठाढ़ी छविधाम हेरै चितवन बाँकुरी॥
रोकं राह ठाढ़ो मन मोहन मुकुन्द प्यारो, झमिक झरोकन ते देखै सखी झाँकरी।
नैनन की कोर चितचोर बरजत जात, साँकरी गली मे प्यारी हाँ करी न नाँ करी॥

यहाँ इस लीला का रसास्वादन करने को भक्तजन 'बूढी लीला' के नाम से जिस कृष्ण-चरित्र का आयोजन करते हैं उसके अन्तिम उपसंहार रूप यह दधि-

---

१ बरसाने का पर्वत ब्रह्मा का स्वरूप माना जाता है। ब्रह्मा के चार मुखों के प्रतिरूप ही इस पर्वत की ४ चोटी हैं, जिन पर उक्त स्थल बने हुए हैं। —सम्पादक

लूटनी लीला वास्तव मे ही ब्रज की एक रसमयी सास्कृतिक अभिव्यजना का रूप होती है। यह लीला कई लीलाओ की शृखला रूप भाद्रपद मास मे बरसाने के निकटवर्ती स्थलो पर की जाती हैं। यह ब्रज की कई शताब्दि प्राचीन परिपाटी है।

आधुनिक बरसाना, तीन-चार छोटे-छोटे ग्रामो से बना एक बड़ा ग्राम है जिसकी जनसख्या सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार ३,७९१ थी। अब इससे अधिक ही है। बरसाने के भवनो, बागो और सरोवरो के निर्माण मे श्री रूपराम कटारा ने बहुत धन व्यय किया और यहाँ के सौन्दर्य मे चार चाँद लगाये।

बरसाने की होली भी बहुत प्रसिद्ध है जो फागुन मास मे आयोजित की जाती है और जिसमे ब्रज की नारियाँ लाठी के पैतरो से नन्दगाँव के ग्वारियाओ का फाग-समान करती हैं। बरसाने मे 'वृषभान सरोवर' और 'पीरी पोखर' नाम के दो पक्के सरोवर हैं। 'गेंदोखरि' नाम का एक कच्चा तालाब भी है जो श्री राधा जी के गेंद खेलने का स्थल कहा जाता है। यहाँ के अन्य दर्शनीय स्थल है—(१) रावड़ी कुण्ड, (२) पावडी कुण्ड, (३) मोर कुण्ड, (४) तिलक कुण्ड, (५) जल-विहार कुण्ड, (६) दोहिनी कुण्ड, (७) गह्वरवन, कृष्ण कुण्ड, (८) जयपुर नरेश का मन्दिर (९) लाड़ली जी का मन्दिर, (१०) महीभान जी के दर्शन, (११) दाऊ जी के दर्शन, (१२) अष्ट सखी मन्दिर (१३) वृषभान कीर्ति मन्दिर आदि।

चिक्सौली

यह ग्राम ब्रह्माचल पर्वत के नीचे बसा हुआ है जो चित्रा सखी का गाँव माना जाता है। यहाँ पर सखियो ने राधिका जी का शृगार किया था।

दोहनी कुण्ड—चिक्सौली के दक्षिण मे यह कुण्ड है। यहाँ गो-दोहन होता था। इस स्थान पर कदम के वृक्षो पर दौनेदार पत्ते होते हैं।

मुक्ता कुण्ड—इस स्थान पर राधिका जी ने कृष्ण जी से विवाद हो जाने के उपरान्त मोतियो की खेती की थी, ऐसा कहा जाता है।

प्रेम सरोवर

बरसाना से सकेत के पक्के मार्ग पर ही प्रेम सरोवर है जो अत्यन्त सुन्दर व पक्का बना हुआ है। प्रेम सरोवर पर चूरू वालो का बगीचा तथा राधा गोविन्द जी का मन्दिर है। समीप ही सडक के किनारे गाजीपुर नामक गाँव बसा हुआ है। प्रेम सरोवर पर 'प्रेम विहारी' भगवान् के दर्शन है—यहाँ श्री किशोरी जी और श्री श्याम सुन्दर का प्रथम प्रेम परिचय हुआ था। अत यह स्थल भक्ति-साहित्य मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सकेत

यह स्थान नन्दगाँव और बरसाने के बीच मे है। यहाँ से आगे पक्की सड़क के किनारे ही 'सकेतवन' है। प्राचीन समय मे यहाँ एक अति विशाल दीर्घाकार वट

वृक्ष था जो सकेत वट कहा जाता था[1] इसी वट वृक्ष की सघन शीतल छाया मे प्रिया-प्रियतम का स्नेह मिलन हुआ करता था , अत ये युगल मिलाप का रहस्यमय स्थल 'सकेत-स्थल' के नाम से प्राचीन ग्रन्थो मे वर्णित है । सकेत गाँव मे 'सकेत विहारी' भगवान् के दर्शन, 'सकेती देवी', 'राधा रमण' भगवान् के दर्शन, चैतन्य महाप्रभु की वैठक, 'विवाह चबूतरा', हिडोरा-स्थल, श्री वल्लभाचार्य जी की वैठक, 'कृष्ण कुण्ड' आदि दर्शनीय है ।

सकेत के समीप ही सडक के थोडी दूर पर 'विह्वल कुण्ड' और 'विह्वला देवी' का स्थान है तथा एक शिला मे 'कल्प-वृक्ष' के दर्शन हैं । सकेत बहुत प्राचीन किन्तु छोटा सा गाँव है जिसकी जन-सख्या अन्तिम जनगणनानुसार ५९६ मात्र थी ।

रीठौरा

रीठौरा श्री राधा महारानी की प्रिय सहचरी चन्द्रावली जी का गाँव है। यहाँ 'चन्द्रावलि कुण्ड', श्री ठाकुर जी की वैठक और गुसाई विट्ठल नाथ जी की वैठक दर्शनीय हैं ।

महरानो

यहाँ से आगे 'भाडोखर' नामक गाँव और 'भाडोखर कुण्ड' पर होकर महराने को जाते है । महराना अभिनन्दन गोप—श्री कृष्ण के नाना का गाँव है जहाँ श्री यशोदा माता का पितृ-गृह था । यहाँ यशोदा जी के दर्शन, यशोदा कुण्ड और रामचन्द्र जी के दर्शन है । ऐसा कहा जाता है कि यहीं श्री माता यशोदा ने पुत्र को राम-कथा कहानी के रूप मे सुनाई थी । उसी की स्मृति रूप यह राम मन्दिर यहाँ है । आगे मार्ग मे 'चन्द्र कुण्ड' है जहाँ किवदती के अनुसार श्री कृष्ण 'चन्द्र-खिलौना' लेने को मचले थे । 'श्याम कुण्ड', 'भ्रमर कुण्ड', साँचौली देवी आदि स्थान यहाँ से समीप ही हैं ।

गिडोयो गाँव

गिड़ोयो गाँव कृष्ण जी की 'गारुड़ी लीला' का प्रतीक माना जाता है । यहाँ श्याम सुन्दर प्रभु गारुड़ी वन कर सर्प-विष उपचार करने को आये थे ऐसा कहा जाता है । यहाँ गोपी कुण्ड, रोहनी कुण्ड, विहार कुण्ड, पनिहारी कुण्ड, गेंदोखर कुण्ड, जुगल किशोर दर्शन, गारुड़ी कुण्ड, विहारी जी के दर्शन आदि हैं ।

नन्दगाँव

"यत्र नन्दोपनन्दास्ते प्रतिनन्दाधिनन्दना ।
चक्रुर्वासं सुखस्थान मतो नन्दाभिधानकम् ॥" —आदि पुराण

यह वरसाना-कोसी मार्ग पर स्थित कृष्ण जी के पिता व्रजेश नन्द जी का निवास-स्थान है । नन्द जी का पहला स्थान महावन गोकुल था वहाँ कस के असुरो

---

१ "श्री हरि जब ककर लियौ, श्री प्यारी पग देत ।
तब ते देख्यौ जाइ वट पिय प्यारी सकेत ॥" —जगन नन्द

का उत्पात देख गोपो के डेरे बृन्दावन मे डाले गये, वहाँ से गिरिराज तलहटी मे और वहाँ इन्द्र का उत्पात होने से श्री वृषभान राय जी के परामर्श से नन्द जी ने इस पर्वत के ऊपर नन्द ग्राम नाम से अपना स्थान बसाया। नन्द ग्राम पर्वत के ऊपर बसा हुआ गाँव है। यह पर्वत शिव स्वरूप है। ऐसी मान्यता है कि ब्रज के चार पर्वत चार देवो के स्वरूप है इनमे नन्दग्राम पर्वत शिव स्वरूप, बरसाना पर्वत ब्रह्मा-स्वरूप, श्री गिरिराज पर्वत विष्णु-स्वरूप, और चरण पहाडी पर्वत शेष-स्वरूप है।

नन्द गाम की जलवायु बहुत ही स्वास्थ्य प्रद और बलवर्द्धक है। यह कृष्ण का धाम होने से पुरुषार्थ प्रधान पुरुष रूप और बरसाना राधा जी का धाम होने से सौन्दर्य-प्रधान नारी-स्थल रूप है, ऐसा प्रत्यक्ष देखने में आता है। यही कारण है कि नन्दगाँव की स्त्रियाँ भी पुरुष जैसी सुदृढ़ अग वाली और बरसाने के पुरुष भी महिला सुलभ कोमलता और मधुर स्वभाव वाले होते है। नन्दगाँव के आस-पास पानी प्राय खारा और भूमि कठोर और ऊँची है।

नन्द गाँव मे पर्वत के ऊपर श्री नन्दराय जी का मन्दिर है जिसमे नन्द-यशोदा कृष्ण बलराम की सुन्दर प्रतिमाये प्रतिष्ठित हैं। समीप ही श्री राधानन्द-नन्दन की अद्भुत मूर्ति है जिसमे राधा-कृष्ण दोनो स्वरूप एक ही प्रतिमा मे गौर श्याम वर्ण आभायुक्त समाविष्ट है। यहाँ के दर्शन और तीर्थों मे (१) गोर्धननाथ जी के दर्शन, (२) पावन सर उपनाम पान सरोवर, (३) मोती कुण्ड, (४) फुलवारी कुण्ड, (५) ईसुरा ग्वाल की पोखर, (६) सौंस-की कुण्ड, (७) श्याम पीपरी, श्यामा गौ की बैठक, (८) टेर कदम्ब, (९) रूप सनातन जी की बैठक (जहाँ श्री राधा जी ने कचन कटोरा मे खीर लाकर प्रसाद दी), तथा ब्रजभाषा के एक कवि घनानन्द गोस्वामी की बैठक, (१०) आसकुण्ड, आसेश्वर महादेव, (११) विहार कुण्ड, (१२) मोर कुट्टक कुण्ड, (१३) कृष्ण कुण्ड, (१४) माला धारी कृष्ण के दर्शन, (१५) छछियारी देवी, (१६) बहेंकन बन, (१७) जोगधूनी कुण्ड, (१८) झगरा कुण्ड, (१९) भडार कुण्ड, (२०) लेड कुण्ड, (२१) अक्रूर की बैठक, (२२) वस्त्र बन, (२३) नन्द-वृषभान समागम बैठक, (२४) मोहन कुण्ड, (२५) उद्धव क्यार, (२६) ललिता-कुण्ड ललिता मोहन दर्शन, (२७) उद्धव कुण्ड, उद्धव जी की बैठक, (२८) यशोदा कुण्ड, (२९) हाऊ दर्शन, (३०) पद्म कुण्ड, (३१) नृसिह भगवान्, (३२) मधु सूदन कुण्ड, (३३) यशोदा जी के प्राचीन मौंट, (३४) बेल कुण्ड, (३५) पनिहारी कुण्ड, (३६) चाडोखर, (३७) रोहनी कुण्ड, (३८) मोहनी कुण्ड, (३९) गोपीनाथ ग्वाल की पोखर, और (४०) नन्द जी की गायो के खूँटा आदि दर्शनीय है।

आधुनिक नन्दग्राम, वास्तव मे प्राचीनतम ग्रामो मे से एक माना जाता है। जनसख्या २,३४० है—और कोसीकलाँ से ८ मील दक्षिण मे स्थित है।

करहला मडोई

सब ग्वालिनि सो हँस कहत, कान्ह चित्त के चोर।
जहँ फूलन के करहरा, भयौ 'करहला' ठौर ॥ —जगतनन्द

कहा जाता है कि यह स्थान भगवान् की प्रिय सखी ललिता का स्थान है। इसकी जन-सख्या लगभग १,००० है। यहाँ श्री घमण्ड देव जी की भी समाधि है। करहला और मडोई ये दोनो ही गाँव एक दूसरे से मिले हुए है, जिन्हे एक ही माना जाना चाहिये। इस स्थल को व्रपभानु जी का उपवन माना जाता है।

यह भगवान् कृष्ण की 'दधि लीला' का स्थल कहा जाता है। यहाँ कंकरण कुण्ड, इन्दुलेखा कुण्ड, रगदेवी कुण्ड, सुदेवी कुण्ड तथा जलघडा कुण्ड हैं। सुदेवी कुण्ड पर द्वारकानाथ जी का दर्शन तथा रगदेवी सुदेवी की वैठक तथा हिंडोला-स्थल व रास चौंतरा है। जलघडा कुण्ड पर श्री महाप्रभु जी की वैठक है। यहाँ पर श्री महाप्रभु जी व श्री नाथ जी की एक भावना की वैठक है तथा दूसरी गुसाईं जी व तीसरी गोस्वामी गोकुलनाथ जी की वैठक है। श्री गुसाई जी ने रास पचाध्यायी के ऊपर 'टिप्पणी' नामक ग्रन्थ की रचना यही की थी। गाँव के भीतर हथेली मे पुराने मुकुट के तथा वाहर नये मुकुट के दर्शन हैं। यहाँ श्री ठाकुर जी को रास मे ककरण पहनाया था जिसकी स्मृति मे 'ककरण कुण्ड' स्थापित माना जाता है। व्रज की रास लीला का केन्द्र होने के कारण करहला का महत्त्व वहुत अधिक है।

कमई

इस गाँव का सम्वन्ध विशाखा जी व कमई नामक एक सखी से वतलाया जाता है। यह करहला से दक्षिण ३ मील दूर है। यहाँ अस्वस्थ कुण्ड, सूर्य कुण्ड, वलभद्र कुण्ड, रेवती कुण्ड तथा दाऊ जी के दर्शन हैं। इसे मुचकुन्द क्षेत्र भी कहते हैं। यहाँ कदम खण्डी मे मुचकुन्द ऋपि की गुफा तथा तप-स्थल है।

"मुचकुन्द स्वपित्यत्र दानवासुर पातन.।
अत्र कुण्डे नर. स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम्॥"

—वाराह ७ अ०, २८ श्लोक०

आँजनौक

"अजपुरे समाख्याते सुभानुर्गोपः सस्थिताः।
वेवदानीति विख्याता गोपिनी निमिपसुता॥"

यह ग्राम नन्द गाँव से २½ कोस दक्षिण-पूर्वकोण मे है जो विशाखा जी का स्थान माना जाता है। कहा जाता है यहाँ पर श्री कृष्ण ने राधिका जी के नेत्रो मे स्वय अजन लगाया था। यहाँ रास-मण्डल और ग्राम के दक्षिण मे 'किशोरी कुण्ड' है। कुण्ड के पश्चिमी तट पर 'अजनी शिला' है।

पिसायो

"गाय चरावत हरि कह्यो, भयो पियासो ठाँउ।
ता दिन सें सुखरासि यह भयो 'पियासो' गाँउ॥" —जगतनद

पिसायो करहला की कदम खण्डी से दाहिनी ओर १½ मील उत्तर मे है। यहाँ कदम खण्डी मे 'किशोरी कुण्ड', 'श्याम तलाई' व श्याम जी की वैठक हैं। यहाँ

स्वामिनी जी की गुप्त कुंज और हिंडोला झूला का चिन्ह है। कहा जाता है कि यहाँ ठाकुर जी को प्यास लगी थी तो राधिका जी सखियो के साथ जल लेकर आई थी और ठाकुर जी ने जल पीकर प्यास बुझाई थी तथा वेणु से जल प्रकट किया था, अत 'वेणु कुण्ड', तथा प्यास-निवृत्ति से 'प्यास कुण्ड' है। कदम के वृक्ष के नीचे स्वामिनी जी की वैठक है। समीप ही 'बलभद्र कुण्ड', 'रास-चौंतरा' दाऊ जी के दर्शन तथा ठाकुर जी की बैठक है। यह रास-रमण की ठौर है। ग्राम के निकट मनोहर कदम खण्डी है।

खादिर वन (खायरो)

"खादिरन्तु वन देवी सप्तम यत्र मानव।
स्नान मात्रेण लभते तद्विष्णो परम पदम्॥"

—वृ० ना० पु० ७९।१३

ब्रज के १२ वनो मे से यह सप्तम वन है। यहाँ कृष्ण-बलराम ने शखचूड नामक असुर का वध किया है। यहाँ बलभद्र कुण्ड, दाऊ जी तथा गोपीनाथ के दर्शन हैं।

कुण्डल वन

शखचूड के भय से गोपियो के कर्ण कुण्डल तथा चीर यहाँ गिरे वतलाये जाते हैं। इसलिए इसे कुण्डल वन कहते है। यहाँ पर कुण्डलाकार 'कुण्डल-कुण्ड' भी है। कदाचित् इसलिए इसे कुण्डल वन कहा जाता हो। कुछ लोग इस कुण्डल वन को 'मनिहारी-लीला' का स्थल भी बतलाते हैं। यहाँ कुण्डल कुण्ड के साथ 'चीर तलाई' भी है।

जाव

यहाँ चीर कुण्ड, बलभद्र कुण्ड, धर्म कुण्ड, महावर कुण्ड, किशोरी कुण्ड हैं। किसोरी बट वृक्ष के टूट जाने से वहाँ हिंडोला चौंतरा बना दिया गया है। ग्राम के अन्दर राधिका जी का तथा एक टीले पर मदन मोहन जी का मन्दिर है।

जाव के विषय मे कथा प्रचलित है कि यहाँ भगवान् कृष्ण ने शरद निशा मे मुरली-वादन कर ब्रजाङ्गनाओ को रास के लिए बुलाया था और उनके आ जाने पर उनसे कहा था कि तुम 'जाव' तुम ऐसी रात्रि मे क्यो आई हो, इसी से इसका नाम जाव पडा है।[1] एक दूसरे मत के अनुसार यहाँ भगवान् ने श्री राधिका जी के महावर लगाई थी। 'यावक' शब्द ब्रज भाषा मे 'जावक' हो जाता है, जिससे गाँव का नाम 'जाव' हो गया।

गाँव के वाहर पश्चिम मे 'पाडर कुण्ड' है। इस कुण्ड के सम्बन्ध मे लोकोक्ति है कि यहाँ भगवान् नट वेष धारण कर नन्द ग्राम से आये थे और 'नट-लीला' द्वारा राधिका जी को मुग्ध किया था। उन्हे राधिका जी ने पहिचाना था। उस समय

---

१ रजन्येषा घोर रूपा घोर सत्वनिषेविना।
प्रतियात ब्रजनेह स्थेय स्त्रीभि सुमध्यमा॥ —भा० द० २९ अ० १९ श्लो०

एक भैंसा को इस कुण्ड पर जल पिलाया गया था इससे उसे 'पाडर कुण्ड' कहते हैं। यहाँ 'नट कुण्ड' और नटवर जी की बैठक है। यहाँ की जनसंख्या पिछली गणनानुसार १,५७५ है।

दक्षिण दिशा मे कुण्ड पर महाप्रभु जी की बैठक है। उस कुण्ड को 'कृष्ण कुण्ड' कहते हैं। पश्चिम मे 'पनिहारी कुण्ड' तथा 'सूरज कुण्ड' हैं। यहाँ होरी-लीला की भी निकुंज है।

यहाँ पर होरी के ऊपर बड़ा भारी मेला होता है और झण्डा रोपा जाता है। इस झडे को रोपने के ऊपर जाव की स्त्री और बठैन के ब्रजवासियो का आपस में काफी वाद-विवाद होता है।[1]

कोकिला वन

"एष कृष्णो भद्रवनं खादिराणाम् वने महत्।
विल्वानानुच वन पश्यन् कोकिलाख्य वनं गतः॥" —ग० वृ० १८।२०

यह 'जाव' के पश्चिम मे एक मील दूरी पर है और नन्दगाँव के पूर्व मे है। महारास के अवसर पर भगवान् राधा के साथ अन्तर्ध्यान होकर कोकिला वन मे आये थे, किन्तु राधिका जी के मन मे अभिमान होने से भगवान् यहाँ उन्हे छोड़ गये, तब यही विलाप करती हुई राधिका को ढूँढती सखियाँ उन्हे मिली।

विष्णु पुराण मे इसका वर्णन कहा है "कोकिला स्वर भूषण"। यहाँ 'कोकिला विहारी' के दर्शन और प्रसिद्ध भक्त चतुरा नागा की बैठक है।

बैठान (बठैन)

ये दो बठैनो के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है यहाँ पर कृष्ण बलराम ने गायो को दो भागो मे विभक्त कर उन्हें पृथक् पृथक् बैठ कर चराया था। अत दाऊ जी के गौ-चारण-स्थल को 'बडी बठैन' और कृष्ण जी के स्थल को 'छोटी बठैन' कहते है।

यहाँ 'बलभद्र कुण्ड', दाऊ जी का मन्दिर और गायो के खिरक दर्शनीय है। 'रेवती कुण्ड', 'मोहन कुण्ड' को पार कर छोटी बठैन को जाते है। यहाँ 'कृष्ण कुण्ड' तथा कुण्ड के ऊपर जैसे भगवान् गायों को चराने बैठे हैं उस स्वरूप के दर्शन हैं। पीछे कदम खण्डी है उसमे एक कुण्ड है जिसका जल खारी है, किन्तु उसके एक भाग मे एक चौंतरा पर कदम का वृक्ष है। वहाँ की भावना है कि भगवान् जब गाय चराने आये थे तब राधिका जी ने उन्हे सामग्री बना कर छाक (भोग) दी थी अत उतने भाग का जल मीठा है, इसे स्वामिनी जी की छाक का गुप्त-स्थल कहा जाता है। आगे 'गोपाल कुण्ड' होकर 'चरण गगा' जाते हैं।

---

१ जुवती झण्डा कैसे लेही जू।

२ पश्यन्कस्त पाद पद्म कोकिलाख्य वन गना॥ —ग० वृ० १८।२८

× × ×

मिलकौ स्मोद गजेन्द्र कोकिलाख्ये वने परे॥ —ग० वृ० १८।३७

बडोस्त्रोर (वैन्दोखर)

यह बठैन के पश्चिम मे है। इसका वर्तमान नाम वैन्दोखर है यहाँ पर राधा-कृष्ण ने कुज के द्वार रोक कर विलास किया बतलाते है। यहाँ पीढानाथ जी का दर्शन और गायो का खिडक है।

चरण पहाडी

यह पवत बठैन के ईशान मे है। यहाँ पर श्री कृष्ण गायो के बुलाने के लिए त्रिभगी रूप होकर बशी बजाते थे। यहाँ पर जहाँ-तहाँ श्री कृष्ण के चरण चिह्नों का होना बतलाया जाता है। पास ही मे 'कृष्ण कुण्ड' और 'चरण गगा' है।

पाई गाँव

यहाँ पर राधिका जी ने सखियो की सहायता से कृष्ण को खोज निकाला था, अत इसका नाम पाई ग्राम पडा।

दहो ग्राम (दहगाम)

यहाँ 'दधि कुण्ड' 'दधि चोरी देवी' तथा 'ब्रज भूषण' जी के मन्दिर के दर्शन हैं। इससे आगे 'भामिनी कुण्ड' तथा कदम खण्डी मे कदम के वृक्ष मे मुकुट व वेणु के चिह्न हैं।

कामर

कहा जाता है कि यहाँ भगवान् कृष्ण, बलराम जी के साथ गाय चराने आये तब उनकी बरसाने से लाई हुई कामरी खो गई थी तो भगवान् ने उसे 'कामर कामर' कह कर ढूँढा था। इसी से इस गाँव का नाम कामर पड गया है। यहाँ मोहन कुण्ड, चन्द्रभागा कुण्ड, दुर्वासा कुण्ड, कामरी कुण्ड तथा कदम चौक हैं। स्वामिनी जी की बैठक, राधा-कृष्ण का गुप्त मिलन-स्थान, गोपीनाथ के दर्शन तथा गोपी कुण्ड है। मोहन कामर के लिए माता जसोदा के पास जाकर रोए थे इसलिए यहाँ मोहन कुण्ड, 'रोमना ठाकुर' के दर्शन तथा जिस गोपी ने कामरी चुराई थी उसके नाम से कामरी कुण्ड है और उसका नाम कामरी सखी पडा है।

कहा जाता है कि यही वह स्थल है जहाँ भोजन कर चुकने के बाद पाण्डवों के वनवास काल मे दुर्योधन द्वारा प्रेषित मुनि दुर्वासा आये थे किन्तु भगवान् ने भोजन बिना ही मुनि को ऐसा तृप्त किया कि उनकी रुचि भोजन की न रही और मुनि ने यहाँ चतुर्मास निवास किया, अत उनके नाम से यहाँ दुर्वासा कुण्ड है, और दुर्वासा जी का मन्दिर है।

आधुनिक कामर ग्राम २,६४३ की जनसख्या वाला एक बडा ग्राम है, तथा यहाँ श्याम कुण्ड, जसोदा कुण्ड, हिंडोला तथा रास-चौंतरा आदि प्राचीन दर्शनीय स्थल हैं।

रासौली

कहा जाता है भगवान् कृष्ण ने यहाँ रास किया था और वेणु-वादन कर गायो को बुलाया था। यहाँ रास कुण्ड और रास चौंतरा है। गुसाई श्री गोकुल नाथ

जी भी यहाँ ६ महीना विराजे थे और कल्याण भट्ट को सुबोधिनी जी का भ्रमर गीत प्रसंग श्रवण कराया था।

कोटग्वन (कोटवन)

यहाँ जलघटा कुण्ड पर श्री नाथ जी की बैठक है और श्याम-तमाल के वृक्ष में श्री नाथ जी के चरण-चिह्न हैं तथा 'शीतल कुण्ड' है। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् कृष्ण ने लता-पताओं का कोट बनाया था इससे इसे कोटवन कहते हैं। यहाँ गुसाईं जी की बैठक और दरवाजे के बाहर 'सूरज कुण्ड' है। आधुनिक कोटवन १,५८३ की जनसंख्या वाला एक प्राचीन ग्राम है।

कोसी

कोसी भगवान् की द्वारका लीला का स्थल माना जाता है। यहाँ 'गोमती-कुण्ड' नामक तालाब है। उसके घाट पर गिरिराज जी विराजते हैं, गाँव में दाऊ जी का मन्दिर है। इसे नन्द बाबा का कोष-स्थल भी कहा जाता है। यहाँ श्री पुरुषोत्तम लाल जी महाराज की बैठक है। सर्वप्रथम उन्होंने ही अपनी यात्रा का मुकाम कोसी में किया था। यहाँ 'लक्ष्मण सागर' भी है। आधुनिक कोसी एक छोटा सा शहर है। जनसंख्या १०,००० के लगभग है। यह व्यापार की एक प्रसिद्ध मण्डी है।

चमेलीवन

यह होडल स्टेशन से एक मील पहले है जो 'चमेली' लता का वन कहा जाता है।

शेषशायी

"क्षीर सरोवर द्रुम ललित, फलता रहो चहुँ ओर।
किरन दिनेश न आवहीं 'शेष शयन' की ठौर॥"—जगानन्द

कहा जाता है यहाँ भगवान् ने नन्द-जसोदा को प्रलय लीला के दर्शन कराये थे। यहाँ श्री बलदेव जी ने शेष तथा श्री कृष्ण ने विष्णु रूप धारण करके माता-पिता को चकित किया था।

यहाँ 'क्षीर सागर कुण्ड' व शेषशायी भगवान् के दर्शन हैं। यहाँ हिंडोला झूला का चिह्न भी है। आगे नन्दनवन चन्दनवन आता है। यहाँ नन्द जी के भाई चन्दन नन्द रहते थे।

"गोपाल मण्डन सरोवर कज भूर्ते गोपाल चन्दन घने हस मुख।"
—गो० पृ० १६।४

पैगाम

"पय पी गयो मोहन पय पय पय मुख मटकाय।
बाँकी चाल चलाय पी गयो मोहन पय पय पय॥"

यह गाँव कोसी से ६ मील पूर्व में है। पैगाम में प्रवेश करते ही 'गोपाल कुण्ड', 'भय कुण्ड, 'अभय कुण्ड', 'जय कुण्ड' तथा 'पय कुण्ड' है। 'पय कुण्ड' पर 'पय

बिहारी' के दर्शन तथा ग्राम मे चतुर्भुज राम तथा दाऊ जी के दर्शन है। यहाँ की कदम खण्डी अति रमणीक है। कदम खण्डी मे अनेको चिह्न है, कही दाऊ जी, कही गिर्राज जी तथा कही हाथ मे वशी लिये बाँके बिहारी जी के दर्शन हैं।

फारेन

यह गाँव पैगाँव के निकट ही लगभग ३ मील है। वहाँ होली के दिन बड़ा प्रसिद्ध मेला होता है और पण्डा जलती आग मे होकर निकलता है। यहाँ 'प्रह्लाद-कुण्ड' दर्शनीय है।

अजानी ग्राम

यह पय ग्राम से ४ मील पूर्व मे है। इस स्थान पर वशी की ध्वनि सुन कर जमुना जी 'अजान' बहने लगी, यह बतलाया जाता है।

शेरगढ

स आजुहाव यमुना जलक्रीडार्थमीश्वरः।
निज वाक्य मना दृश्य मत्त इत्यायगा बला॥
अनागता हलाग्रेण कुपितो विचकार्य ह।
पादेत्व मामवज्ञाय यन्नायासि मयाहुता॥२४॥

—भा० द० पू० ६५ अध्याय

यहाँ 'रेवती कुण्ड', 'बलभद्र कुण्ड', 'राधा कुण्ड' हैं। श्री दाऊ जी, धर्म राज, गोपी नाथ जी, राधा रमण जी, मदन मोहन जी तथा साक्षी गोपाल के मन्दिर मुख्य हैं।

द्वारका से आकर यही श्री बल्देव जी ने रास के लिए सेहरा बाँधा था। कहा जाता है कि यहाँ आने के लिए यमुना जी को आमन्त्रित किया गया तो यमुना जी ने निषेध कर दिया, तब यमुना जी का हल से बलराम जी ने आकर्षण किया था। इसी घटना के कारण भगवान् बलराम यहाँ 'सकर्षण' कहलाये थे।

राम घाट

यह स्थल भी बलराम जी के द्वारका से पधारने पर किये गये रास से सम्बन्धित है। उन्ही के नाम से यह स्थल 'राम घाट' कहलाता है।

चीर घाट

"हेमन्ते प्रथमे मासे नन्द गोप कुमारिका।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जाना कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥१॥
कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोप सुत देवि पति मे कुरुते नम.॥४॥

—भा० द० पू० २२ अध्याय

यही वह स्थल है जहाँ गोपिकाओ ने कात्यायनी व्रत करके भगवान् को

पति रूप से प्राप्त करने की इच्छा की थी और भगवान् ने गोपियो का चीर-हरण किया था। यहाँ श्री गोसाईं जी ने 'व्रत-चर्या' नाम का ग्रन्थ लिखा था।

नन्द घाट

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥
तं गृहीत्वानयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम्।
अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥—भा० द० २८।१-२

यहाँ नन्द बाबा का मन्दिर है। यह घाट नन्दराय जी का स्नान-स्थल कहा जाता है। यहीं से वरुण के दूत श्री कृष्ण दर्शनोत्सुक कुबेर की आज्ञा से नन्दराय जी का हरण करके कुबेर-लोक ले गये थे।

बच्छवन (वत्सवन)

यहाँ श्री 'वत्स बिहारी' के दर्शन है। टीले पर श्री महाप्रभु जी की बैठक, ब्रह्मकुण्ड तथा ठाकुर जी के विराट् स्वरूप के दर्शन है। पीछे रास-चौतरा भी है। यही ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण के साथ बछड़ो का हरण किया था, ऐसा बतलाया जाता है।

नरी सेमरी

लगभग दो हजार की जन-संख्या के यह दोनों ग्राम छाता से चार मील दूर रेलवे के किनारे बसे हुए है। इनका पुराना नाम "श्यामरी, किन्नरी" बताया गया है।

'नरी देवी', 'किशोरी कुण्ड', दाऊ जी का मन्दिर व सेमरी में सेमरी (श्यामला) देवी, और 'नारायण कुण्ड' दर्शनीय है।

राधिका जी का मान-भंग करने के लिए श्याम, सखी बन कर आये और "मैं स्वर्ग की किन्नरी हूँ" यह कह परिचय दिया। जिससे इसका नाम 'श्यामरी-किन्नरी' पड़ा। नरी में बलराम जी का स्थान है। नरी सेमरी ब्रज की लोक देवी है, जो प्रतिवर्ष सहस्रों ब्रजवासियो द्वारा पूजी जाती हैं। सेमरी, नरी से एक मील की दूरी पर है। यहाँ वृषेश्वरी 'श्यामला' जी का गृह था।

चौमुहाँ (चतुर्मुख)

"स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुट कोटिभिरङ्घ्रि युग्मम्।
नत्वा मुदश्रु सुजलैर कृताभिषेकम् ॥" —भा० द० १३।६

यह ग्राम मथुरा से कोसी के रास्ते पर लगभग ४ कोस पश्चिम मे है। एक वर्ष बाद व्यामोह दूर होने पर चतुर्मुख ब्रह्मा ने यहाँ श्री कृष्ण की स्तुति कर उन्हे सतुष्ट किया था।

इस ग्राम के निकट इसी नाम से रेलवे स्टेशन भी है। इसी के सन्निकट, 'आभई' है जहाँ ब्रह्मा जी के दर्शन हैं।

तरौली

यह गाँव छाता से ४ मील पूर्व दिशा मे स्थित है। यहाँ 'बूढे बाबा' का प्रसिद्ध मन्दिर और 'स्वामी का तालाब' है, जिसमे चर्म-रोगो से मुक्ति पाने के लिए दूर-दूर से स्नानार्थी आते है। यहाँ कार्तिक शुक्ला १२-१३ को मेला होता है, जिसमे भारी सख्या मे नर-नारी उपस्थित होते है।

छत्रवन (छाता)

> "खेलत ब्रज कौ छत्रपति, मनु नक्षत्र-पति साँझ।
> बरस-नछत्र निकर लिये, सखा 'छत्रबन' माँझ॥" —जगतनन्द

छाता ग्राम मथुरा दिल्ली मार्ग पर सडक के किनारे बसा हुआ प्रसिद्ध गाँव है जो आजकल एक तहसील है। कहा जाता है यहाँ भगवान् ने 'छत्र धरण लीला' की थी। सन् १८५७ मे जो स्वतन्त्रता-सग्राम हुआ था छाता ने भी उसमे खुल कर भाग लिया था।

यहाँ के प्राचीन स्थलो मे 'सूर्य कुण्ड', 'चन्द्र कुण्ड' तथा चतुर्भुज भगवान् के मन्दिर आदि उल्लेखनीय है। यहाँ शेरशाह सूरी की बनवाई हुई एक लाल पत्थर की पुरानी सराय भी है, जिसमे आजकल दुकानें लगती हैं।

वृन्दावन

> "सभाव्य भर्तारममु युवान मृदुप्रवालोत्तर पुष्पशय्ये।
> वृन्दावने चैत्ररथावनूने, निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः॥"—रघुवंश, ६,५०

कवि कुल-गुरु कालिदास के वर्णन के अनुसार कुबेर के चैत्ररथ नामक वन जैसा यह जगत्-वद्य सुरम्य वृन्दावन वर्त्तमान मे मथुरा से ६ मील उत्तर की ओर बसा है। कस के भय से गोकुल छोड देने के उपरान्त वृन्दावन ही नन्दराय जी का निवास-केन्द्र रहा था। तुलसी वृक्षो के आधिक्य के कारण ही कदाचित् यह वन वृन्दावन कहलाया।[1] वृन्दावन भगवान् श्री कृष्ण की रास-स्थली है, और यह स्थल व्रज के सभी वनो में श्रेष्ठ माना गया है।[2] सस्कृत-साहित्य और भक्ति-काव्य मे वृन्दावन की महिमा भरी पडी है। किसी समय इस वृन्दावन का विस्तार बीस कोस था।[3]

वर्तमान वृन्दावन की ओर गौडिया-सम्प्रदाय के भक्तो का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट हुआ। गौराग महाप्रभु इसकी शोभा को देख कर बडे प्रभावित हुए और यहाँ बाद मे उनके शिष्य वर्गों के द्वारा गोविन्द देव व मदन मोहन जी जैसे देव-विग्रहो की स्थापना हुई जिनके मन्दिर आज भी स्थापत्य-कला की अमर-कृति मानी जाती है। आज वृन्दावन व्रज की भक्ति-सस्कृति के समग्र रूप का स्वय प्रतिनिधि

---

१. "माई री मोय लगत वृन्दावन नीकौ।
घर-घर तुलसी, ठाकुर-सेवा, दर्शन श्री पति जू कौ॥"

२ "वनेभ्यस्तत्र सर्वेभ्यो वन वृन्दावन वरम्।" —गा० वृ० १ अ०, १४ श्लोक

३. "बीस कोस वृन्दा-विपन प्रिय-प्यारी कौ धाम।"

है, यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। हित हरिवंश, हरिदास, नागरी दास, हरिराम व्यास, घनानन्द और बाद मे ललित किशोरी जैसे अनेक भक्त-कवियो की वाणी यहाँ झंकृत हुई। वृन्दावन की इस भूमि पर जितने संस्कृत और हिन्दी के भक्ति-ग्रन्थ लिखे गये, उतने शायद ही कही अन्यत्र लिखे गये होगे, जिनके पुराने बस्ते आज भी वृन्दावन मे सर्वत्र भरे पड़े हैं। भारत का कोई ऐसा भक्ति-सम्प्रदाय नही जिसका केन्द्र वृन्दावन में न हो। यहाँ के प्रमुख स्थलों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

श्री कृष्ण लीला-स्थल—भगवान् श्री कृष्ण के लीला-स्थलो के रूप मे यहाँ यमुना-तट पर काली-दह, वंशीवट, रास-चबूतरा, केसी घाट, राधा बावड़ी, दावानल कुण्ड, ब्रह्म-कुण्ड व धीर-समीर घाट विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मन्दिर—वृन्दावन के सम्बन्ध मे वैसे यह कहा जाता है कि यहाँ जितने घर है, उतने ही मन्दिर हैं, अत उनकी कोई संख्या नहीं दी जा सकती परन्तु यहाँ के कुछ प्रमुख मन्दिरों का उल्लेख आवश्यक है—

गोविन्द देव जी—यह मन्दिर अकबर के शासन-काल मे स्थापित हुआ था। यह लाल पत्थर का बना है। यह वृन्दावन के प्राचीन मन्दिरो मे से है, और इसकी स्थापत्य-कला अद्वितीय है। इस मन्दिर का पुराना देव-विग्रह आजकल जयपुर मे विराजमान है।

मदन मोहन जी—यह मन्दिर भी १६वी शताब्दी की एक मनोरम कृति है। मदन मोहन जी की मूर्ति भी अब करौली में विराजती है।

रंग जी का मन्दिर—यह मन्दिर मथुरा के सेठों ने 'श्री रंगम्' की अनुकृति पर बनवाया था। यह रामानुज सम्प्रदाय का बड़ा विशाल मन्दिर है, जिसके सात परकोटे है। मन्दिर मे एक तालाब व सोने का ऊँचा खम्भा है। मन्दिर के निकट गौड़ीय भक्तो का एक उल्लेखनीय 'समाधि-स्थल' है। उससे अनेक प्रसिद्ध भक्तो और साहित्यकारों की स्मृति जुड़ी है।

बाँके विहारी जी—बाँके विहारी जी स्वामी हरिदास जी के उपास्य देव हैं। आजकल विहारी जी के मन्दिर की मान्यता और लोक-प्रियता बहुत अधिक है, और दूर-दूर से भक्त-वृन्द विहारी जी के दर्शन को आते हैं।

सेवा-कुंज—यहाँ की वन शोभा दर्शनीय है। हित हरिवंश जी का इस स्थान से निकट का सम्पर्क था। भक्तो का विश्वास है कि यहाँ आज भी प्रतिदिन रात्रि को प्रिया-प्रियतम 'नित्य-रास' करते है। अनेक किंवदंतियाँ इस स्थल से जुड़ी हैं। यहाँ चित्र-सेवा की जाती है।

गोपेश्वर महादेव—यह मन्दिर महादेव जी का है जो भगवान् के रासोत्सव मे सम्मिलित होने के लिये गोपी-वेष धारण करने को बाध्य हुए थे।

इन मन्दिरो के अतिरिक्त वृन्दावन में हित हरिवंश जी के सेव्य राधा-वल्लभ तथा राधा रमण जी के मन्दिरों के साथ ब्रह्मचारी जी का मन्दिर, लाला बाबू का मन्दिर, जयपुर राज्य का मन्दिर, गोपीनाथ जी का मन्दिर, मुंगेर राज्य

का मन्दिर, काठिया बाबा का मन्दिर, टिकारी वाली रानी का मन्दिर, अष्टसखी मन्दिर तथा ज्ञान-गूदडी मे अनेक महात्माओ के बनाये मन्दिर हैं। इसके अतिरिक्त बिजावर के राज्य द्वारा निर्मित काँच का बना सामन्त-बिहारी का मन्दिर, सवा मन के सालिगराम का मन्दिर, आदि है। यहाँ लखनऊ के शाह कुन्दनलाल फुन्दनलाल जिन्होने कि 'ललित किशोरी' और 'ललित-माधुरी' उपनाम से सरस काव्य रचना की है—का बनवाया हुआ सगमरमर का शाह बिहारी का मन्दिर भी अपने ढग का निराला है जिसके टेढे खम्भ दर्शनीय है।

निधिवन—मन्दिरो के अतिरिक्त वृन्दावन मे और भी ऐसे अनेक स्थल है जिनका महत्त्व बहुत अधिक है। इन स्थलो मे स्वामी हरिदास के निवास निधिवन की प्राकृतिक शोभा उल्लेखनीय है। यही स्वामी हरिदास के साथ-साथ उनके शिष्य वर्ग का भी सगीत व काव्य साधना का केन्द्र था। स्वामी जी के साथ-साथ यहाँ विट्ठल-विपुल, भगवत् रसिक आदि कई भक्त कवियो की समाधि हैं। दूसरा केन्द्र "मोहिनी दास जी की टट्टी", स्वामी हरिदास जी के सम्प्रदाय के विरक्त भक्तो का प्रमुख केन्द्र है।

अन्य स्थल—यहाँ के अन्य स्थलो मे महाप्रभु बल्लभाचार्य, गुसाई विट्ठल-नाथ जी, गोकुल नाथ जी और दामोदर दास हरसानी की पास-पास बनी हुई बैठकें, यहाँ की चार मुख्य कुञ्ज-गली, अद्वैत स्वामी की तपोभूमि अद्वैत बट, चार सम्प्रदायो की छावनी और वर्त्तमान समय में भक्ति-रस का केन्द्र उड़िया बाबा का आश्रम भी उल्लेखनीय है। वृन्दावन मे आर्य-समाज का भी गुरुकुल है। यहाँ अनेक साहित्य-कार भक्तो के भी स्थल हैं जैसे हरिराम व्यास जी की समाधि, रूप सनातन जी की भजन कुटी, चन्द्र सखी की कुञ्ज, ग्वाल जी की हवेली और गोस्वामी राधा-चरण जी का बन्द पुस्तकालय आदि आदि।

इस प्रकार वर्त्तमान वृन्दावन सभी दृष्टियो से एक छोटा सा सुन्दर नगर और बहुत महत्वपूर्ण स्थल है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार यहाँ की आबादी २२,७१७ थी। यह धर्मशाला, आश्रमो और सकीर्त्तन-भवनो का एक ऐसा रमणीक स्थल है जहाँ प्रति-क्षण 'श्री राधे, जै राधे राधे' की ध्वनि प्रतिध्वनित होती रहती है।

अक्रूर घाट (ब्रह्म ह्रद)

यह स्थान मथुरा वृन्दावन के कच्चे मार्ग मे मध्य मे आता है। कहा जाता है कि भगवान् ने यहाँ ब्रजवासियो को वैकुण्ठ दर्शन कराया था और मथुरा जाते समय अक्रूर को यही भगवान् ने यमुना-स्नान के समय अपना वैभव दिखाया था। यहाँ महाप्रभु कृष्ण चैतन्य देव ने भी अपने ब्रजवास काल मे निवास किया था।

यज्ञ-स्थल—अक्रूर घाट के निकट ही यह वह स्थल है जहाँ अङ्गरादि ऋषियो ने यज्ञ किया था और भगवान् कृष्ण का सदेश आने पर अपनी पत्नियो को उन्हे भोजन पहुँचाने से रोका था।

भतरोंड़—यहाँ कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान् ने यज्ञ करने वाले ऋषि-

पत्नियों द्वारा लाई गई भोजन-सामग्री आरोगी थी । यहाँ एक प्राचीन मन्दिर भी है । यह स्थल भी अक्रूर घाट के निकट ही है ।[1]

मुंजाटवी (मडयारी ग्राम)

मुंजाटव्या भ्रष्ट मार्गं क्रन्दमान स्वगोधनम् ।
सम्प्राप्य तृषिता. श्रान्ता स्ततस्ते सन्यवर्तयन् ॥ —भा० द० २१५

कहा जाता है यहाँ कभी मूंज का वन था, जिनमे दावाग्नि लग जाने से गो-वत्स सभी संकट मे पड़ गये थे और भगवान् श्री कृष्ण ने उनका उद्धार किया था ।

भद्रवन (भदनवारी)

"अस्ति भद्रवन नाम षष्ठ स्नातोऽत्र मानव ।
कृष्णदेव प्रसादेन सर्वं भद्राणि पश्यति ॥" —वृ० ना० पु० ७६ अ०

यह नन्दघाट के अग्निकोण मे २ मील, यमुना के दूसरे तट पर स्थित है । यहाँ वट-वृक्ष के नीचे 'भाडखण्डेश्वर महादेव' तथा हनुमान जी के दर्शन हैं । यह भी भगवान् श्री कृष्ण के गो-चारण के स्थलो मे से है ।

भाडीरवन

"भाडीरे यमुनातीरे बाल लीलाञ्चकार ह ।"

यह स्थल भद्रवन से लगभग २ मील है । भाडीरवन मे श्री बलराम ने प्रलबासुर का बध किया था ।

उवाह त प्रलम्बोऽसौ भाडीराद् यमुना तटम् ॥१८॥"—ग० मा० २० अ०

यहाँ 'भाडीर कूप', जहाँ श्री दाऊ जी ने अपना मुकुट उतार कर श्रम दूर किया था, तथा दाऊ जी की बैठक और किंवदती के अनुसार व्रजनाभ द्वारा पधराया गया मुकुट दर्शनीय है । दाऊ जी के दर्शनो के पश्चिम मे बिहारी जी तथा वायव्य मे श्री राधा-कृष्ण जी का भी मन्दिर है । श्याम-तमाल वृक्ष के नीचे यहाँ श्री महाप्रभु जी की गुप्त बैठक भी बतलाई जाती है ।

मांट ग्राम

यह गांव भांडीर वन से २ मील दक्षिण मे है । मांट मथुरा जिले की एक तहसील है । कहा जाता है कि यहाँ भगवान् ने माता यशोदा के पुराने मांट फोड़ दिये थे । मांट और इसके आस-पास लोक-गीतो व जिकड़ी के भजनो के गायन का अच्छा प्रचार है । ब्रज के प्रसिद्ध भक्त-लोक-गायक सनेही राम यहीं के थे ।

वेलवन

"बिल्वारण्यमिह् दशम तु यत्र स्नात. सुमध्यमे ।
शैवं वा वैष्णव वापि याति लोकं निजेच्छया ॥" —वृ० न० पु० ७६ अ०

---

१. "गाय चरावत ग्वाल संग, भूख लगी हिय ओड़ ।
मधुपानों ओदन दियौ, भयौ तबै भतरौड़ ॥" —जगननाथ

का मन्दिर, काठिया बाबा का मन्दिर, टिकारी वाली रानी का मन्दिर, अष्टसखी मन्दिर तथा ज्ञान-गूदडी मे अनेक महात्माओ के बनाये मन्दिर हैं। इसके अतिरिक्त बिजावर के राज्य द्वारा निर्मित काँच का बना सामन्त-बिहारी का मन्दिर, सवा मन के सालिगराम का मन्दिर, आदि है। यहाँ लखनऊ के शाह कुन्दनलाल फुन्दनलाल जिन्होने कि 'ललित किशोरी' और 'ललित-माधुरी' उपनाम से सरस काव्य रचना की है—का बनवाया हुआ सगमरमर का शाह बिहारी का मन्दिर भी अपने ढग का निराला है जिसके टेढे खम्भ दर्शनीय है।

निधिवन—मन्दिरो के अतिरिक्त वृन्दावन मे और भी ऐसे अनेक स्थल है जिनका महत्त्व बहुत अधिक है। इन स्थलो मे स्वामी हरिदास के निवास निधिवन की प्राकृतिक शोभा उल्लेखनीय है। यही स्वामी हरिदास के साथ-साथ उनके शिष्य वर्ग का भी सगीत व काव्य साधना का केन्द्र था। स्वामी जी के साथ-साथ यहाँ विट्ठल-विपुल, भगवत् रसिक आदि कई भक्त कवियो की समाधि है। दूसरा केन्‍ "मोहिनी दास जी की टट्टी", स्वामी हरिदास जी के सम्प्रदाय के विरक्त भक्तो का प्रमुख केन्द्र है।

अन्य स्थल—यहाँ के अन्य स्थलो मे महाप्रभु बल्लभाचार्य, गुसाई विट्ठल-नाथ जी, गोकुल नाथ जी और दामोदर दास हरसानी की पास-पास बनी हुई बैठकें, यहाँ की चार मुख्य कुञ्ज-गली, अद्वैत स्वामी की तपोभूमि अद्वैत बट, चार सम्प्रदायो की छावनी और वर्त्तमान समय में भक्ति-रस का केन्द्र उड़िया बाबा का आश्रम भी उल्लेखनीय है। वृन्दावन मे आर्य-समाज का भी गुरुकुल है। यहाँ अनेक साहित्य-कार भक्तो के भी स्थल हैं जैसे हरिराम व्यास जी की समाधि, रूप सनातन जी की भजन कुटी, चन्द्र सखी की कुञ्ज, ग्वाल जी की हवेली और गोस्वामी राधा-चरण जी का बन्द पुस्तकालय आदि आदि।

इस प्रकार वर्त्तमान वृन्दावन सभी दृष्टियो से एक छोटा सा सुन्दर नगर और बहुत महत्वपूर्ण स्थल है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार यहाँ की आबादी २२,७१७ थी। यह धर्मशाला, आश्रमो और सकीर्त्तन-भवनो का एक ऐसा रमणीक स्थल है जहाँ प्रति-क्षण 'श्री राधे, जै राधे राधे' की ध्वनि प्रतिध्वनित होती रहती है।

अक्रूर घाट (ब्रह्म ह्रद)

यह स्थान मथुरा वृन्दावन के कच्चे मार्ग मे मध्य मे आता है। कहा जाता है कि भगवान् ने यहाँ ब्रजवासियो को वैकुण्ठ दर्शन कराया था और मथुरा जाते समय अक्रूर को यही भगवान् ने यमुना-स्नान के समय अपना वैभव दिखाया था। यहाँ महाप्रभु कृष्ण चैतन्य देव ने भी अपने ब्रजवास काल मे निवास किया था।

यज्ञ-स्थल—अक्रूर घाट के निकट ही यह वह स्थल है जहाँ अङ्गरादि ऋषियो ने यज्ञ किया था और भगवान् कृष्ण का सदेश आने पर अपनी पत्नियो को उन्हे भोजन पहुँचाने से रोका था।

भतरोंड़—यहाँ कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान् ने यज्ञ करने वाले ऋषि-

पत्नियो द्वारा लाई गई भोजन-सामग्री आरोगी थी। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर भी है। यह स्थल भी अक्रूर घाट के निकट ही है।[1]

मुंजाटवी (मडयारी ग्राम)

मुंजाख्या भ्रष्ट मार्गं क्रन्दमान स्वगोधनम्।
सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्ता स्ततस्ते सन्यवर्तयन्॥ —भा० द० २१।५

कहा जाता है यहाँ कभी मूंज का वन था, जिसमे दावाग्नि लग जाने से गौ-वत्स सभी सकट मे पढ गये थे और भगवान् श्री कृष्ण ने उनका उद्धार किया था।

भद्रवन (भदनवारो)

"अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठ स्नातोऽत्र मानवः।
कृष्णदेव प्रसादेन सर्व भद्राणि पश्यति॥" —वृ० ना० पु० ७६ अ०

यह नन्दघाट के अग्निकोण मे २ मील, यमुना के दूसरे तट पर स्थित है। यहाँ वट-वृक्ष के नीचे 'झाडखण्डेश्वर महादेव' तथा हनुमान जी के दर्शन हैं। यह भी भगवान् श्री कृष्ण के गौ-चारण के स्थलो मे से है।

भाडीरवन

"भाडीरे यमुनातीरे बाल लीलाम्चकार ह।"

यह स्थल भद्रवन से लगभग २ मील है। भाडीरवन मे श्री बलराम ने प्रलबासुर का बध किया था।

उवाह तं प्रलम्बोऽसौ भांडीराद् यमुना तटम्॥१८॥"—गा० मा० २० अ०

यहाँ 'भाडीर कूप', जहाँ श्री दाऊ जी ने अपना मुकुट उतार कर श्रम दूर किया था, तथा दाऊ जी की बैठक और किवदती के अनुसार व्रजनाभ द्वारा पधराया गया मुकुट दर्शनीय है। दाऊ जी के दर्शनो के पश्चिम मे विहारी जी तथा वायव्य मे श्री राधा-कृष्ण जी का भी मन्दिर है। श्याम-तमाल वृक्ष के नीचे यहाँ श्री महाप्रभु जी की गुप्त बैठक भी बतलाई जाती है।

मांट ग्राम

यह गांव भांडीर वन से २ मील दक्षिण मे है। मांट मथुरा जिले की एक तहसील है। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् ने माता यशोदा के पुराने मांट फोड़ दिये थे। मांट और इसके आस-पास लोक-गीतो व जिकड़ी के भजनो के गायन का अच्छा प्रचार है। व्रज के प्रसिद्ध भक्त-लोक-गायक सनेही राम यही के थे।

बेलवन

"बिल्वारण्यमिह दशम तु यत्र स्नातः सुमध्यमे।
शैवं वा वैष्णव वापि याति लोकं निजेच्छया॥" —वृ० न० पु० ७६ अ०

---

१. "गाय चरावत ग्वाल संग, भूख लगी हिय ओड़।
यज्ञपत्नी ओदन दियौ, भयौ सबै भतरौड़॥" —अगतनन्द

मांट से दो मील दूर यह ग्राम बसा हुआ है। जो विल्ववन के नाम से प्रख्यात वन है। किसी समय यहाँ बेल के वृक्षो का आधिक्य था और श्याम सुन्दर को वे फल पसन्द थे। गेंद के रूप मे भी वे इन फलो का उपयोग करते थे। कूप के समीप लक्ष्मी जी का मन्दिर है। उसके सामने 'बेल वृक्ष' है। कहा जाता है यहाँ श्री लक्ष्मी जी ने तप किया था। उसके उत्तर मे गुसाईं जी की बैठक है।

मान सरोवर

"जहँ तरुवर अति सघन बन, घटा सरोवर लेख।
श्री राधावर खेलते, मान सरोवर पेख॥"—जगतनन्द

यह स्थल बेलवन से ३ मील पूर्व मे है। यह राधिका रानी के मान का स्थल है और यहाँ केवल उनके नेत्रो के ही दर्शन है। मान सरोवर मे दो सम्मिलित कुण्ड हैं जो 'मान कुण्ड' व 'कृष्ण कुण्ड' कहलाते है। कहा जाता है कि मान सरोवर राधा रानी के मान में प्रवाहित अश्रुबिंदो से निर्मित है। यह स्थान बहुत ही रमणीय है। जब हित हरिवश जी वृन्दावन वास करते थे। तब वे यहाँ प्रतिदिन आया करते थे। यहाँ वल्लभाचार्य जी व गुसाईं जी दोनो की बैठकें है। कुण्डो के निकट बसे गाँव को आजकल एक प्राचीन पीपल वृक्ष के आधार पर 'पिपरौली' कहा जाता है।

"पिपरौली सोभित महा, तरु पीपर के नाम।"

लोहवन

"लोह-जघन्तु नवम वन यत्राप्लुतो नर।
महाविष्णु प्रसादेन भुक्ति मुक्तिञ्च विन्दति॥" —वृ० ना० पु० ७९।१५

कहा जाता है यहाँ भगवान् ने 'लोहजघ' दैत्य को मारा था। यहाँ कृष्ण कुण्ड, गोपी नाथ जी के दर्शन तथा लोहासुर की गुफा दर्शनीय स्थल है। यह स्थान मथुरा से लगभग दो मील दाऊ जी वाली सडक के समीप स्थित है। यह ग्राम ब्रज के लोक गीतो का अच्छा केन्द्र रहा है।

आनन्दी बनन्दी

"मनों गयदी देखि कै, स्वच्छदी सब सेव।
सोभित बदी परम रुचि, और अनन्दी देवि॥"—जगतनन्द

लोहवन के निकट ही आनन्दी व बनन्दी दो देवियो का स्थान है। ये नन्दराय जी की कुल-देवी कही जाती हैं जिनकी उन्होने पूजा की बतलाई जाती है। कहा जाता है कि यह देवियाँ श्री कृष्ण-दर्शनार्थ गोबरहारी बनकर नन्द-भवन मे गोबर थापने जाया करती थी।

दाऊ जी (रीढा ग्राम)

"ब्रज पैडनि कों देखिये, मेडिन खेत सुभेव।
ये डाली ये रेवती, रेढा मे बलदेव॥" —जगतनन्द

बल्देव गाँव जिसे 'दाऊ जी' भी कहा जाता है ब्रज का एक प्रमुख कस्बा है।

इसका प्राचीन नाम 'रीढ़ा गाँव' है। यह गाँव अपने प्रसिद्ध वल्देव मन्दिर के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। दाऊ जी का यह मन्दिर वडा प्रसिद्ध है जिसमे वल्देव जी की श्याम वर्ण की मानवाकार प्रतिमा व रेवती जी के दर्शन हैं। दाऊ जी ग्राम के दक्षिण में 'रेवती कुण्ड', और मन्दिर के उत्तर मे 'क्षीर-सागर कुण्ड' है। गाँव मे प्रवेश करते ही 'दान विहारी' का मन्दिर है।

ब्रज मे हर पूर्णिमा के दिन दाऊ जी के दर्शन करने की परम्परा रही है। दूर-सुदूर से भक्तजन यहाँ पूर्णिमा के दर्शनो को आते है। फाल्गुन मास मे होने वाला दाऊ जी का हुरगा प्रसिद्ध है। दाऊ जी का माखन-मिश्री का भोग लगता है। यहाँ की मिश्री व मिट्टी के वर्तन प्रसिद्ध हैं।

वल्देव गाँव के निकट ही एक दूसरा हतोडा गाँव है जहाँ नन्द जी की अथाई (वैठक) वतलाई जाती है।

देवनगर

दाऊ जी से पाँच कोस उत्तर मे ब्रह्माण्ड घाट के निकट दिवस्पति गोप का यह ग्राम है। इस गोप ने यही गोवर्धन पूजन किया था। यहाँ गोवर्धन पर्वत (जो वास्तव मे गोशर्धन पर्वत है) एव 'राम ताल' है।

कोइलो घाट

महावन से एक मील दूर यमुना की दूसरी ओर कोइलो घाट है। कहा जाता है कि जव नन्दराय शिशु कृष्ण को गोकुल लाये तो इस स्थान पर यमुना पार की। यमुना जी, जव कृष्ण भगवान् के चरण-स्पर्श करने को ऊँची उठीं तो वसुदेव जी डूवने लगे और शिशु कृष्ण को वचाने के लिए चिल्ला उठे कि 'कोई लो।' तभी से इसका नाम 'कोइलो' पडा। इसी नाम का एक ग्राम भी इस घाट के पास वसा है।

कर्णावल

कोइलो ग्राम के पास ही यह कर्णावल गाँव है जो भगवान् कृष्ण-वलराम के कर्ण-छेदन का स्थल माना जाता है। यहाँ 'कर्ण-वेध कूप,' 'रतन चौक' तथा 'मदन मोहन' व 'माधव राय' के मन्दिर हैं।

ब्रह्माण्ड घाट

"ग्वाल सहित गोपाल जू, माँटी खात प्रचण्ड।
तीन लोक-जसुमति लखे, भयो घाट ब्रह्माण्ड॥" —जगतनन्द

महावन से एक मील दूर, यमुना के किनारे यह घाट वना हुआ है। यहाँ भगवान् कृष्ण ने माता यशोदा जी को 'मृतिका-भक्षण' के वहाने विश्व का दर्शन मुख मे कराया था। यहाँ 'ब्रह्माण्ड विहारी' के दर्शन 'ब्रह्माण्डेश्वर महादेव' तथा एक छोटी कोठरी मे माँटी खाये हुए कृष्ण व माता की श्री दामा सखा आदि के साथ 'विश्व-दर्शन' की छवि है। यह स्थान वडा ही रमणीक है और यहाँ एक सुन्दर बाग भी

है। यहाँ से महावन जाते समय मार्ग मे यमुलार्जुन नामक वृक्षो की मोक्ष का स्थान आता है। इसके सामने 'नन्द कूप' है। ब्रह्माण्ड घाट से-पूर्व मे कुछ दूरी पर 'चिन्ता हरण' महादेव है।

महावन

"जस पावत नन्दराय जू, गावत डोलत भूप।
मनभावत गोविन्द लख्यो, इहै महावन ओप॥" —जगतनन्द

वर्त्तमान महावन मथुरा से लगभग ३ कोस और वृन्दावन से लगभग ६ कोस अग्निकोण मे है। यह महावन ही नन्दराय जी का पुराना निवास-स्थल है जो वृहद्-वन के अन्तर्गत था। वसुदेव यही शिशु-कृष्ण को छोड गये थे। महावन का वर्णन महाभारत मे भी आया है। वनवास काल मे पाण्डवो ने भी यहाँ कुछ समय निवास किया था।

यहाँ नन्द-भवन है जिसमे ८४ खम्बा है तथा बल्देव जी के दर्शन है। भगवान् बल्देव का जन्म-स्थल यही माना जाता है। यहाँ इस समय कृष्णकालीन निम्न स्थल उल्लेखनीय कहे जाते है—'दन्तधावन टीला', 'गोपियो की हवेली', पूतना, शकट, तथा तृणावर्त्त के वध-स्थल, 'छटी पूजन-स्थल', 'ब्रजराज गोशाला' (नामकरण स्थल)।

मुगलकाल मे महावन का राजनीतिक महत्त्व था और यहाँ बादशाह का सूबेदार रहा करता था। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि सुरति मिश्र भी यही हुए थे। इस समय यह एक टाउन एरिया है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार यहाँ की जन-सख्या ५,५२३ थी।

रमण रेती

"रमन रेति सुख देत है, केतिक बरनो ताहि।
ग्वाल हेत भरि लेत हैं, बल समेत हरि ताहि॥" —जगतनन्द

गोकुल और महावन के मध्य रमण रेती नाम का एक शान्त स्थल है जहाँ ब्रज के साधु-महात्मा निवास करते है। यहाँ रमण बिहारी जी का मन्दिर है। ब्रज-भाषा के कवि रसखान व कवयित्री ताज की समाधियाँ भी यही टूटी-फूटी पड़ी हैं। अलीखान की समाधि भी यहाँ से पास ही है। रमण रेती मे बसत पचमी को मेला लगता है। कहा जाता है यहाँ दुर्वासा ऋषि ने गो-चारण करते हुए गोपाल कृष्ण के दर्शन किये थे।

गोकुल

"श्रीमद् गोकुल सर्वस्व, श्रीमद् गोकुल मडनम्।
श्रीमद् गोकुल दक्तारा, श्रीमद् गोकुल जीवनम्॥"—गुसाईं विट्ठलनाथ

महाप्रभु द्वारा स्थापित वर्त्तमान गोकुल ब्रज मे पुष्टि सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। भक्ति-युग मे इस स्थान का बडा महत्व था और यहाँ ब्रज-भाषा काव्य-माधुरी के सृजन और 'वार्त्ता-साहित्य' के निर्माण का भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ। यहाँ आज

भी पुष्टि सम्प्रदाय की २४ हवेली है जो सभी किसी न किसी रूप मे प्राचीन भक्तो और आचार्यो से सम्वन्ध रखती हैं। औरगजेब के समय तक यहाँ नवनीत प्रिय जी के साथ पुष्टि सम्प्रदाय के सभी सेव्य ठाकुर विराजते थे और दूर सुदूर के कृष्ण भक्तो को गोकुल की ओर आकर्षित करते थे।

गोकुल के वर्त्तमान दर्शनीय स्थलो मे आचार्य महाप्रभु की भीतरली व बाहरली बैठक, दामोदर हरसानी की बैठक, गुसाई गोकुल नाथ जी की बैठक, प्राचीन देव-विग्रहो के विराजने के स्थल, ठकुरानी घाट, गोविन्द घाट, वल्लभ घाट, गोकुल नाथ जी का मन्दिर, मोर वाला मन्दिर, ब्रजराय जी का मन्दिर, अहमदाबाद वाले व नडियाद वाले गोस्वामियो के मन्दिर तथा बाल कृष्ण जी के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। यहाँ के प्राचीन स्थलो मे श्री गोकुल नाथ जी का बाग, बरजन टीला, सिंहपौर आदि प्रमुख है। आधुनिक गोकुल लगभग २,३४३ जनसख्या का एक छोटा-सा सुन्दर टाउन एरिया है।

रावल

"जहाँ बसत वृषभानु जू, श्री राधा चित लाय।
ज्यों अलकावलि देखिये, त्यों रावल सरसाय॥" —जगतनन्द

यह राधा जी के पिता, वृषभानु महाराज का पूर्व निवास-स्थान है। यही श्री राधिका जी का जन्म-स्थान माना जाता है। यहाँ शिखरदार मन्दिर मे राधिका जी के दर्शन हैं। दर्शनीय स्थल 'राधा घाट' है। श्री राधा रानी जी के जन्मोपलक्ष्य मे यहाँ भाद्र शुक्ला अष्टमी के दिन मेला लगता है।